हिमज्योति

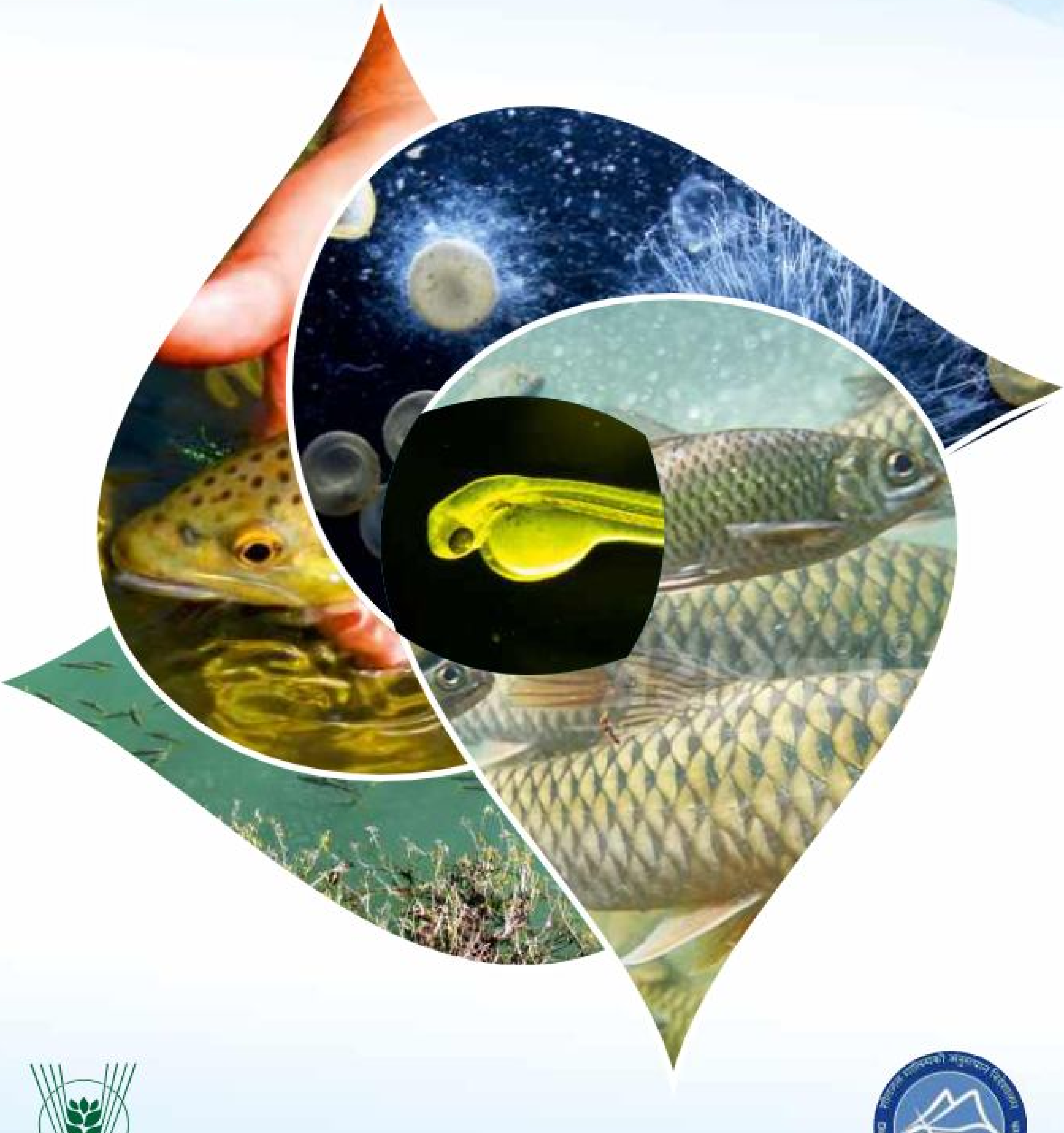

भा.कृ.अनु.प.-शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय
भीमताल-243 136, नैनीताल (उत्तराखंड)

भा.कृ.अनु.प.-शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय

सम्पादन एवं अनुवाद

अमित कुमार जोशी

आवरण पृष्ठ सज्जा

अमित कुमार सक्सेना

टंकण

ललिता आर्या

संकल्पना, मार्गदर्शन एवं प्रकाशन

डा. प्रमोद कुमार पाण्डेय

निदेशक

भा.कृ.अनु.प.-शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय

भीमताल-263136, जिला- नैनीताल (उत्तराखण्ड)

रूपरेखा एवं मुद्रण

उत्थान, बरेली

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

प्रशस्ति-पत्र

गणेश शंकर विद्यार्थी हिन्दी पत्रिका पुरस्कार

वर्ष 2020 के दौरान 'क' और 'ख' क्षेत्र में स्थित संस्थानों में भा.कृ.अनु.प.-शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल, नैनीताल द्वारा प्रकाशित हिन्दी पत्रिका ''हिमज्योति'' को द्वितीय पुरस्कार से सम्मानित किया जाता है।

दिनांकः 16 जुलाई, 2021
नई दिल्ली

(सीमा चोपड़ा)
निदेशक (राजभाषा)

महानिदेशक
(भा.कृ.अनु.प.)

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

प्रशस्ति-पत्र

गणेश शंकर विद्यार्थी हिन्दी पत्रिका पुरस्कार 2021

वर्ष 2021 के दौरान 'क' और 'ख' क्षेत्र में स्थित संस्थानों में भा.कृ.अनु.प.-शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल, नैनीताल द्वारा प्रकाशित हिन्दी पत्रिका ''हिमज्योति'' को द्वितीय पुरस्कार से सम्मानित किया जाता है।

दिनांकः 16 जुलाई, 2022
नई दिल्ली

(संजय गर्ग)
अपर सचिव (डेयर) एवं सचिव
भा.कृ.अनु.प.

(त्रिलोचन महापात्र)
सचिव (डेयर) एवं महानिदेशक
भा.कृ.अनु.प.

निदेशक की कलम से

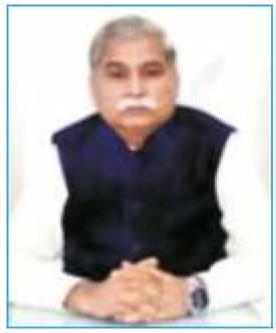

भारत संघ की राजभाषा हिन्दी के कार्यान्वयन के लिए प्रत्येक अधिकारी एवं कर्मचारी को राजभाषा अधिनियम 1963 व राजभाषा संकल्प 1968 तथा राजभाषा नियम 1976 का समुचित ज्ञान होना आवश्यक है। गृह मंत्रालय की ओर से राजभाषा विभाग बन जाने के पश्चात सरकारी कामकाज में हिन्दी के प्रयोग को बढ़ाने हेतु निरंतर प्रयास जारी किए जाते रहे हैं। राजभाषा के प्रयोग से निश्चित ही विभागीय कामकाज सुगमतापूर्वक सम्पादित किया जा सकता है। राजभाषा के प्रचार व प्रसार हेतु निदेशालय द्वारा 'हिमज्योति' पुस्तिका तैयार की गयी है। इस पुस्तिका में वैज्ञानिकों/अनुसंधानकर्ताओं के अनुसंधान पत्रों को जनसाधारण की सामान्य हिन्दी भाषा में प्रकाशित किया जा रहा है ताकि देश के किसान, विशेष रूप से मत्स्य पालन करने वाले किसानों को इससे जुड़ी जानकारी हिन्दी में प्राप्त कर वे इस पत्रिका से लाभान्वित हो सके। निदेशालय के राजभाषा अनुभाग द्वारा किया गया यह छोटा सा प्रयास वास्तव में कृषकों के लिए मील का पत्थर साबित होगा। मुझे यह बताने में प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है कि आकर्षक कलेवर, साज-सज्जा तथा समय के अनुरूप विषयों का चयन दर्शाता है कि किसानों को परम्परागत खेती की मानसिकता से बाहर निकलने एवं उन्हे प्रोत्साहित करने में यह पत्रिका काफी प्रभावी भूमिका निभा रही है। विगत् वर्षों में निदेशालय की इस पत्रिका को भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली द्वारा परिषद की सर्वोत्तम हिन्दी पत्रिका के लिए गणेश शंकर विद्यार्थी पुरस्कार प्रदान किया जाना इस बात का द्योतक है कि यह पत्रिका अपने उद्देश्यों की पूर्ति में सफल रही है। इसके लिए मैं निदेशालय के श्री अमित कुमार जोशी, सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी (राजभाषा) जो इस पत्रिका के सम्पादक भी हैं, को धन्यवाद देता हूँ जिनकी कड़ी मेहनत एवं लगन से यह संभव हो सका। मैं उन सभी सहयोगियों के प्रति भी आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने इस पत्रिका को सफल बनाने में अपना प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से योगदान दिया।

शुभकामनाओं सहित।

(प्रमोद कुमार पाण्डेय)
निदेशक

शीतजल मात्स्यकी अनुसंधान निदेशालय
Directorate of Coldwater Fisheries Research

सम्पादकीय

किसी देश की अस्मिता उसकी भाषा व संस्कृति से जुड़ी होती है। सौभाग्य से हमारा देश भाषा एवं सांस्कृतिक दृष्टि से एक समृद्ध राष्ट्र है। देश के अधिकांश कृषक समुदाय, अनुसंधान कर्मियों एवं प्रसार कर्मिकों से सीधे जुड़ने का माध्यम उनकी ही भाषा में प्रकाशित पत्रिकाऐं हैं। "हिमज्योति" पत्रिका का प्रकाशन ऐसे ही प्रयासों की कड़ी है।

ऐसे तो अंग्रेजी भाषा की विभिन्न पुस्तकों, शोध पत्रिकाओं आदि में अलग-अलग बिखरी सामग्रियां उपलब्ध होती है परंतु हिन्दी में ऐसी कोई पुस्तक नहीं है, जिसमें मत्स्य पालन से जुड़ी जानकारियॉं एक ही जगह पर हिन्दी में सुलभ हों और जिनसे शोधार्थियों, मत्स्य पालकों एवं मत्स्य पालन में रूचि रखने वालों को आवश्यक जानकारी हिन्दी में प्राप्त हो सके। कृषि कार्य में मुख्यतः ग्रामीण परिवेश के लोग संलग्न हैं और वे, हिन्दी बोलते व समझते हैं। हमारा संस्थान षोध उपलब्धियों को आम कृशकों तक पहुँचाने एवं उन्हें लाभान्वित करने के उद्‌देश्य से संस्थान द्वारा विकसित सभी उन्नत प्रजातियों एवं उनकी उत्पादन तकनीकी से सम्बन्धित प्रसार पुस्तिकाओं को हिन्दी में प्रकाशित करता आया है। इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुए संस्थान की इस हिन्दी पत्रिका 'हिमज्योति' के इस अंक में मत्स्य पालन के अतिरिक्त संबन्धित विधाओं की विभिन्न प्रकार की सूचनाओं का संकलन किया गया है। हम सभी को ज्ञात है कि कृषि वैज्ञानिकों और किसानों के बीच की दूरी को कम करने में हिन्दी व अन्य भारतीय भाषाओं की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। संस्थान ने अपने इस दायित्व का निर्वहन भी पूर्णरूप से किया है। संस्थान की वेबसाइट द्विभाषी रूप में सुलभ है और बड़ी संख्या में किसान इसका लाभ उठा रहे हैं। किसी देश की अस्मिता उसकी भाषा व संस्कृति से जुड़ी होती है। इस पत्रिका में संस्थान के वैज्ञानिकों एवं मत्स्य विशेषज्ञों द्वारा सरल भाषा में लिखे उपयोगी वैज्ञानिक जानकारी से सराबोर लेखों को शामिल किया गया है, जिससे पर्वतीय क्षेत्र के किसानों की आजीविका में वृद्धि करने में मदद मिलेगी। पत्रिका प्रकाशन में प्रेरणा स्रोत निदेशालय के निदेषक महोदय डॉ. प्रमोद कुमार पाण्डेय का हम हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं जिनके कुशल मार्गदर्शन एवं सतत् सहयोग से यह पुनीत कार्य सम्भव हो पाया। हम उन लेखकों के प्रति भी कृतज्ञता प्रकट करते हैं जिन्होंने अपने प्रासंगिक लेखों द्वारा पत्रिका में अपना योगदान दिया। इन्ही षब्दों के साथ 'हिमज्योति' का यह अंक आपके समक्ष प्रस्तुत है। हमें आपके बहुमूल्य विचारें, सुझावों की प्रतीक्षा रहेगी ताकि भविष्य में यह पत्रिका और अधिक प्रभावशाली बन सके। आशा है यह पत्रिका अपने उद्‌देश्यों की पूर्ति में सफल होगी। इसी आषा एवं विश्वास के साथ।

(अमित कुमार जोशी)
सम्पादक

शीतजल मात्स्यकी अनुसंधान निदेशालय
Directorate of Coldwater Fisheries Research

अनुक्रमणिका

मत्स्य पालन एवं प्रबन्धन

3 भारत में शीतजल मात्स्यिकी के विकास एवं अनुसंधान के क्षेत्र में शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय की भूमिका
प्रमोद कुमार पाण्डेय एवं शाहनवाज अली

8 शीतजल मात्स्यिकी द्वारा पर्वतीय क्षेत्रों में जीविकोपार्जन की सम्भावनाऐं
अशोक कुमार नायक एवं पार्थदास

12 महत्वपूर्ण ट्राउट प्रजातियॉ
आर.एस. पतियाल एवं अमित कुमार जोशी

18 रेन्बो ट्राउट का पोषण एवं आहार
राजेश एम., बीजू सैम कमलम् एवं सीजी अलक्जेंडर

21 पर्वतीय क्षेत्रों में तालाब निर्माण एवं समन्वित मत्स्य पालनः एक सामान्य जानकारी
संजय कुमार छिम्वाल

30 पर्वतीय क्षेत्रों में कॉमन कार्प (साइप्रिनस कार्पियो) पालन
सुरेश चन्द्रा

32 एकीकृत मछली पालनः प्रकार और फायदे
तोशीबा, शीतल शर्मा, सुमित कुमार, दीक्षा आर्य, एन.एन. पांडे एवं संतोष कुमार

35 रेन्बो ट्राउट का प्रजनन एवं बीज उत्पादन
सुरेश चन्द्रा

39 शीतजल मत्स्य बीज के आयात के दौरान रखी जाने वाली सावधानियाँ
सोहन सिंह, हरि कृष्णा एवं अमित पाण्डे

43 पर्वतीय क्षेत्रों में मछली पकड़ने के उपकरण
आर.एस. पतियाल, पार्थ दास एवं राजेश एम.

45 हिमालयी क्षेत्रों में मत्स्य उत्पादन बढ़ाने का एक सशक्त माध्यम–पिंजरा (केज) पालन
सुरेश चन्द्रा

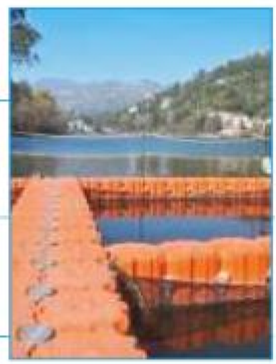

रोग/पोषण

55 शीतजल मत्स्य पालन तालाबों की बीमारियाँ एवं उपचार विधियाँ
सुमंत कुमार मल्लिक एवं संतोष कुमार

64 रोगाणुरोधक पेप्टाइड्स (एंटी माइक्रोबिअल पेप्टाइड-एएमपी)
यामिनी लोहुमी एवं अमित पाण्डे

67 ऑंत के लिए लाभकारी फाइबर का वर्गीकरण
अंजू काला, वैभव खरड़े, एल.सी. चौधरी एवं अभिषेक चन्द्र सक्सेना

69 मछली मांसाहार एवं संसर्ग रोग
दिनेश कुमार शर्मा

कृषि

75 वर्मी कम्पोस्ट के माध्यम से पशुधन अपशिष्ट प्रबन्धन
प्रज्ञा भदौरिया, अंजनी कुमार एवं सीमा यादव

79 मोटे अनाज (मिलेट्स) की उपयोगिता एवं मूल्यवर्धित उत्पाद
सुधा जुकारिया, शशि तिवारी एवं सी. तिवारी

88 पर्वतीय क्षेत्रों में मसाला फसलों की खेती कर लाभ कमाएं
प्रतिभा जोशी, रेनू सनवाल एवं रेनू जेठी

93 कृषि क्षेत्र में डिजिटल मार्केटिंग
शशि तिवारी, सुधा जुकारिया एवं सी. तिवारी

97 मोटा अनाज-खुशहाल एवं स्वस्थ्य जीवन
संजय कुमार, विधापति चौधरी, शिवनाथ सुमन एवं रविन्द्र कुमार तिवारी

100 बदलते मौसम में राजमा की वैज्ञानिक खेती
संजय कुमार, विधापति चौधरी, शिवनाथ सुमन एवं रविन्द्र कुमार तिवारी

104 उन्नत कृषि प्रौद्योगिकियों के प्रसार में मोबाइल ऐप्स की भूमिका
रेनू जेठी, प्रतिभा जोशी, गिरिजेश सिंह महरा एवं गीतांजलि जोशी

107 कृषि फसलों पर जंगली जानवरों का खतराः कारण और संभावित समाधान
इंदु रावत, मनीशा आर्या एवं रेनू जेठी

110 एआई तकनीकी का कृषि में उपयोगः एक नई क्रांति
संतोष कुमार सिंह एवं आराधना कुमारी

113 हिमालयी क्षेत्रों में सेब की सघन बागवानी मार्गदर्शिका
दिव्या मनोज पाण्डे

अन्य

119 पर्यावरण, मानव स्वास्थ्य और मानव अधिकार
शिवम दुबे, अनुज त्यागी,सुमित कुमार, एन. उदय किरन एवं ब्रह्मदेव यादव

125 इमल्शन आधारित पॉल्ट्री मांस उत्पादों का प्रसंस्करण
सुमन तालुकदार, सागर चंद, देवेंद्र कुमार, तनबीर अहमद, आशिम कुमार बिस्वास, अरूप रतन सेन, गीता चौहान एवं आई.पी. देवदासन

129 मत्स्य पालन के द्वारा आय का अर्जन एवं महिलाओं की सहभागिता
नीतू शाही, सुमंत कुमार मल्लिक एवं अमित कुमार जोशी

134 बौद्धिक सम्पदा अधिकार
एस.अली एवं एन.एन. पाण्डे

138 नारी एक आधुनिक दृष्टि
शारदा मालरा

140 उत्तराखण्ड भू–कानून
कविता पत्वाल

142 आश्वासन
शारदा मालरा

कविता / कहानी

कविता / कहानी

145 अन्तर
संदीप जोशी

146 औरत की वेदना
भूमिका रावत

शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय
Directorate of Coldwater Fisheries Research

मत्स्य पालन एवं प्रबन्धन

भारत में शीतजल मात्स्यिकी के विकास एवं अनुसंधान के क्षेत्र में शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय की भूमिका

प्रमोद कुमार पाण्डेय एवं शाहनवाज़ अली
भाकृअनुप–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल

भारतीय उपमहाद्वीप में शीतजल मात्स्यिकी की शुरुआत ब्रिटिश प्रशासकों द्वारा उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में दो मुख्य प्रकार की विदेशी ट्राउट प्रजातियों की स्थापना के साथ की गई थी। ट्राउट मछली की दो मुख्य प्रजातियाँ ब्राउन ट्राउट (सल्मो ट्रुटा फारियो) और रेनबो ट्राउट (ओंकोरिंकस मायकिस) हैं जिन्हें कश्मीर घाटी में निरंतर किये गये प्रयासों के बाद सफलतापूर्वक स्थापित किया गया। कश्मीर घाटी की नदियों एवं पहाड़ी नालों में इन ट्राउट प्रजातियों को स्थापित करने का मुख्य लक्ष्य मत्स्य आखेट था, जिसे ब्रिटिश प्रशासकों एवं प्रकृतिवादी लोगों के मनोरंजन के लिये विकसित किया गया था। भारत में ट्राउट की सफलतापूर्वक नदियों में स्थापना एवं प्राकृतिक प्रजनन को देश में शीतजल मात्स्यिकी विकास की औपचारिक शुरुआत कहा जा सकता है। कई दशकों तक मत्स्य पालन विकसित करने का एकमात्र उद्देश्य मत्स्य आखेट को विकसित करना एवं आखेटको के मनोरंजन की जरूरतों को पूरा करने के लिए रहा। बाद में, इन प्रजातियों को भोजन के रूप मे उपयोग में लाने हेतु बीज उत्पादन के लिए हैचरियां स्थापित की गईं, ताकि इन प्रजातियों को मत्स्य–पालन में लाया जा सके। इस प्रकार पहाड़ी मत्स्य पालन का विकास चयनित स्थानों, विशेष रूप से कश्मीर घाटी और प्रायद्वीपीय भारत के कुछ हिस्सों में शुरू हुआ। इसके पश्चात, तीसरी पंचवर्षीय योजना के दौरान 1963 में हारवान, जम्मू और कश्मीर में शीतजल मत्स्य पालन अनुसंधान केंद्र की स्थापना के साथ ठंडे पानी में मत्स्य पालन पर अनुसंधान शुरू हुआ। केंद्र की गतिविधियां तेजी से बढ़ीं और इसने देश के शीतजल के मत्स्य संसाधनों पर महत्वपूर्ण जानकारियाँ एकत्रित की। तत्पश्चात् यह पाया गया कि शीतजल मत्स्य पालन के द्वारा पहाड़ी क्षेत्रों में रहने वाली आर्थिक रूप से वंचित आबादी को खाद्य सुरक्षा प्रदान करने एवं ग्रामीण आय उत्पन्न करने की क्षमता है। इन बिंदुओं को ध्यान मे रखकर 24 सितंबर 1987 को राष्ट्रीय शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान केंद्र (NRCCWF) को एक स्वतंत्र अनुसंधान केंद्र के रूप में स्थापित किया गया । यह उल्लेखनीय है कि विदेशी एवं स्वदेशी मछली प्रजातियों के संवर्धन के साथ शीतजलीय प्राकृतिक संसाधन जैसे की नदियों एवं पहाड़ी नालों में पाई जाने वाली मत्स्य प्रजातियों के विभिन्न पहलुओं पर अनुसंधान करने वाली यह देश की एकमात्र राष्ट्रीय सुविधा है। बाद में, एनआरसीसीडब्ल्यूएफ की लगातार बढ़ती गतिविधियों और विभिन्न हिमालयी राज्यों में शीतजल में मत्स्य पालन की अधिक संभावनाओं को ध्यान में रखते हुए, इसे शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय (डीसीएफआर) में अपग्रेड कर दिया गया। इसका मूल उद्देश्य जम्मू और कश्मीर से लेकर अरुणाचल प्रदेश तक सभी हिमालयी राज्यों में संसाधनों का उपयोग और वृद्धि करके स्थान, स्थिति और सिस्टम–विशिष्ट प्रौद्योगिकियों को विकसित करना था। आज के दिन निदेशालय देश के हिमालयी और प्रायद्वीपीय भागों में शीतजल मात्स्यिकी के क्षेत्र में मत्स्य पालन अनुसंधान को मजबूत करने के लिए एक राष्ट्रीय सुविधा के रूप में कार्यरत है। निदेशालय द्वारा प्राकृतिक संसाधनो में मत्स्य प्रजातियों के संरक्षण और प्रबंधन और पहाड़ी जलीय–कृषि के विकास पर प्रमुख जोर देने के साथ अनुसंधान कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। निदेशालय के पास जलीय संसाधन प्रबंधन, जलीय कृषि, मत्स्य स्वास्थ्य प्रबंधन और रोग निदान, मत्स्य पोषण और चारा विकास, साथ ही आणविक आनुवंशिकी और

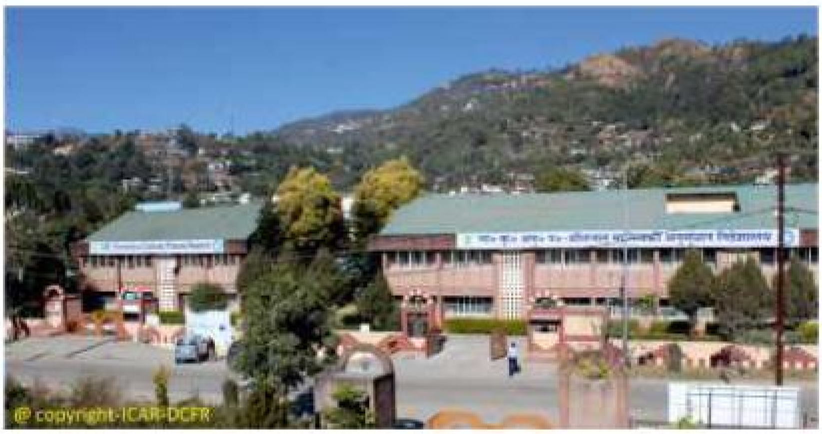

जैव प्रौद्योगिकी जैसे विभिन्न क्षेत्रों में अनुसंधान के लिए अत्याधुनिक प्रयोगशाला सुविधाएं हैं। पिछले तीन दशकों के दौरान, आईसीएआर–डीसीएफआर ने शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान में सराहनीय सफलता हासिल की है और विभिन्न हितधारकों के लिए आवश्यकता–आधारित प्रौद्योगिकियों का प्रसार किया है। इसने मत्स्य उत्पादन, प्रजातियों और प्रणाली विविधीकरण, मत्स्य स्वास्थ्य प्रबंधन, महत्वपूर्ण प्रजातियों के आनुवंशिक लक्षण वर्णन, लुप्तप्राय मत्स्य प्रजातियों के संरक्षण और प्रशिक्षण और कौशल विकास के माध्यम से मानव संसाधन विकास को बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। यह निदेशालय देश एवं विदेश के कई विश्वविद्यालयों, गैर सरकारी संगठनों के साथ मिलकर शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान के नये आयामों पर महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। पिछले पैंतीस वर्षों से यह संस्थान अपने अथक परिश्रम एवं प्रयासों के द्वारा अपने दृष्टिकोण को वस्तुतः साकार करने के गौरवशाली पथ पर है।

अधिदेश एवं मिशन

आईसीएआर–डीसीएफआर भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आईसीएआर) के अन्तर्गत में एक घटक अनुसंधान संगठन है और शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान और जलीय कृषि के लिए प्रौद्योगिकियों के विकास के लिए पूरी तरह से समर्पित है। पिछले तीन दशकों की अपनी यात्रा के दौरान, इसने देश के शीतजल मत्स्य पालन के क्षेत्र के विकास के लिए अथक प्रयास किया है। इसने पहाड़ी किसानों के सामाजिक आर्थिक विकास और आजीविका सुरक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसके परिभाषित अधिदेश इस प्रकार हैं, (i) शीतजल मात्स्यिकी और जलीय कृषि में बुनियादी, रणनीतिक और व्यावहारिक अनुसंधान करना (ii) पहाड़ी मत्स्य संसाधनों पर जानकारी के भंडार के रूप में कार्य करना, और (iii) प्रशिक्षण, शिक्षा और विस्तार के माध्यम से मानव संसाधन विकास करना। निदेशालय का मिशन है "शीतजल मात्स्यिकी संसाधनों के आकलन और प्रबंधन के लिए एक उत्कृष्ट राष्ट्रीय सुविधा बनना, पहाड़ी जलीय कृषि की प्रौद्योगिकियों और मॉडलों को विकसित करना और क्षेत्र के सतत् विकास के लिए रणनीति तैयार करने में महत्वपूर्ण योगदान करना।" यह निदेशालय किसानों तक सीधी पहुँच रखता है और यह "प्रयोगशाला से भूमि" और "भूमि से प्रयोगशाला'' के मंत्र के प्रति प्रतिबद्ध है। वर्षों से निदेशालय ने अनुसंधान के माध्यम से किसानों और अन्य हितधारकों की समस्याओं का समाधान किया है और न केवल किसानों को बल्कि पहाड़ी राज्यों के विभिन्न संबंधित विभागों को भी लाभान्वित करने वाली व्यवहार्य तकनीकें प्रदान की हैं। अपने काम और प्रतिबद्ध जनशक्ति के माध्यम से, आईसीएआर–डीसीएफआर इस क्षेत्र को आत्मनिर्भर बनाने के लिए आत्मनिर्भर भारत के सपनों को हासिल करने के लिए काम कर रहा है।

निदेशालय का बुनियादी ढाँचा एवं अनुसंधान सुविधाऐं

आईसीएआर – डीसीएफआर निदेशालय 1470 मीटर की ऊंचाई पर उत्तराखंड के नैनीताल जिले के भीमताल में स्थित है। उत्तराखंड हिमालय पर्वत श्रृंखला की तलहटी में स्थित है, जो कई ग्लेशियरों, नदियों, घने जंगलों और बर्फ से ढकी पर्वत चोटियों के साथ प्राकृतिक संसाधनों, विशेष रूप से पानी और जंगलों से समृद्ध है। राज्य को चार–धामों, बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री और यमुनोत्री के चार सबसे पवित्र और प्रतिष्ठित हिंदू मंदिरों पर गर्व है, जो विशाल पहाड़ों में स्थित हैं। निदेशालय नैनीताल, भीमताल, सातताल, नौकुचियाताल और श्यामलाताल जैसी सुंदर और प्रसिद्ध शांत हिमालयी झीलों से घिरा हुआ है। आईसीएआर–डीसीएफआर का मुख्यालय भीमताल में है और वर्तमान प्रतिष्ठान में आवश्यक बुनियादी सुविधाएं उपलब्ध हैं जिनमें अच्छी तरह से सुसज्जित अनुसंधान प्रयोगशालाएं, पुस्तकालय, सभागार, फीड मिल, मछलीघर, मत्स्य संग्रहालय, हैचरी

और बीज पालन इकाईयां महत्वपूर्ण हैं। हाल के वर्षों में, निदेशालय ने टेबल साइज रेनबो ट्राउट की गहन उत्पादन के लिए देश का पहला री–सर्कुलेटरी एक्वाकल्चर सिस्टम (आरएएस) स्थापित किया है। निदेशालय के पास कृषि गतिविधियों को संचालित करने के लिए चंपावत जिले (उत्तराखंड) में एक फील्ड सेंटर और प्रायोगिक मत्स्य फार्म (चीरापानी) है। फार्म में ट्राउट हैचरी, नर्सरी और रेनबो ट्राउट के ब्रुड़ स्टॉक पालन के लिए रेसवे और देशी और विदेशी मछली प्रजातियों के विभिन्न पहलुओं पर फील्ड परीक्षण करने के लिए टैंक उपलब्ध हैं।

भारत के ठंडे पानी के मत्स्य संसाधनों की एक झलक

भारत का शीतजलीय क्षेत्र उत्तर–पश्चिम से उत्तर–पूर्वी हिमालय क्षेत्र और पश्चिमी घाट के कुछ हिस्सों तक फैला हुआ है, जिसमें लगभग दस राज्य शामिल हैं। शीतजलींय प्राकृतिक संसाधनों में लगभग 8,243 किमी लंबी नदियाँ और नदियाँ, 20,500 हेक्टेयर प्राकृतिक झीलें, 50,000 हेक्टेयर प्राकृतिक और मानव निर्मित जलाशय और 2,500 हेक्टेयर ऊंचाई पर खारे पानी की झीलें शामिल हैं। हिमालय क्षेत्र में 19 प्रमुख नदियाँ बहती हैं जिनमें सिंधु, गंगा और ब्रह्मपुत्र शामिल हैं। सिंधु और ब्रह्मपुत्र सबसे लंबी हैं, प्रत्येक का पर्वत जलग्रहण क्षेत्र लगभग 160,000 वर्ग किमी है। हिमालयी क्षेत्रों के मध्य और ऊंचाई वाले क्षेत्रों में कई झीलें स्थित हैं। हिमालय क्षेत्र के जल निकायों में विविध प्रकार की मछलियाँ निवास करती हैं। भारत में उपलब्ध कुल मत्स्य प्रजातियों में से, 17% प्रजातियों को पर्वतीय पारिस्थितिकी तंत्र से प्रलेखित किया गया है, जो इस हिमालय क्षेत्र की स्थिति को जैविक रूपों की उत्पत्ति और विकास के केंद्र के रूप में स्थापित करता है। हिमालय में लगभग 218 मत्स्य प्रजातियों को सूचीबद्ध किया गया है। इनमें पाई जाने वाली प्रजातियों में स्नो ट्राउट, महासीर, माइनर कार्प, बारिल्स, मिननो, कैटफिश, लोचेस और विदेशी ट्राउट महत्वपूर्ण हैं। यह बताना भी अहम है कि हिमालय क्षेत्र पारिस्थितिक रूप से नाजुक है, निरंतर विकासात्मक गतिविधियों के कारण यह जलीय वनस्पतियों और जीवों के लिए और भी संवेदनशील हो गया है। परिणामस्वरूप, कई प्रजातियाँ लुप्तप्राय या संकटग्रस्त हो गई हैं और इसलिए, उनके संरक्षण पर तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता है। हालाँकि, विदेशी ट्राउट की शुरुआत के बाद, हिमालयी राज्यों में वाणिज्यिक जलीय कृषि ने उच्च मूल्य वाली मछली उत्पादन में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उच्च और मध्य–ऊंचाई वाले क्षेत्रों और तलहटी को कवर करने वाली तीन–आयामी मछली खेती विदेशी ट्राउट और स्वदेशी मछली प्रजातियों के आधार पर जलीय कृषि उत्पादन के लिए एक सफल मॉडल रही है। इसने उत्पादन बढ़ाने, आजीविका सुरक्षा और मछली प्रजातियों के संरक्षण के लिए जलीय संसाधनों के स्थायी उपयोग का अवसर प्रदान किया है।

शीतजल मात्स्यिकी विकास में आईसीएआर–डीसीएफआर की भूमिका

आईसीएआर–डीसीएफआर देश के शीतजल मात्स्यिकी को विकसित करने के लिए एक नोडल एजेंसी है और इसने अपने अनुसंधान और विकासात्मक गतिविधियों के माध्यम से इस क्षेत्र को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। निदेशालय ने प्राकृतिक संसाधनो में मत्स्य दोहन एवं प्रबंधन तथा जलीय कृषि विकास दोनों के लिए मॉडल और प्रौद्योगिकियां विकसित की हैं। मत्स्य संसाधनों के संरक्षण और सतत उपयोग के लिए जलीय संसाधन मूल्यांकन आवश्यक है। निदेशालय ने जलीय कृषि उपयुक्तता और मत्स्य विकास के लिए हिमालयी राज्यों के जलीय संसाधनों के जीआईएस आधारित मानचित्र विकसित किए हैं। सतत् उपयोग और संरक्षण के लिए रणनीति तैयार करने के लिए पारिस्थितिक मॉडल विकसित करने के लिए नदियों के आवास और स्वास्थ्य का मूल्यांकन किया जाता है। पर्वतीय क्षेत्रों में जलीय कृषि के

विकास की काफी सम्भावनाएँ हैं। निदेशालय द्वारा विकसित मध्य–पहाड़ी क्षेत्रों में पॉलीटैंक आधारित बहु–स्तरीय एकीकृत मछली पालन मॉडल काफी लोकप्रिय है एवं कई मत्स्य पालकों द्वारा अपनाया भी गया है। इस नए जलीय–कृषि मॉडल से मध्य–ऊंचाई वाले क्षेत्रों में प्रति इकाई क्षेत्र मछली उत्पादकता 0.3 kg/m^3 से 0.5 kg/m^3 तक बढ़ी है। शीतजलीय कृषि में प्रजातियों का विविधीकरण एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। हाल ही में, निदेशालय ने भोजन और सजावटी मूल्यों वाली छह नई प्रजातियों के लिए प्रजनन और बीज उत्पादन प्रोटोकॉल विकसित किया है। गोल्डन महाशीर (टौर प्युटिटौरा) भारतीय उपमहाद्वीप की सबसे महत्वपूर्ण और लोकप्रिय मीठे पानी की मछली है और इसे 'हिमालय का गौरव' कहा जाता है। हालाँकि, इसके अत्यधिक दोहन के कारण, इसकी प्राकृतिक आबादी में काफी गिरावट आई है, जिससे IUCN की लाल सूची में इसे 'लुप्तप्राय' प्रजाति के तौर पर अंकित किया गया है। निदेशालय ने न केवल संरक्षण बल्कि इस प्रजाति के प्रजनन और प्रसार में भी ऐतिहासिक प्रयास किए हैं। आईसीएआर–डीसीएफआर के वैज्ञानिकों ने तापमान और फोटोपीरियड में खास बदलाव के माध्यम से बीज उत्पादन के लिए गोल्डन महासीर का सफलतापूर्वक कैप्टिव प्रजनन विकसित किया है। रेनबो ट्राउट ठंडे पानी की जलीय कृषि के लिए मुख्य व्यावसायिक उच्च मूल्य वाली प्रजाति है और इसका अधिकांश उत्पादन उत्तर–पश्चिमी क्षेत्रों (जम्मू और कश्मीर और हिमाचल प्रदेश) से होता है। हालाँकि, ट्राउट खेती में नए उद्यमों के जुड़ने के कारण, उत्तरपूर्वी हिमालय क्षेत्र (जैसे सिक्किम) के उत्पादन में हाल ही में काफी वृद्धि देखी गई है। भारत में कुल रेनबो ट्राउट उत्पादन मात्र 147 टन (2004–05) से बढ़कर लगभग 3500 टन (2021–22) हो गया है। निदेशालय ने रेनबो ट्राउट फ्राई की प्रारंभिक खुराक के लिए कुशल और लागत प्रभावी प्रोटीन आधारित स्टार्टर फीड विकसित किया है, जो त्वरित विकास और बेहतर एफसीआर प्रदान करता है। विकसित फीड व्यावसायिक रूप से उपलब्ध है और अब प्रारंभिक चरण में मृत्यु दर को कम करने में योगदान देता है, जिससे ग्रो–आउट कल्चर के लिए अधिक स्टॉकिंग सामग्री उपलब्ध हो जाती है। देश में प्रमुख ट्राउट उत्पादन प्रणाली एक फ्लो–थ्रो प्रणाली है जिसमें कंक्रीट रेसवे जो श्रृंखला या समानांतर व्यवस्था में डिजाइन किए जाते हैं और इस उत्पादन प्रणाली में पिघली हुई बर्फ के झरने से प्राप्त धारा के पानी को गुरुत्वाकर्षण का उपयोग करके रेसवे में स्थानांतरित किया जाता है। इन रेसवे में समन्यतः स्टॉकिंग घनत्व कम होता है (15–20 kg/m^3) और इस प्रकार इन पारंपरिक प्रणालियों में 800–100 किग्रा/रेसवे (क्षेत्रफल 45 m^3) तक ट्राउट का उत्पादन होता है तथा यह पालन के दौरान लागू स्टॉकिंग घनत्व और प्रबंधन उपायों पर निर्भर करता है। निदेशालय ने टेबल आकार के रेनबो ट्राउट की गहन उत्पादन के लिए एक स्वदेशी री–सर्कुलेटरी एक्वाकल्चर सिस्टम (आरएएस) विकसित और स्थापित किया है, जहां स्टॉकिंग घनत्व को 50 kg/m^3 तक बढ़ाया जा सकता है। इसके अलावा, आरएएस उत्पादित ट्राउट के लिए पानी की आवश्यकता को प्रति किलोग्राम 1 घन मीटर से भी कम किया जा सकता है और इस प्रणाली के माध्यम से रेसवे की तुलना में पालन अवधि को 5–6 महीने तक कम किया जा सकता है, जहां प्रति किलोग्राम ट्राउट के उत्पादन के लिए 200 घन मीटर पानी की आवश्यकता होती है, और विकास की अवधि लगभग 14–16 महीने है। आरएएस भीमताल में स्थापित किया गया है, और कई उद्यमियों और राज्य विभागों ने वाणिज्यिक ट्राउट उत्पादन के लिए मॉडल को स्थापित करने में रुचि दिखाई है।

इसके अलावा, निदेशालय शीतजलीय मत्स्य प्रजातियों के रोग निदान और स्वास्थ्य प्रबंधन में गहनता से कार्य कर रहा है। सक्रिय रोग निगरानी उन प्रमुख कार्यक्रमों में से एक है जिसने मछली की बीमारियों की रोकथाम के लिए रोग के प्रारंभिक निदान और उपचारात्मक उपायों में मदद मिलती है। निदेशालय ने रोगजनको की पहचान के लिए अलग–अलग जांच विकसित की है और साथ

ही शीतजलीय मत्स्य पालन योग्य प्रजातियों की प्रमुख बीमारियों के लिए दवाओं के विकास पर काम किया है। प्रजातियों की पहचान एवं विकास के लिए आनुवंशिकीय तकनीक का उपयोग अत्यंत आवश्यक है। निदेशालय ने शीतजलीय मत्स्य प्रजातियों में आणविक–मार्करस की पहचान की है जिसकी सहायता से महत्वपूर्ण प्रजातियों की आनुवंशिकीय विविधिता को जाँचने में मदद मिलती है तथा ब्रूड स्टॉक के विकास एवं मत्स्य प्रजातियों के संरक्षण के लिए आवश्यक जानकारी मिलती है। वैश्विक जलवायु परिवर्तन जैव विविधता के लिए कई खतरे पैदा करता है और मीठे पानी के आवासों की भौतिक, रासायनिक और जैविक विशेषताओं को बदल देता है, जिसका सहवर्ती प्रभाव मीठे पानी की मछलियों पर पड़ता है, खासकर शीतजलीय क्षेत्रों में। निदेशालय ने रणनीति बनाकर इन चुनौतियों का समाधान करने के लिए अनुसंधान कार्यक्रम शुरू किए हैं।

शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, चुनौतीपूर्ण और जटिल समस्याओं के नवीन और सरल समाधान के लिए एक वैश्विक ज्ञान केंद्र बनने के उद्देश्य से शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान और विकास के क्षेत्र में राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपने लक्ष्यों को साकार करने के लिए उत्साह के साथ अग्रसर है।

शीतजल मात्स्यिकी द्वारा पर्वतीय क्षेत्रों में जीविकोपार्जन की सम्भावनाऐं

अशोक कुमार नायक एवं पार्थदास
भा.कृ.अनु.परि.–भारतीय जल प्रबन्धन संस्थान, चन्द्रशेखरपुर, भुवनेश्वर

पर्वतीय क्षेत्र में जहाँ जनसंख्या कभी बहुत कम थी, आज निरन्तर वृद्धि हो रही है जिससे पहाड़ो का आर्थिक–सामाजिक तन्त्र असंतुलित हो रहा है। बेतहाशा बेरोजगारी व पलायन अपना सिर उठा रहे हैं। उत्तरांचल में मुख्य नदियों की लम्बाई लगभग 3500 किमी0 है तथा झीलों का क्षेत्रफल लगभग 400 हेक्टेयर है। इस जल क्षेत्र में गहन व संकलित मत्स्य पालन करने से इस क्षेत्र की नही वरन् सम्पूर्ण प्रदेश की आर्थिक–सामाजिक स्थिति मजबूत की जा सकती है। जल पारिस्थतिकी का संरक्षण भी मत्स्य पालन से संभव हो सकता है।

इस क्षेत्र में प्रचुर जल संपदा का जो नदियों, झीलों व तालाबों के रूप में उपलब्ध है अभी तक व्यवहारिक व व्यवसायिक रूप से उपयोग नहीं किया जा सका है। पिछले एक दशक से यहाँ की जनता पारम्परिक फसलों के साथ–सपमि फल व सब्जियों का उत्पादन बखूबी कर रही है। जिससे उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है। नदी, नालो व झीलों के आस–पास अपनी भूमि में किसान सिंचाई हेतु बाधं बनाते है उन छोटे–छोटे बाँधों को गहन मत्स्य–पालन तालाब के रूप में प्रयोग कर मत्स्य उत्पादन किया जा सकता है। व्यापारिक स्तर पर मत्स्य उत्पादन करने से पर्वतीय क्षेत्र में पौष्टिक आहार की कमी को दूर किया जा सकता है। मछली, पोषक तत्वों व खनिज लवणों से युक्त होने के सपमि–सपमि एक सुपाच्य आहार है। अतः इस क्षेत्र में कुपोषण की विकट स्थिति को दूर करने में मत्स्य एक उपयोगी माध्यम हो सकता है। पर्वतीय क्षेत्र की नदियों व झीलों में मत्स्य पालन हेतु उपयुक्त देशी व विदेशी प्रजातियां जैसे महाशीर, साइजोथोरेक्स, रोहू, कामन कार्प और ट्राउट की प्रजातियां पायी जाती है। यह एक हर्ष का विषय है कि पिछले कुछ वर्षो में कुमाऊँ व गढ़वाल मण्डलों में सक्रिय किसानों ने मछली पालन का कार्य प्रारम्भ किया है। परन्तु उच्च कोटि के मत्स्य बीज, उचित मत्स्य प्रबन्धन व प्रशिक्षण की कमी से मत्स्य उत्पादन संम्भावनाओ के अनुरूप नहीं हो पा रहा है। आज के अधुनिक युग में कोई भी व्यवसाय किसी जाति विशेष पर निर्भर नहीं रह गये है, इसलिये संकलित मत्स्य पालन के द्वारा इस क्षेत्र की विकास की संम्भावनाऐं और अधिक बढ़ सकती हैं। संकलित मत्स्य पालन में मीन के साथ कुक्कुट पालन, बत्तख पालन, पशुपालन अपनाकर कम लागत में अधिक धनोपार्जन किया जा सकता है।

पर्वतीय क्षेत्रों में मत्स्य पालन के लिये नई तकनीकी में तालाब व बाँध से लेकर मत्स्य प्रजातियों का चयन, मत्स्य बीज संचय, पोषण, बीज उत्पादन, पानी के भौतिक व रासायिनक गुण, मत्स्य रोग व उनका निराकरण और शिकार तथा विपणन आदि पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। उपरोक्त तकनीकी के बारे में संक्षेप में यहाँ उल्लेख किया जा रहा है जिससे पर्वतीय तथा मैदानी क्षेत्र के मत्स्य पालक व मत्स्य प्रसार वैज्ञानिक लाभान्वित होगें।

सर्वप्रथम इस क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति को ध्यान में रखकर मत्स्य पालक को तालाब निर्माण विधि का विशेष ज्ञान होना आवश्यक है जो कि निम्न प्रकार है।

तालाब निर्माण व प्रबन्धन

तालाब निर्माण पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। इसके लिये छोटे–छोटे 0.3–0.5 एकड़ से लेकर 0.5 हेक्टेयर माप के तालाब उपयोगी होते हैं। तालाब मिट्टी के ही बनाये जाने चाहिए। तालाब में उचित जल प्रवेश व निकास का प्रबन्ध होना चाहिए। जल निकास का प्रबन्ध तली व सतह दोनो ओर से होना चाहिए जिनसे इच्छानुसार जल स्तर बदला जा सकता है। तालाब में निरन्तर जल प्रवाह से मत्स्य उत्पादन को कई गुना बढ़ाया जा सकता है। तालाब में निरन्तर जल प्रवाह बने रहने से जल के साथ प्राकृतिक भोजन व घुलित आक्सीजन प्रवेश करती रहती है दूसरी ओर जल में विभिन्न प्रकार के उपापचयज जैसे अमोनिया, नाइट्रोजन, कार्बन डाई–आक्साइड जो मछलियों के लिये हानिकारक होती है जल निकासी के साथ तालाब से बाहर निकलते रहते हैं। एक के बाद दूसरा तालाब बनाने से मत्स्य फार्म प्रबन्ध व विपणन में विशेष सुविधा होती है। तालाब का खादीकरण एक नाजुक प्रक्रिया है। निर्मित

तालाब को पानी से भरने के पश्चात् 2–5 टन गोबर प्रति हेक्टेयर तथा 250किग्रा0 (अनबूझा) चूना प्रति हेक्टेयर डाला जाना चाहिए। पुराने तालाबों में इसकी मात्रा कम कर दी जाती है क्योंकि प्राकृतिक तल होने से उत्पादन का संन्तुलन हो जाता है। सप्ताह में एक बार पानी की भौतिक व रासायनिक गुण जैसे पी.एच.मान, घुलित ऑक्सीजन, नाइट्रेट, फास्फेट और क्षारीयता की जाँच अवश्य करनी चाहिए (तालिका–1)। तालाब के बाँध की चौड़ाई कम से कम 3–4 मीटर होनी चाहिए। जिसमें कृषक आसानी से फल व सब्जी का भी उत्पादन कर सकता है। फल वृक्ष तालाब के पश्चिम दिशा में ही लगाने चाहिए। नदी की ओर भू–क्षरण को रोकने वाले पेड़ तालाब से थोड़ा हटकर ही लगाने चाहिए।

तालिका 1: अच्छे उत्पादन के लिये तालाब की भौतिक व रासायनिक गुणों की विशेषता

पी.एच.मान	**07–09**
घुलित ऑक्सीजन	06–11 पी०पी०एम०
अविलता	150–200 पी०पी०एम०
क्षारीयता	90–190 पी०पी०एम०
नाइट्रेट	0.2–0.6 पी०पी०एम०
फास्फेट	0.1–0.4 पी०पी०एम०

मत्स्य बीज संचय

तालाब निर्माण के बाद उसमें संख्या व उच्च गुणवत्ता का मत्स्य बीज संचयन अति महत्वपूर्ण कार्य है। प्रथम वर्ष में भौगोलिक परिस्थितियों में उपलब्ध प्रजाति का मत्स्य बीज संचय करना चाहिए तत्पश्चात् द्वितीय वर्ष से स्थानीय तथा अभ्यागत प्रजातियों का संचय करना चाहिए। वायुश्वासी मछली जैसे क्लेरियस व हैटेरोप्न्यूस्टिस की प्रजातियों का संवर्धन भी अच्छी पैदावार दे सकता है। इन प्रजातियों को अधिक संचय दर पर निरन्तर जल–प्रवाह युक्त डिग्गियों या सीमेंट के तालाबों में पूर्ण कृत्रिम भोजन देकर अधिक अच्छा लाभ प्राप्त किया जा सकता है। मत्स्य बीज संचयन के समय वैज्ञानिक तकनीकी का ध्यान रखकर सतह भोजी, मध्य सतह भोजी व तल भोजी प्रजातियों की संख्या के अनुपात ठीक होना चाहिए (तालिका–2)। अधिक संचय दर से अच्छी पैदावार नहीं मिलती है। नई तकनीकी से नपुंशक मछलियों का पालन भी लाभकारी हो सकता है। मछलियों में केवल मादा पैदा करने की विधि विकसित कर ली गई है, जिससे वांछित लिंग की मछली का उत्पादन किया जा सकता है।

तालिका 2: मत्स्य पालन में प्रजातियों का संचय अनुपात (संचय दर 2500 अंगुलिकाएं प्रति 0.5 हेक्टेयर)

असन स्वभाव	प्रजाति	6 प्रजाति संवर्धन
सतह भक्षी	सिल्वर कार्प	300–500
	कतला	250–400
मध्य सतह भक्षी	महाशीर	300–500
	रोहू	300–600
तल भक्षी	कामन कार्प	100–300
	साइजोथोरेक्स	100–200

नर मछली पैदा करने के लिये 17 अल्फा मिथाइल टैस्टोस्टेरान हारमोन तथा मादा मछली हेतु 17 बीटा स्ट्रेडियाल हारमोन का उपयोग किया जाता है। मछलियों मे हैचिंग के उपरान्त उक्त हारमोन को

कृत्रिम भोजन के साथ मिश्रित करके दिया जाता है। इसके अधिक उपयोग से मछली नपुंशक हो जाती है। हारमोन के अतिरिक्त मछलियों में उनके आनुवंशिक तत्वो में थोड़ा परिवर्तन कर नर, मादा तथा नपुंशक मछलियां पैदा की जा सकती हैं। इसके लिये मत्स्य शरीर से प्राप्त अण्डाणु तथा शुक्राणु गर्म अथवा ठण्डी परिस्थिति में एक्सरे प्रघात प्रदान कर लिंग परिवर्तन किया जा सकता है।

कृत्रिम भोजन

गहन मत्स्य पालन पूर्णरूप से कृत्रिम भोजन पर आधारित होता है। अच्छी मत्स्य पैदावार के लिये उच्च श्रेणी का कृत्रिम आहार होना अत्यन्त आवश्यक है। कृत्रिम भोजन में मछली के लिये आवश्यक सभी अवयव उचित मात्रा में जैसे प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, खनिज लवण और विटामिन आदि मिश्रित रहते हैं। पर्वतीय क्षेत्र की नदियों व झीलों में उपलब्ध प्राकृतिक भोजन शीघ्र वृद्धि व अच्छे मत्स्य उत्पादन योग्य नहीं माना जाता है। इसलिये तालाबों में मत्स्य पालन हेतु उचित दर से कृत्रिम भोजन दिया जाना चाहिए। यह भोजन मत्स्य अवस्था के आधार पर अलग–अलग ढंग से दिया जा सकता है। फ्राई अवस्था में भोजन का सूखा चूर्ण बनाकर जल सतह में छिड़क देना चाहिए। अंगुलिका अवस्था में मिश्रित कृत्रिम भोजन का घोल बनाकर तालाब के चारो ओर छिड़क देना चाहिए। अंगुलिका अवस्था के बाद की अवस्था में दो विधियों से भोजन दिया जा सकता है। पहली विधि में भोजन को मिट्टी के बर्तनों में भिगो कर तालाब के निश्चित स्थानो पर डुबो दिया जाता है दूसरी विधि में नाइलोन के बोरे (चूने या उर्वरक के) की तली में 10–15 छिद्र किये जाते हैं। उस बोरे में भोजन रखकर एक बाँस सीधा गाड़कर उसपर बोरे को बाँध देते हैं। बोरा जमीन से 20 इंच ऊपर रहना चाहिए। भोजन के समय तालाब मे जल प्रवाह रोक देना चाहिए। यह विधि पर्वतीय क्षेत्रों के जल प्रवाहित तालाबों के लिये सर्वोत्तम विधि है। आधुनिक स्वचालित भोजन देने के यंत्रो को भी विकसित कर लिया गया है। जिससे आवश्यकतानुसार भोजन तालाब में आ जाता है ओर भोजन के दुरूपयोग की संभावनायें कम हो जाती हैं (तालिका–3)।

तालिका 3: 2500 अंगुलिकाओं के लिये कृत्रिम भोजन की औसत मात्रा किग्रा० प्रतिदिन

अवधि	कृत्रिम आहार किग्रा० प्रतिदिन
प्रथम 120 दिन	1.5
द्वितीय 90 दिन	3.0
तृतीय 90 दिन	4.5
चतुर्थ 90 दिन	6.0
कुल भोजन मात्रा	1500

मत्स्य बीज उत्पादन

पुरानी पारम्परिक तरीकों में मत्स्य बीज नदियों व अन्य जल धाराओं से फ्राई या अंगुलिका के रूप में एकत्रित कर तालाब में पाला जाता है। जिसमें अच्छी गुणवत्ता का बीज नहीं मिल पाता है। अतः मछली के बीज का उत्पादन वैज्ञानिक विधि द्वारा किया जाना चाहिए। यह विधि दो प्रकार की हो सकती है। प्रथम पारम्परिक हापा विधि है जिसके द्वारा इस क्षेत्र के मत्स्य पालक अपने तालाब में भी मत्स्य बीज का उत्पादन कर सकते है। दूसरी विधि आधुनिक सर्कुलर हैचरी की है जिसमें मत्स्य को कृत्रिम ढंगों जैसे पीयूष ग्रन्थि इन्जेक्शन द्वारा अथवा ओवाप्रिम एवं ओवाटाइड हार्मोनों से उत्प्रेरित कर स्वस्थ व उच्च गुणवत्ता वाले मत्स्य बीज का उत्पादन किसानों द्वारा उपलब्ध किया जा सकता है।

मछलियों के रोग

मत्स्य के वातावरण में थोड़ा बहुत परिवर्तन मत्स्य पालन को अधिक प्रभावित नहीं करता है लेकिन अधिक प्रदूषण इसके लिये हानिकारक होता है। गहन मत्स्य पालन में अपेक्षाकृत अधिक रोगों का प्रकोप पाया जाता है। कम तापमान के दौरान ही मत्स्य रोगों का आक्रमण होता है इसलिये समय–समय पर

तालाब के पानी व मछलियों का परीक्षण अवश्य करना चाहिए। शीतकाल में तालाब में जाल चलाना चाहिए। रोग का संक्रमण होने पर तुरन्त नियत मात्रा में चूना डालना चाहिए। पोटेशियम परमैग्नेट का 5 प्रतिशत घोल और वालमिड का उचित दर से छिड़काव रोग नियंत्रण में सहायक सिद्ध होता है।

मछलियों का शिकार व विपणन

तालाब का अच्छा प्रबन्ध मत्स्य शिकार व विपणन में बहुत लाभकारी होता है। गहन मत्स्य पालन में लगभग एक साल में मछलियां बेंचने लायक हो जाती हैं। इस पद्धति में मछलियां एक समान वृद्धि करती हैं इसलिये इन्हें पोषण तालाब से विपणन तालाब में रख देनी चाहिए। मत्स्य शिकार के लिये सैदव जाल (ड्रेग नेट) का ही उपयोग करना चाहिए। जाल को प्रयोग करने से पहले पोटेशियम परमैग्नेट के 5 प्रतिशत घोल में 10 मिनट तक डुबा लेना चाहिए, इससे मत्स्य तालाब में किसी प्रकार के संक्रमण को होने से रोका जा सकता है। पर्वतीय क्षेत्र में कुछ ब्राह्मण तथा कुछ वैश्यों को छोड़कर प्रायः सभी लोग मछली खाते हैं, इसलिये यहां पर्वतीय क्षेत्र में मत्स्य विपणन में कोई बड़ी समस्या नहीं हो सकती है।

वेद पढ़ना आसान है किन्तु जिस दिन
आपने किसी की वेदना को पढ़ लिया तो समझिये
ईश्वर को पा लिया।

महात्मा बुद्ध

महत्वपूर्ण ट्राउट प्रजातियाँ

आर.एस. पतियाल एवं अमित कुमार जोशी
भा.कृ.अनु.प.–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल

हिमालय पर्वत अपनी अदभुत भौगोलिक संरचना के साथ–साथ अनेकों भौतिक एवं जैविक विविधताओं से परिपूर्ण हैं। सम्पूर्ण हिमालय एवं अन्य दक्षिणी पर्वत श्रृंखलाओं के जल संसाधनों में 258 मत्स्य प्रजातियाँ पाई जाती हैं। जिनका उपयोग भोजन, आखेट, पर्यटन तथा सजावट के लिए किया जाता हैं। हिमालय की पर्वत श्रृंखलाओं में पाई जाने वाली प्रजातियों में ट्राउट मछलियों का विशिष्ट स्थान हैं। ट्राउट प्रजातियाँ दो प्रकार की होती हैं– देशी ट्राउट एवं विदेशी ट्राउट। देशी ट्राउट के अंतर्गत सिजोथोरेक्स एवं सिजोथोरिक्थ्यस जीनस प्रजातियाँ आती हैं। विदेशी ट्राउट प्रजातियों में रेनबो ट्राउट एवं ब्राउन ट्राउट प्रमुख प्रजातियाँ हैं। राइमस बोला को भी इंडियन ट्राउट कहा जाता हैं, लेकिन मत्स्य पालन, आखेट एंव पर्यटन की दृष्टि से विदेशी ट्राउट मछलियों का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। इन प्रमुख ट्राउट प्रजातियों का विवरण निम्नवत हैः–

असेला बर्फानी ट्राउट (*साइजोथोरेक्स रिचार्डसोनी*)

असेला बर्फानी ट्राउट (*साइजोथोरेक्स रिचार्डसोनी*) भारतीय उपमहाद्वीप स्थित हिमालय क्षेत्र की एक प्रमुख मत्स्य प्रजाति है। यह मछली हिमालय क्षेत्र में जम्मू कश्मीर से असम, सिक्किम, भूटान, नेपाल, पाकिस्तान तथा अफगानिस्तान तक पायी जाती है। इसे भारतवर्ष के अलग–अलग क्षेत्रों में भिन्न नामों से जाना जाता है। उत्तराखण्ड में इसे असेला, रसेला, जम्मू कश्मीर व हिमाचल प्रदेश में अलवन, गुलगुली तथा उत्तर पूर्व में ट्राउट कहा जाता है। यह हिमालय क्षेत्र की वेगवान नदियों, छोटी नदियों तथा पर्वतीय सदाबहार नालों में पायी जाती है। यद्यपि यह अपेक्षतया विस्तृत तापमान सहन कर लेती है लेकिन असेला ट्राउट के लिए अनुकूल तापमान 15.0° से 24.0° सें. के बीच रहता है, क्योंकि इसी तापमान पर मछली की शारिरिक वृद्धि, प्रजनन आदि क्रियाऐं सम्पन्न होती है। उच्च तथा मध्य हिमालय क्षेत्र की कुछ नादियों में असेला ट्राउट की प्रतिशत उपलब्धता 23.81 से 98.03 प्रतिशत तक आंकी गयी है। जबकि निम्न पर्वतीय क्षेत्र में प्रतिशत उपलब्धता कम हो जाती है। स्वादिष्ट तथा जायकेदार मांस के लिए असेला ट्राउट पूरे हिमालय क्षेत्र में विख्यात है, तथा सिक्किम, भूटान एवं नेपाल में इसकी बहुत अधिक मांग है। कुछ क्षेत्रों में इसे विदेशी इन्द्रधनुषी ट्राउट से भी अधिक पसन्द किया जाता है। यद्यपि पर्वतीय क्षेत्रों में संगठित मत्स्य तथा मत्स्य बाजारों का अभाव है फिर भी यह मछली स्थानीय उपभोक्ताओं तक पहुँचती है।

असेला ट्राउट का आकार

यह मछली आकार में लम्बी तथा अर्ध बेलनाकार होती है। इसका निचला होंठ चपटा होता है जिसके छोटे–छोटे दाने सदृश संरचनाऐं (पैपिली) बनी रहती है, जो एक चूषक (सकर) का रूप लिये होती हैं, यह विशिष्ट संरचना असेला ट्राउट की प्रमुख पहचान है। मछली का रंग स्टील सदृश भूरा होता है जो निचले भाग में हल्का हो जाता है। पेट का रंग हल्का सफेद–पीला होता है जिसमे कभी छोटे–छोटे भूरे या काले धब्बे होते हैं। इसका पृष्ठ पक्ष (डौरसल फिन) तथा पुच्छ पक्ष (कौडल फिन) भूरे–सफेद होते है, अन्य पक्ष भी कमोवेश पीले अथवा इसी रंग के होते है। पार्श्व रेखा (लेटरल लाइन) पूरी तथा धनुषाकार होती है। शल्क बहुत छोटे तथा दीर्घवृत्ताकार होते है, तथा पिछले भाग के शल्क अपेक्षतया आकार में बड़े होते है।

आवास

असेला ट्राउट हिमालय क्षेत्र में 270 से 2000 मी. तक ऊंचाई में स्थित छोटी नदियों तथा सदाबहार नालों में मिलती है। यह ग्लेशियर निर्मित नदियों तथा छोटे नालों के मिलने से बनी हुयी नदियों में मिलती है। यह पर्वतीय झीलों व जलाशयों में भी पायी जाती है। हिमालय क्षेत्र में स्थित

उपरोक्त जल स्रोतों में 4.1°–28.9° सें. तापमान के बीच इसकी उपलब्धता पायी गयी है। यह मछली नेपाल की नदियों में समुद्र तल से 1380 से 2180 मी. ऊंचाई तक में पायी जाती है।

प्राकृतिक आहार एवं प्रतिपूरक आहार

यह मछली जलीय संसाधनों के तल पर रहती है तथा तल भोजी प्रकृति की हैं। यह शाकाहारी तथा तल पर एकत्रित कार्बनिक पदार्थों चट्टानों, पत्थरों तथा नदी व जालों के किनारे स्थित ठोस वस्तुओं पर एकत्रित जैविक आवरण पर भोजन करती है। जिसमें मुख्यता विभिन्न प्लवक होते है। लेकिन मछली के नव शिशु अथवा जीरा, तल पर उपलब्ध क्रस्ट्रेशियन तथा कीटों के लार्वा का भक्षण करते है । असेला ट्राउट तालाब में पालने पर प्रतिपूरक अथवा कृत्रिम आहार भी ग्रहण करती है। लेखक द्वारा किये गये अनेक प्रयोगों के दौरान असेला ट्राउट को कृत्रिम आहार दिया गया जो इसके कुल भार के 1-5% तक था। कृत्रिम भोजन में 38.0% सोयाबीन आटा, 5-10% मछली चूर्ण तथा 2% विटामिन व खनिज चूर्ण दिया गया। इस कृत्रिम आहार में प्रोटीन की उपलब्धता 32% रखी गयी थी। प्रजनन के पश्चात् प्रस्फुटन के 84-168 घंटों के बाद जब अडंपीत भंडार समाप्ति पर होता है नव शिशु कृत्रिम आहार ग्रहण करना प्रारम्भ कर देते है।

पालन योग्य गुण

असेला ट्राइट मछली अनेक विशेषताओं से युक्त है जिसके अन्तर्गत कुछ पालन योग्य गुण भी मौजूद है।

1. अन्य पर्ततीय प्रजातियों की अपेक्षा यह मछली विस्तृत तापमान में रह सकती है।
2. यह न्यूनतम 4.5° सें. तथा अधिकतम 28.9° सें. से तापमान में पायी जाती है।
3. यह बहते हुए तथा कुछ कम बहाव वाले पानी में आसानी से रह सकती है।
4. जलीय प्राकृतिक आहार के अतिरिक्त–प्रतिपूरक आहार भी ग्रहण कर लेती है।
5. शाकाहारी प्रकृति की है अतः निम्न पोषी तल में रहती है।
6. इस मछली का बीज प्राकृतिक जल श्रोतों में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध रहता है।
7. कृत्रिम प्रजनन भी सुगमता से किया जा सकता है तथा बीज उत्पादन किया जा सकता है।
8. असेला ट्राउट मछली अपने विशिष्ट स्वाद के लिए क्षेत्र में बहुत पसन्द की जाती है।

अतः इन समस्त गुणों से परिपूर्ण होने के बावजूद वार्षिक वृद्धि दर बहुत होने के कारण यह मछली पर्वतीय मत्स्य पालन में सम्मिलित नहीं हो पायी है।

रेन्बो ट्राउट (*ओन्कोरिकस माइकिस*)

इन्द्रधनुषी (रेन्बो) ट्राउट (*ओन्कोरिकस माइकिस*) मूलतः उत्तरी अमेरिका के पैसिफिक जलागम क्षेत्र की मछली है। जो मूलतः अलास्का से मेक्सिको तक पायी जाती है। वर्ष 1874 के पश्चात् इन्द्रधनुषी ट्राउट को विश्व के अनेकों शीतजलीय देशों में पालन के उद्देश्य से ले जाया गया है और अब केवल अटार्कटिका को छोड़कर यह सभी महाद्वीपों में पायी जाती है। उत्तरी अमेरिका में इसका व्यावसायिक उत्पादन यद्यपि उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों से ही प्रारम्भ हो गया था। लेकिन 1950 तक इन्द्रधनुषी ट्राउट के पालन पर ज्यादा ध्यान नहीं जा सका क्योंकि इसके पालन में आहार की व्यवस्था करना एक बडी चुनौती थी। वर्ष 1950 मे ट्राउट के लिए उपयोगी फैक्टरी उत्पादित शुष्क ट्राउट आहार (पैलेट फीड) विकसित हो जाने के पश्चात् इसके उत्पादन में तीव्र वृद्धि होती गयी। प्रारम्भिक वर्षों में सर्वाधिक इन्द्रधनुषी ट्राउट पालन उत्तरी अमेरिका, डेनमार्क तथा जापान में होने लगा। इन्द्रधनुषी ट्राउट अपने मूल आवास स्थलों नदियों, नालों एवं झीलों के ठण्डे तथा स्वच्छ जल में रहती है।

इन्द्रधनुषी ट्राउट मछली का पालन विश्व के अनेक पर्वतीय भागों में प्रारम्भ होने से इस प्रजाति के स्थानीय परिथितियों के अनुरूप उपयुक्त स्ट्रेन तैयार किये गये साथ ही इस प्रजाति को आनुवंशिक अनियान्त्रिकी विधियों समूह चयन, संकरण आदि द्वारा पालन में उपयोगी गुणों युक्त कहकर विकसित

किया गया। वर्तमान समय में यह प्रजाति विश्व के 70 से अधिक देशों में पाली जा रही है। लेकिन इसके प्रमुख उत्पादक क्षेत्रों में यूरोप, उत्तरी अमेरिका, चिली, जापान तथा आस्ट्रेलिया आते है। इन्द्रधनुषी ट्राउट एक बहुत ही संवेदनशील मत्स्य प्रजाति है, जो ठण्डे स्वच्छ तथा तेज बहाव बाले जल को पसन्द करती है, जलीय तापमान में वृद्धि, जल में गाद की बड़ी हुई मात्रा एवं जल प्रदूषण इसकी वृद्धि, प्रजनन तथा जीवितता पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं।

आकार व रंग

इन्द्रधनुषी ट्राउट का शरीर मजबूत होता है तथा इसका ऊपरी एवं निचला भाग समान रुप से धनुषाकार के होते है। सिर की लम्बाई, शरीर की चौड़ाई से कम होती है। मुंह बड़े आकार का होता है, शरीर के शल्क बहुत छोटे–छोटे होते है। इन्द्रधनुषी ट्राउट के सिर तथा शरीर के निचले भाग का रंग स्टील–नीला रहता है तथा पार्श्व रेखा की तरफ बैंगनी– लाल रंग की पट्टिका होती है। पार्श्व रेखा के ऊपर की ओर छोटे–छोटे काले रंग के गोल आकृति के धब्बे रहते है। पार्श्व रेखा के पास कुछ मछलियों में इन्द्रधनुषी रंग की पट्टिका भी दिखाई देती है। इसी विशेषता के कारण इन्हें इन्द्रधनुष (रेनबो ट्राउट) नाम दिया गया है। पक्ष हल्के गुलाबी होते है। प्रजनन काल में नर मछली का रंग गहरा हो जाता है तथा उम्र दराज नर में निचला जबड़ा लम्बा तथा चम्मच के आकार का हो जाता है जिसे 'काइप' कहा जाता है।

आवास

इन्द्रधनुषी ट्राउट, ट्राउट वर्ग की एक प्रमुख प्रजाति है जिसमें पालन हेतु उपयोगी गुण है। यह अपेक्षतया विस्तृत तापमान (4.0-27.0° सें) सहन कर लेती है। इन्द्रधनुषी ट्राउट जलीय संसाधनों के सतह पर अधिक समय व्यतीत करती है। तथा इसकी वृद्धि दर भी अच्छी है, चलायमान जल बहाव युक्त तालाबों में पाली जा सकती है। तथा इसका पालन तथा प्रजनन सुगमता से होता है। यह अपने मूल स्थानों की नदियों, सदाबहार नालों तथा झीलों के ठण्ड़े तथा स्वच्छ जल में रहती है। इसके पालन उपयोगी गुणों के कारण आनुवंशिक अभियान्त्रिकी का प्रयोग कर इसके अधिक वृद्धि दर, रोग प्रतिरोधक एवं उच्च गुणवत्ता युक्त स्ट्रेन तैयार किये गये है। रेनबो ट्राउट यद्यपि विस्तृत तापमान सहन कर सकती है लेकिन इसकी अधिकतम शारिरिक तथा लैंगिक वृद्धि 9.0° से 15.0° सें. तापमान तक की सीमा के अन्तर्गत होती है, तथा इसके पालन के लिए 21.0° सें. जलीय तापमान अधिकतम सीमा है, तापमान इससे अधिक होने पर मछली की वृद्धि दर रूक जाती है तथा उसमें बीमारियों का प्रभाव पड़ने लगता है, तथा मरने भी लगती है। यह मछली अपने प्राकृतिक आवासों (नदियों एवं सदाबहार नालों) में तीव्र बहाव एवं उच्च आक्सीजनयुक्त जल में रेतीली तलहटियों में प्रजनन करती है।

प्राकृतिक एवं कृत्रिम आहार

इन्द्रधनुषी ट्राउट एक मांसाहारी मत्स्य प्रजाति है। इसके जीरे तथा अगुलिकाएं जन्तुप्लवक एवं छोटे तलहटीय जन्तुओं को अपना भोजन बनाते है। इनके आहार में जलीय तथा बाहर के कीट, उनके लार्वा, घोंघे प्रजाति के जीव, कस्टेशियन, मछलियों के उण्डे तथा छोटी मछलियां सम्मिलित है। बड़ी ट्राउट मछलियां तलहटीय जन्तुओं के साथ–साथ छोटी मछलियों को भी खा जाती है। यहां तक कि इस प्रजाति में स्वजाति भक्षण (कैनिवलिज्म) गुण भी पाया जाता है अर्थात एक बड़े आकार की ट्राउट अपने से छोटे आकार की स्वजाति ट्राउट को खा जाती है। इस विशिष्टता के कारण ट्राउट पालन में समय–समय पर ग्रेडिंग करने की आवश्यकता होती है। जिससे एक आकार की मछलियां एक तालाव में रखी जाती है। तालाबों में ट्राउट पालन से पहले छोटी मछलियां अथवा कीड़ें मकोड़े जिन्हें आहार के रूप में दिये जाते थे, लेकिन वर्ष 1960 के पश्चात् ट्राउट हेतु शुष्क आहार विकसित हो जाने के पश्चात् इन्हें शुष्क फैक्टरी उत्पादित कृतिम आहार दिया जाता है। यह आहार पावडर रूप से प्रारम्भ होकर छोटे–छोटे टुकड़ों (प्लेट) के आकार का होता है, ट्राउट के जीरे में उपलब्ध पीतक की समाप्ति के पश्चात् विभिन्न अवस्था की मछली के मुख के आकार के अनुसार कृत्रिम आहार बनाया जाता है।

मत्स्य पालन में उपयोगिता

यद्यपि पर्वतीय क्षेत्र में अनकों मत्स्य प्रजातियां पायी जाती है तथा कुछ अन्य प्रजातियों को देश के अन्य भागों अथवा विदेशों से भी लाया गया है लेकिन अधिकतर प्रजातियां पालन हेतु बहुत उपयोगी नहीं होती है। सामान्यतः पालन हेतु उपयोगी प्रजाति में निम्नलिखित में से अधिकतम विशेषताएं होनी चाहिए।

1. स्थान विशेष की जलवायु में सुगमता से रह सके,
2. अच्छी वृद्धि दर हो,
3. आसानी से प्रजनन कर सके अथवा कराया जा सके
4. स्थानीय स्तर पर उपलब्ध आहार तथा प्रतिपूरक/कृत्रिम आहार ग्रहण करे,
5. उपभोक्ताओं की पसन्द के अनुरूप हो,
6. तालाब में सघन मात्रा में संचायित कर पाली जा सके,
7. रोग प्रतिरोधी क्षमता से परिपूर्ण हो।

इन्द्रधनुषी ट्राउट को उपरोक्त मानकों के आधार पर रखने पर यह एक उपयुक्त पालन योग्य प्रजाति के रूप में पायी जाती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि इन्द्रधनुषी ट्राउट पर्याप्त एवं अनुकूल जलराशि वाले पर्वतीय क्षेत्रों में पालन हेतु सर्वगुण सम्पन्न एवं सर्वोत्तम मत्स्य प्रजाति है। इसके अतिरिक्त यह प्रजाति क्रीड़ा हेतु भी उपयुक्त है तथा इसको क्रीड़ा मत्स्य के रूप में भी जाना जाता है।

भूरी ट्राउट (साल्मो ट्रटा फेरियो)

भूरी (ब्राउन) ट्राउट (साल्मो ट्रटा फेरियो) मूलतः मध्य तथा पश्चिमी यूरोप के पर्वतीय जल स्रोतों की मुख्य मत्स्य प्रजाति है इसमें प्रवासन की प्रवृत्ति नहीं होती है। इसके मूल प्राकृतिक आवास पूर्वोत्तर अटलांटिक में नार्वे के दक्षिण भाग, आइसलैण्ड, दक्षिणी ग्रीनलैण्ड तथा मध्य फ्रांस हैं। इन्द्रधनुषी ट्राउट की तरह यह भी तीव्र बहाव वाले पर्वतीय नदियों तथा सदाबहार नालों में रहती है। भूरी ट्राउट एक विश्व प्रसिद्ध क्रीड़ा मछली (स्पोर्ट फिश) के रूप में पायी जाती है। यद्यपि इसका पालन भी किया जा सकता है। इस प्रजाति को भी अनेकों देशों में क्रीड़ा मछली के रूप में उपयोग हेतु ले जाया गया है। यह प्रजाति अर्न्टाटिका को छोड़कर अनेकों देशों के जल स्रोतों में पहुँचायी जा चुकी है, जिनमें से अधिकतर स्थानों में यह स्थापित हो चुकी है। कुछ एशियाई देशा यथा चीन, ईरान, पाकिस्तान, भूटान, नेपाल, अफगानिस्तान तथा भारत में भी यह प्रजाति विभिन्न समय पर लायी गयी तथा भारत सहित अनेकों देशों के कुछ नदी तंत्रों में अब यह स्थापित भी हो चुकी है। इसकी उपप्रजाति बहुद्देश्यीय तथा समुद्री जल में तथा (साल्मोट्रटा लकास्ट्रिस) झीलों में रह सकती हैं।

उत्तरी सागर तथा बाल्टिक सागर में गिरने वाली नदियों में भूरी ट्राउट की साल्मो ट्रटा फेरियो उपप्रजाति तथा काला सागर में गिरने वाली नदियों में साल्मो ट्रटा लैबरेक्स की उप प्रजाति पायी जाती है। जबकि भूमध्य सागर में गिरने वाली नदियों में साल्मो ट्रटा मैक्रोस्टिग्सा उप प्रजाति पायी जाती है।

भारतवर्ष में भूरी ट्राउट को लाने के प्रयास वर्ष 1863 से प्रारम्भ किये गये थे । इस अवधि में भूरी ट्राउट (ब्राउन ट्राउट) तथा लौक लेवन ट्राउट (साल्मो लेवेंसिस) को दक्षिणी घाट स्थित नीलगिरि पर्वत श्रृंखलाओं के शीत जलीय नदियों व सदाबहार नालों में स्थापित करने के प्रयास किये गये, जिसमें उस समय सफलता नहीं मिल पायी। इसी बीच वर्ष 1900 में नयनयुक्त अण्डे श्री एफ0 मिचेल के निद्रेशन में स्काटलैण्ड से सफलतापूर्वक कश्मीर लाये गये। इन अण्डों का कश्मीर के हरवान में विकास एवं पालन किया गया। 1905 में हरवान में सफलतापूर्वक भूरी ट्राउट का प्रजनन कर अण्डे प्राप्त किये गये, यहां से यह अण्डे जम्मू, गिलगिल, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड (तत्कालीन उत्तर प्रदेश), उत्तरी बंगाल, अरुणाचल प्रदेश तथा मेघालय तक स्थापित करने हेतु पहुंचाया गया।

उत्तराखण्ड में भूरी ट्राउट स्थापित करने का प्रथम प्रयास वर्ष 1910 में किया गया जब 10,000 नैनयुक्त अण्डे भवाली (नैनीताल) हैचरी में पहुंचाये गये। पुनः 1912 ट्राउट की अंगुलिकाए नैनीताल जनपद की विभिन्न झीलों में डाली गई, लेकिन इन झीलों में ट्राउट जीवित नहीं रह पायी, जिसका

कारण झीलों का अधिक वाष्पन होना था। इसी प्रकार वर्ष 1909 में अवलांच (नीलगिरि) में ट्राउट हैचरी की स्थापना कर श्री एच0सी0 बिल्सन द्वारा सफलतापूर्वक ट्राउट स्थापित करवायी।

आकार एवं रंग

भूरी ट्राउट का शरीर सुदृढ़, लम्बाकार, कुछ चपटा हुआ एवं टौरपीडो की तरह का होता है। पृष्ठ भाग में वसीय पक्ष होता है जो इसके निचले भाग में स्थित गुदीय पक्ष के पिछले सिरे के बराबर में रहता है। शल्क छोटे–छोटे होते हैं। इन मछलियों के रंग पर आवासीय स्थल भोजन तथा प्रजनन काल का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है, लेकिन सामान्यतः भूरी ट्राउट का पृष्ठ भाग गहरे तथा निचला भाग हल्के रंग का होता है। शरीर के भूरे रंग के कारण इसे भूरी (ब्राउन) ट्राउट नाम से जाना जाता है। इसके शरीर का पृष्ठ भाग भूरे रंग का होता है। पृष्ठभाग में लाल रंग के छोटे गोलेनुमा धब्बे होते हैं, जिनके बाहरी किनारे हल्के रंग के होते हैं। लेकिन अपरिपक्व मछली में पृष्ठ भाग के धब्बे नीले भूरे रंग के होते हैं। इस तरह इन धब्बों को देखकर परिपक्व अथवा अपरिपक्व मछलियों को आसानी से पहचाना जा सकता है। इन मछलियों का निचला भाग सफेद–पीले रंग का होता है। लैंगिक रूप से परिपक्व नर मछली का निचला जबड़ा मजबूत तथा चम्मच के आकार का मुड़ा होता है। मछली का पृष्ठ भाग गहरे रंग का तथा निचला भाग हल्के रंग का होता है, तथा इसके पृष्ठ भाग मे लाल रंग के छोटे–छोटे गोलेनुमा धब्बे होते हैं, जिनमे किनारे हल्के रंग के होते है। मछली का निचला भाग सफेद पीले रंग का होता है। अपरिपक्व मछली के पृष्ठ भाग के धब्बे नीले भूरे रंग के होते है। इस तरह अपरिपक्व तथा परिपक्व मछलियों को आसानी से पहचाना जा सकता है। लैंगिक रुप से परिपक्व नर मछली का निचला जबड़ा मजबूत तथा चम्मच नुमा मुड़ा हुआ होता हैं, जिसे "काइप" कहा जाता है।

आवास स्थल

भूरी ट्राउट अपने मूल आवास क्षेत्रों में उच्च, मध्यम तथा निचले पर्वतीय भागों तथा घाटियों में स्थित नदियों एवं सदाबहार नालों के तेज बहाव वाले स्थलों में रहती हैं तथा झीलों में भी इसकी उपलब्धता के प्रमाण मिलते हैं। यह मीठे जल की मछली है, लेकिन समुद्री जल में भी यह कुछ समय के लिए रह सकती है।

यह मछली गहरी झीलों में भी रह सकती हैं तथा अपने आवासों में यह पेड़ों की छाया वाले जलीय आवासों तथा चट्टानों या पत्थरों के नीचे कम प्रकाश वाले क्षेत्रों में रहना पसन्द करती हैं। अपने को पत्थरों चट्टानों तथा पादपों के नीचे छिपा लेती हैं। भूरी ट्राउट के लिए 18.0 से 23.0° सें. तापमान अधिक अनुकूल रहता है। यह भी इन्द्रधनुषी ट्राउट की तरह पर्याप्त आक्सीजन युक्त शीतलजल पसंद करती है। लेकिन यह इन्द्रधनुषी ट्राउट से अधिक तापमान संवेदी होती है। अर्थात् भूरी ट्राउट, इन्द्रधनुषी ट्राउट की तरह उच्च तापमान सहन कर सकती है। भूरी ट्राउट सामान्यतः जल स्रोतों के तल पर रहती है।

प्राकृतिक एवं कृत्रिम आहार

ट्राउट वर्ग की प्रजातियों की तरह ही भूरी ट्राउट भी एक मांसाहारी मछली है। यह कम रोशनी वाले क्षेत्रों में रहती है तथा कोई भी छोटा सजीव जन्तु दिखायी देने पर उसको झपटकर खा जाती है। यह रात्रि में भी अपना शिकार करती है। यह पौने अथवा अंगुलिका अवस्था में छोटे कीट, लार्वा व जन्तु प्लवकों पर भोजन करती है तथा बड़ी हो जाने के पश्चात् तलहटीय जन्तु झींग, लार्वा, कीट, सतह पर उड़कर आने वाले कीट पतंगे, घोंघे, छोटी मछलियाँ यहाँ तक कि अपने ही बच्चों को भी खा जाती है। इस तरह भूरी ट्राउट मछली भी स्वजाति भक्षी श्रेणी में आती है। यह मेंढक, टोड तथा सांप के छोटे बच्चों तक को खा जाती है।

यह मछली मुख्यतः नदियों एवं नालों में क्रीड़ा प्रजाति के रूप में उपयोग की जाती है। इसके प्रजनकों, हैचरी उत्पादित पौना तथा अंगुलिकाओं को कृत्रिम आहार दिया जाता है जो सामान्यतः इन्द्रधनुषी ट्राउट के आहार की तरह फैक्ट्री उत्पादित होता है। इन्द्रधनुषी ट्राउट की तरह यह मछली कृत्रिम आहार को बहुत पसन्द नहीं करती है तथा इसकी वृद्धि भी अपेक्षातया कम होती है।

उपयोगिता

यद्यपि भूरी ट्राउट में भी पालन योग्य गुण हैं, लेकिन अपेक्षतया कम शारीरिक वृद्धि दर तथा अत्यधिक मांसाहारी एवं स्वजाति भक्षी लक्षण के कारण यह इन्द्रधनुषी ट्राउट की तरह पालन हेतु अधिक उपयोगी नहीं मानी जाती है। इसलिए इस मछली का हैचरी में प्रजनन कर मत्स्य बीज अथवा अंगुलिकाएं नदियों एवं सदाबहार नालों में संग्रहित किये जाते हैं, जहाँ यह महत्वपूर्ण क्रीड़ा मछली के रूप में मत्स्य आखेटकों (एंगलर) के मनोरंजन का साधन बनती है। भारतवर्ष की एक अन्य ट्राउट, राइमस बोला अथवा इंडियन ट्राउट, राममस बोला अथवा इंडियन ट्राउट पर्वतीय नदियों में पाई जाती हैं, जिसकी क्रीड़ा मत्स्य के रूप में विशेष मान्यता है, लेकिन पर्यावरण में परिवर्तन तथा अत्यधिक दोहन के कारण यह प्रजाति कम होती जा रही है।

रेन्बो ट्राउट का पोषण एवं आहार

राजेश एम., बीजू सैम कमलम् एवं सीजी अलक्जेंडर
भाकुअनुप–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल

- रेन्बो ट्राउट (ओन्कोरिकस माइकिस) एक विदेशी साल्मोनिड मछली है तथा भारतीय हिमालयी क्षेत्र में शीतजल की प्रमुख पालन योग्य मत्स्य प्रजाति है।
- यह एक विशिष्ट प्रकार की मांसाहारी मछली है जो अपने प्राकृतिक वास स्थलों में छोटी–छोटी मछलियों एवं जलीय अकशेरूकियों को खाती है।
- इसके लिए संतुलित अमीनो अम्ल मिश्रण के साथ–साथ उच्च गुणवत्ता वाले प्रोटीन की आवश्यकता होती है।
- रेन्बो ट्राउट के विभिन्न चरणों के आधार पर उनकी अनुकूल वृद्धि के लिए आहार में पर्याप्त प्रोटीन तथा लिपिड की आवश्यकता क्रमशः 40–50% एवं 16–24% होती है।
- उच्च गुणवत्ता वाले प्रोटीन स्रोत जैसे–फिश मील एवं सोयाबीन मील एवं लिपिड स्त्रोत जैसे फिश ऑयल मछली के लिए खुराक के आधारभूत आवश्यकता है।

विभिन्न स्तरों पर रेन्बो ट्राउट के लिए आहार

0.8 मि.मी.

1मि.मी.

1.5 मि.मी.

2.0 मि.मी.

4.0 मि.मी.

सारणी 1: सामान्य रूप से रेन्बो ट्राउट की वृद्धि के लिए आहार का निर्माण

अवयव	समावेश स्तर	10 किग्रा. आहार में
फिश मील (क्रूड प्रोटीनः 60%, क्रूड लिपिडः 7%)	54	5.4 कि.ग्रा.
सोयाबीन मील (क्रूड प्रोटीनः 44%)	15	1.5 कि.ग्रा.
गेहूँ का आटा (क्रूड प्रोटीनः 10%)	20-21	2.0-2.1 कि.ग्रा.
फिश ऑयल	5	0.5 कि.ग्रा.
सोयाबीन ऑयल	5	0.5 कि.ग्रा.
विटामिन खनिज मिश्रण *	1-2	0.1-0.2 कि.ग्रा.

*यदि एग्रीमिन का प्रयोग विटामिन खनिज मिश्रण के रूप में किया जाता है तो उस मिश्रण में विटामिन बी–कॉम्लैक्स मिलाऐ।

सारणी 2: विभिन्न आकार हेतु भोजन के तत्व/गोली का आकार

मछली का भार (ग्रा.)	छोटी/गोली का आकार (मि.मी)
<0.3	<0.5
0.3-0.5	0.5—0.8
0.5-0.9	0.8
0.9-2.0	1.0
2.0-4.0	1.5

4.0-8.0	2.5
8.0-20	3.0
20-50	3.5
50-125	4.0
125-500	4.5
500-1000	6.0
1000-2000	9.0

आहार योजना

- ट्राउट पालन में आहार की लागत बहुत अधिक आती है, इसलिए लाभ को सुनिश्चित करने के लिए तथा पर्यावरणीय प्रभाव को कम करने हेतु उचित भोजन योजनाए महत्वपूर्ण है।
- ट्राउट का भोजन ग्रहण करने का स्तर पानी के तापक्रम अथवा मछली के वजन से प्रभावित होता है। यदि पानी के तापमान में वृद्धि होगी तो ट्राउट के भोजन स्तर में वृद्धि होगी अथवा मछली के बजन बढ़ने के साथ उसके भोजन स्तर में गिरावट होगी।
- आहार अनुपात का निर्धारण करने के लिए निम्न खाद्य सारणीयों का उपयोग गाइड के रूप में किया जा सकता है आहार व्यवस्था के लिए सारणी का उपयोग करके दैनिक भोजन दर निर्धारित की जा सकती है।

पानी का तापमान (°C)	**मछली का भार (ग्राम)**										
	>0.2 (<1)	**0.2-1.5** (1-2)	**1.5-5.0** (2-3)	**5.0-12** (3-4)	**12-23** (4-5)	**23-40** (5-6)	**40-62** (6-7)	**62-90** (7-8)	**90-125** (8-9)	**125-160** (9-10)	**<160** (>10)
3.3	58	48	39	29	22	17	14	12	11	10	09
4.4	63	52	42	31	24	19	16	14	12	10	10
5.6	69	57	46	35	26	21	17	15	13	11	10
6.7	75	62	50	38	28	23	19	16	14	13	11
7.8	82	67	55	41	31	25	21	18	15	14	12
8.9	90	75	60	45	34	27	23	19	17	15	13
9.4	94	78	63	47	35	28	24	20	18	15	14
10.0	99	81	65	49	37	29	25	21	19	16	15
11.1	107	89	71	53	40	32	27	23	20	18	16
12.2	116	97	80	58	44	35	29	25	22	19	18
13.3	127	105	85	64	48	38	32	27	24	21	19
14.4	140	115	93	69	52	42	35	30	26	23	21
15.6	151	126	101	76	57	46	38	32	28	25	23

- जल के विभिन्न तापक्रम पर विभिन्न आकार वर्गों की रेन्बो ट्राउट का (शरीर का भार) प्रति दिन /ग्राम आहार में मान
- कोष्ठक में मछली का अनुमानित आकार इंच में इंगित करता है।

प्रत्येक रेसवे (तालाब) के लिए आहार व्यवस्था

- 15 x 2 x 1.5 मी. आकार वाले रेसवे (तालाब) जिसमें 2000 अंगुलिकाऐं जिनका आकार 2–3 इंच रहता हैं, उसकी आहार व्यवस्था निम्न है:
- 2–3 इंच की रेन्बो ट्राउट जिसका भार लगभग 1.5–3 ग्रा. तथा कुल वजन 4.5 कि.ग्रा. होता हैं उस के लिए तालिका के अनुसार रेसवे में 3.3 डिग्री. से.ग्रे. तापक्रम पर 39 ग्रा./कि.ग्रा. की दर से भोजन की संस्तुति की गयी है। इस प्रकार रेसवे में 4.5 कि.ग्रा. भार वाली मछली के लिए 175.5 ग्रा. आहार/दिन देना सुनिश्चित कर सकते है।
- मछली की बढ़वार के साथ प्रत्येक 15–20 दिन के अंतराल पर पानी के तापमान के अनुसार आहार की मात्रा को पुनः सुनिश्चित करना आवश्यक है।

एक ही आकार की रेन्बो ट्राउट प्राप्त करने के लिए पानी की 70% से अधिक सतह पर अधिकतम आहार वितरित किया जाना चाहिए तथा यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि तालाब की सतह पर बैठने से पूर्व ही प्रत्येक आहार–गोली का सेवन हो जाए। पूर्व प्रारम्भिक स्तर पर आहार की आवृत्ति 3–4 बार प्रति दिन होनी चाहिए तथा बड़ी अवस्था में कम से कम दिन में 2 बार आहार आवृत्ति देना आव''यक है।

पर्वतीय क्षेत्रों में तालाब निर्माण एवं समन्वित मत्स्य पालनः एक सामान्य जानकारी

संजय कुमार छिम्वाल
मत्स्य विभाग, उत्तराखण्ड

पर्वतीय क्षेत्रों में मछली का तालाब निर्माण हेतु निम्न बातों को ध्यान में रखते हुए स्थल का चयन किया जाना चाहिए।

- वर्ष भर पानी की उपलब्धता हो।
- प्राकृतिक धारे–नौली, गाड़–गधेरे के नजदीक की जगह अथवा सिमार वाली जगह।
- स्थल जो प्राकृतिक रूप से गहरा हो अथवा बरसात में पानी ठहरता हो।
- प्राकृतिक रूप से पानी रिसता हो एवं धान के अलावा अन्य फसल ना ले पाये।
- मिट्टी जिसकी जलधारण क्षमता अच्छी एवं उपजाऊ हो।
- चिकनी मिट्टी अथवा चिकनी दोमट मिट्टी अच्छी होती है जो पानी को बाहर नहीं जाने देती व तालाब के बन्धे मजबूत होते है।
- मिट्टी ना ज्यादा अम्लीय होना ही ज्यादा क्षारीय मिट्टी का पी. एच. मान 6 से 8 के मध्य हो।
- स्थल बाढ़ग्रस्त ना हो अन्यथा बन्धे टूटकर मछली के बहने का भय रहता है।
- ऐसे स्थल का चुनाव करे जहां पर खुदान के 1.5 मी. तक कंकड, पत्थर अधिक ना निकले अन्यथा लागत ज्यादा होगी व पानी का रिसाव अधिक होता है।
- स्थल घर से ज्यादा दूरी पर न हो, अथवा चोरी एवं जहर डालने आदि भय बना रहता है व देखरेख में परेशानी होती है।
- भूमि थोड़ी ढलान वाली हो ताकि मछली निकासी के समय जमा पानी कम किया जा सके व तालाब सुखाने में आसानी हो।
- खुली जगह जिससे कि लम्बे समय तक तालाब को धूप मिल सके।

तालाब के प्रकार

सामान्यतः पर्वतीय क्षेत्रों में तीन प्रकार के तालाब बनाये जा सकते हैं।

1. कच्चे तालाब

इस प्रकार के तालाब उन जगहों पर बनाये जाते है,जहां मिट्टी की जल धारण क्षमता अच्छी हो। इस प्रकार के तालाब बनाने में लागत कम आती है,तथा इनमें प्रचुर मात्रा में मछली का प्राकृतिक भोजन भी तैयार होता है अतः मछली उत्पादन में लागत कम आती है।

2. पक्के तालाब

पथरीली व कंकड तथा ज्यादा रेतीली भूमि पर पक्के तालाबों का निर्माण किया जाता है। तली में 1–1.5 फीट बारीक छनी हुई उपजाऊ मिट्टी डाली जाती है। इस प्रकार के तालाबों में अपेक्षाकृत कम प्राकृतिक भोजन बनता है एवं तालाब निर्माण में अधिक लागत आती है।

3. पालीथीन वाले तालाब

जिन जगहों पर मिट्टी में जल धारण क्षमता कम होती है। कच्चे तालाब खोदकर छनी हुई मिट्टी की तली एवं बंधों पर बिछाकर कुटाई की जाती है। तत्पश्चात् एच.डी.पी.ई. या सिल पोलीन (एक प्रकार की मजबूत व मोटी पॉलिथीन) को बिछाकर उपजाऊ मिट्टी की 1–1.5 फीट परत डाली जाती है। इस प्रकार के तालाबों में पक्के तालाबों की अपेक्षा कम लागत आती है।

तालाब निर्माण हेतु मिट्टी की पहचान

1. हाथ में बारीक छनी मिट्टी लेकर आटे की तरह गूंथ लें। गुंथी मिट्टी का गोल्स बनाकर हवा में 30– सेमी तक उछालें यदि गोला हाथ में टकराकर बिखर जाये तो मिट्टी उपयुक्त नहीं है। और यदि गोला बना रहे तो उपयुक्त है।
2. गोले को 3–4 मी. की दूरी से दीवार में फेंके गोला बिखर जाये तो मिट्टी उपयुक्त नहीं है। और यदि गोला दीवार से चिपक जाये या फिर पिचक कर गिर जाये तो मिट्टी तालाब बनाने योग्य है।

मिट्टी की जल धारण क्षमता ज्ञात करना

सामान्यतः मिट्टी में जल धारण क्षमता को मृदा की पारगम्यता कहते हैं। इसके परीक्षण के लिए एक मीटर लम्बा एक मीटर चौड़ा एवं एक मीटर गहरा गडढ़ा खोद लें। पहले दिन सुबह उसमें पूरा पानी भर दें ताकि मिट्टी पर्याप्त पानी सोख कर संतृप्त हो जाये। दूसरे दिन फिर से सुबह इस गडढ़े को ऊपर तक पानी से भर दें। यदि शाम तक गडढ़े में लगभग 80 सेमी. पानी बचा रहे तो जमीन तालाब बनाने हेतु उपयुक्त है।

मिट्टी की गुणवत्ता

मछली पालन में मिट्टी के दो प्रमुख गुण होते हैं। पहला इसमें पानी को रोके रखने की क्षमता अच्छी हो तथा दूसरा इसमें पोषक तत्वों की प्रचुर मात्रा होनी चाहिए जो मछली के लिए प्राकृतिक भोजन पैदा करने में सहायक हो।

पानी के स्त्रोत

सामान्यतः पर्वतीय क्षेत्रों में झरने, नदी, गधेरे (गाड), नौले आदि मुख्य पानी के प्राकृतिक स्त्रोत हैं। उपरोक्त स्त्रोतों का पानी जहां तक संभव हो बन्द पाइपों के बजाय खुली गूलों से तालाब स्थल तक लाना लाभप्रद होता है जो घुलित आक्सीजन की मात्रा को बढ़ाने में सहायक होता है।

तालाब का निर्माण

आयताकार तालाब मछली पालन हेतु अच्छा माना जाता है। तालाब की लम्बाई तालाब की चौड़ाई का तीन गुना होना चाहिए। तालाब की लम्बाई पूर्व से पश्चिम दिशा में रखना लाभदायक होता है, जिससे तालाब को लम्बे समय तक धूप मिल सके जो तालाब की उत्पादकता बढ़ाने में सहायक सिद्व होती है। तालाब निर्माण हेतु चयनित खेत पर हल से जुताई कर ऊपरी सतह (8–12 सेमी.) की मिट्टी का एक कोने में ढ़ेर लगा दिया जाता है, इसमें कंकड पत्थर की मात्रा कम रहती है और अपेक्षाकृत गहरी मिट्टी से ज्यादा उपजाऊ होती है। पर्वतीय क्षेत्रों में खेत सीढ़ीदार होते हैं तो इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि तालाब की खुदाई खेत के किनारे से 1.5 से 2 मी. अन्दर की तरफ से की जाय अन्यथा बन्धों के टूटने का भय बना रहता है। खुदाई में निकली मिट्टी को तालाब के चारों ओर डालकर पाट दिया जाता है। जिससे की आवश्यक पानी की मात्रा 1–1.5 बनी रहे और ऊपर जमा की गयी मिट्टी तालाब के पानी की सतह से 30–50 सेमी. का अतिरिक्त गहराई प्रदान कर हवा को ज्यादा समय तक पानी के सम्पर्क में बना सके व मछली उछलकर बाहर ना आये व अधिक बरसात में जल भराव से मछलियॉ तालाब से निकलकर बह ना जाये।

तालाब की आयु बढ़ाने के लिए तालाब की अंदरीय सतहों पर पत्थर की दीवार बनानी चाहिए अन्यथा कामन कार्प मिट्टी के बन्धों मे सड़े–गले घास आदि की जड़ों को खाने एवं भोजन की खोज में तालाब के बन्धों को नुकसान पहुंचा सकती है अथवा तेज हवा से उठने वाली पानी की लहरें बन्धों का कटान कर सकती है। इन अंदरूनी ढ़ालकर बंधों पर रेंगने वाली दूब घास आदि का रोपण करना चाहिए जिससें बन्धों का कटान कम हो एवं ग्रास कार्प के लिए चारा भी उपलब्ध हो सके। बन्धों की ऊपरी सतह पर नैपियर घास, बरसीम, चरी अथवा मौसमी सब्जियों का रोपण करना चाहिए जिससे कि

खाली पड़े बन्धे का सदुपयोग कर अतिरिक्त आमदनी हो सके और ग्रास कार्प के लिए चारे का प्रबन्ध हो सके।

जल आगमन द्वार

पानी के आगमन हेतु एक पाइप ऊँचाई पर लगाया जाता है। जहाँ तक संभव हो जल आगमन द्वार पर मच्छर वाली लोहे की जाली लगानी चाहिए जिससे स्थानीय एवं अवांछनीय मछलियॉ,पत्ते तथा अन्य गंदगी तालाब में प्रवेश ना कर सके। पानी को तालाब में फब्बारे के रूप में गिराने हेतु पाइप के सिरे पर नहाने हेतु बाथरूम में लगाने वाला शावर अथवा प्लास्टिक की खाली बोतलों में छेद करके भी उपयोग में लाया जा सकता है।

जल निकासी द्वार

तालाब में पानी का स्तर व ताजे पानी से मिलने वाली आक्सीजन की आवश्यक मात्रा को बनाये रखने के लिए तालाब में जल निकास द्वार की व्यवस्था की जाती है। तालाब से पानी निकालने हेतु दो प्रकार के द्वार लगाये जाते है पहला तो पानह की सतह पर (तालाब की तली से 1 से 1.5 की ऊँचाई) लगाया जाता है जो तालाब में पानी के स्तर को बनाये रखने का काम करता है,तथा एक निकास द्वार तालाब की ढ़लान वाली तल पर लगाया जाता है। यह तालाब से मछली की निकासी के समय अथवा तालाब को पूरी तरह सुखाने के समय काम आती है। तालाब की खुदाई तथा निर्माण के समय ही दोनों निकासी पाईप लगाना चाहिए।

मत्स्य पालन हेतु प्रजातियों का चयन

मत्स्य पालन में उपयुक्त प्रजातियों का चयन अधिक लाभ अर्जन की दृष्टि से हेतु बहुत महत्वपूर्ण है,मत्स्य पालन के द्वारा प्रति इकाई क्षेत्रफल से अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए अधिक वृद्धि करने वाली मछलियों की प्रजातियों का चयन करना चाहिए। प्रजातियों का चुनाव करते समय ध्यान रखना चाहिये कि संचय की जाने वाली मछलियों में सह–अस्तित्व के लिए आपस में प्रतिस्पर्धा न हो। उनमें एक साथ रहने तथा एक दूसरे की सहायक होने की आदत होनी चाहिये। एकीकृत,संग्रथित और समन्वित मत्स्य पालन हेतु मछलियों के चयन हेतु निम्न बातों का ध्यान में रखना अति आवश्यक है।

- बीज जो आसानी से नजदीकी स्थान पर उपलब्ध हो सके।
- बीज की प्रजाति शुद्व व गुणवत्ता अच्छी हो।
- पर्वतीय क्षेत्रों के कम तापमान व कम फसली समय में ज्यादा बढ़वार की क्षमता हो।
- कृत्रिम भोजन को आसानी से ग्रहण कर ले।
- तालाब के वातावरण में आसानी से ग्रहण कर ले।
- तालाब के वातावरण में आसानी से ढ़ल कर अच्छी वृद्वि पा सके।
- तालाब में उपलब्ध प्राकृतिक एवं कृत्रिम भोजन को मॉस के रूप में परिवर्तन करने की अच्छी क्षमता रखता हो।
- संग्रथित एवं समन्वित मछली पालन में आपस में जगह एवं भोजन के लिए कम प्रतिस्पर्धा रखता हो।
- मछली का स्वाद अच्छा हो ताकि स्थानीय बाजार में खपत हो एवं अच्छा मूल्य प्राप्त हो सके।

मछली का बीज संचय करने से पहले तालाब की तैयारी

पुराने तालाब होने की दशा में माह फरवरी–मार्च में तालाब की तली को 15–20 दिन तक तेज धूप मे चटकने तक सूखने दें, फिर तली की मिट्टी का उपयोग कर बन्धों की मरम्मत कर लें। तत्पश्चात 4–5 किग्रा. चूना प्रति आधा नाली (100 वर्ग मी.) क्षेत्रफल में छिड़कना चाहिए फिर 15–20 डोका कच्चा गोबर तालाब में फैला देना चाहिए फिर तालाब में 1 मी. की ऊँचाई तक पानी भरना

चाहिए,जब लगभग 2–3 हफ्तों में पानी में हरापन आ जाता है, तो तालाब मछली का बीज संचय करने हेतु तैयार होता है। इस समय तालाब में प्रचुर मात्रा में मछली का प्राकृतिक भोजन (जन्तु व पादप प्लवक) उपलब्ध हो जाता है, जो मछलियों के बच्चों का मुख्य मनपसंद भोजन है और जिसे खाकर मछलियॉ तेजी से वृद्वि करती है।

खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग

मत्स्य उत्पादन बढ़ाने के लिए तालाब में गोबर की खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग आवश्यक है। इनके प्रयोग से तालाब की उत्पादकता बढ़ती है। जिससे मछलियों का प्राकृतिक भोजन व वनस्पति एंव जन्तु तालाब में पैदा होते हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक माह 2–3 किग्रा/आधा नाली की दर से चूने का छिड़काव भी तालाब की उत्पादकता एवं स्वच्छता बनाए रखने के लिए अच्छा होता है। चूने का प्रयोग प्रत्येक बदलते हुए मौसम (जाड़े की शुरूआत अक्टूबर–नवम्बर एवं गर्मी की शुरूआत फरवरी–मार्च) के पहले बहुत ही आवश्यक होती है। जैविक एवं रासायनिक दोनों प्रकार की खादों को तालाब में बारी–बारी से प्रत्येक माह निम्न विवरण के अनुसार डालना उचित रहता है।

क्र.सं.	खाद	मात्रा
1.	गोबर प्रथम किस्त	50–60 किग्रा/आधा नाली
2.	गोबर की खाद (मासिक किस्त)	20–25 किग्रा/आधा नाली
3.	सुअर की खाद (मासिक किस्त)	15–20 किग्रा/आधा नाली
4.	मुर्गी की विष्ठा (मासिक किस्त)	10–15 किग्रा/आधा नाली
5.	यूरिया मासिक किस्त	250 ग्राम/आधा नाली
6.	सिंगल सुपर फास्फेट मासिक किस्त	500 ग्राम/आधा नाली

तालाब में प्राकृतिक रूप से बना भोजन 2–3 दिनों में समाप्त हो जाता है, अतः प्लवकों के स्तर को बनाये रखने के लिए जैविक खाद की तालाब के कोने में ढ़ेर लगा देना चाहिए,जिससे की खाद का थोड़ी–थोड़ी मात्रा तालाब में घुलकर प्राकृतिक भोजन के स्तर को बनाये रखे।

मछली के बीज का संचय

कृषक भाईयों के लिए यहां थोड़ा सा ध्यान देने वाली बात यह है कि मछली का बीज पर्वतीय क्षेत्रों में उपलब्ध नहीं होता है और बीज को तराई/मैदानी क्षेत्रों से पालीथीन के बैग में लाया जाता है। मछली के बीज की थैली को 15–20 मिनट तक तालाब के पानी में तैरना चाहिए जिससे की थाली के पानी और तालाब के पानी का तापमान लगभग सामान्य हो जाये अन्यथा तापमान के अंतर से मछली के बच्चे तनाव में आ जाते हैं, और बच्चे अचानक तापमान में बदलाव के कारण कर सकता है। इसके बाद थैली का मुँह खोलकर तालाब में तिरछा करना चाहिए जिससे कि थैली और तालाब के पानी का रासायनिक गुण एक समान हो सके और अब मछली के बच्चों को अपने धीरे–धीरे ली से बाहर निकलने दें। सामान्यतः मछली के बीज को शाम का समय ज्यादा उपयुक्त होता है,क्योंकि इस समय तालाब में घुलित आक्सीजन की मात्रा के अधिक होती है।

मछलियों के खान–पान एवं चारे की व्यवस्था

मछली का अच्छा उत्पादन लेकर लाभ कमाने के लिए मछली के पोषण एवं आहार का बहुत महत्व है। मछली का बीज तालाब में डालने के बाद कृषक भाईयों को मछली के आहार की व्यवस्था करनी होती है चूंकि प्राकृतिक भोजन (प्लवकों) का अपना जीवन काल होता है,अतः इनका प्रचुर मात्रा में लम्बे समय तक बनाये रखने के लिए समय–समय पर जैविक खाद एवं चूने का प्रयोग करते रहना पड़ता है। प्रत्येक जीव–जन्तु को बढ़ने के लिए पर्याप्त मात्रा में भोजन की आवश्यकता होती है। तालाब से मछलियॉ प्राकृतिक भोजन के रूप में जन्तु प्लवकों, वनस्पति प्लवकों एवं पानी में पैदा होने वाले जीवाणुओं को भोजन के रूप में खाती है,परन्तु अधिक उत्पादन लेने के लिए मात्र प्राकृतिक भोजन ही

पर्याप्त नहीं हो पाता है। मछली का अच्छा उत्पादन लेने के लिए प्राकृतिक भोजन के साथ–साथ अलग से कृत्रिम रूप से तैयार परिपूरक आहार एक निश्चित मात्रा में प्रतिदिन मछलियों को खिलाना जाना चाहिए।

मिश्रित मत्स्य पालन

मिश्रित मत्स्य पालन विधि में भारतीय मछलियों कतला (भाकुर), रोहु एवं नैन के साथ विदेशी मछलियों ग्रास, सिल्वर एवं कामन कार्प का पालन किया जाता है। ये मछलियॉ अपने भोजन की पसंद एवं मुंह की बनावट के अनुसार तालाब के पानी की अलग–अलग सतहों से अलग–अलग तरह के प्राकृतिक भोजन प्राप्त करती है। जिससे तालाब में उपलब्ध जैविक एवं वनस्पतिक भोज्य पदार्थो का पूरी तरह उपयोग हो सके। मिश्रित मत्स्य पालन को पालने वाली मछलियों की प्रजातियों एवं उनकी संख्या,उनका अनुपात उर्वरकों एवं पूरक आहार की मात्रा,पानी की गुणवत्ता आदि पर विशेष ध्यान देना पड़ता है जिसका विवरण नीचे दिया जा रहा है।

तालाब की तैयारी

ऊपर लिखित विधि से नये तालाबों का निर्माण कर अथवा पुराने तालाबों की मरम्मत कर पानी के प्रवेश के लिए पाईप लगा कर जाली लगा देना चाहिए,जिससे अवांछनीय जीव जन्तु,पत्तियॉ एवं खरपतवार तालाब में प्रवेश न कर सके। नये तालाबों को आयताकार रूप में बनाना चाहिए जिनका क्षेत्रफल 100 वर्ग मी. से 200 वर्ग मी. तथा गहराई 1 मी. से 1.5 मी. उपयुक्त रहती है। मत्स्य पालन शुरू करने से पहले तालाब की मिट्टी की जॉच करा लेनी चाहिये। यदि मिट्टी अम्लीय हो तो पी.एच. मान की मात्रा के अनुसार चूने का छिड़काव निम्नलिखित मात्रा के अनुसार करना चाहिए।

पी.एच. मान	चूना (किग्रा/प्रति आधा नाली)
4–5	20
5–6	10
6–6.5	08
6.5–7.5	02

जिन तालाबों में कीचड़ अधिक मात्रा में हो उसे खाली करके धूप में चटकने तक सुखा कर खुदाई अथवा जुताई कर देते हैं तथा 4–5 किग्रा./आधा नाली की दर से चूना छिड़क देते है। चूने के प्रयोग से तालाब की उपजाऊ शक्ति बढ़ती है तथा बीमारी फैलाने वाले जीवाणुओं से छुटकारा मिलता है। चूना जल तथा मिट्टी की अम्लीयता कम करता है,तथा अति आवश्यक तत्व कैल्सियम को उपलब्ध कराता है। अतः तालाब में चूने का प्रयोग अति आवश्यक एवं महत्वपूर्ण होता है।

मत्स्य बीज संचय

मत्स्य पालन के लिये 4–5 सेमी. आकार की अंगुलिकाओं को आधा नाली अथवा एक यूनिट (100 वर्ग मी.) क्षेत्रफल में इनकी संख्या 400–600 तक रखते हैं। इन अंगुलिकाओं की मृत्युदर बहुत कम होती है परन्तु यह अंगुलिकांए पर्वतीय क्षेत्रों के किसानों को मत्स्य पालकों को उपलब्ध हो पाना कठिन होता है। किन्तु नर्सरियों में जीरा साईज की मछलियों का संचय कर 4–5 सेमी. आकार की अंगुलिकाऍ पैदाकर उनका संचय करके अच्छा उत्पादन लिया जा सकता है। ऐसी व्यवस्था ना होने पर मत्स्य पालक 1–2 इंच आकार के जीरा मछली के बच्चे जो उपलब्ध हैं उन्हें तालाब में रखते है। मत्स्य पालकों को इनकी संख्या 1500–2000 तक आधा नाली क्षेत्र में रखनी चाहिए तथा इनका अनुपात निम्न प्रकार से रखते हैं।

1. सतह भक्षी मछलियॉ (कतला तथा सिल्वर कार्प) 30–40 प्रतिशत।
2. मध्य सतह भक्षी मछलियॉ (रोहू) 15–20 प्रतिशत।
3. तल भक्षी मछलियॉ (नैन तथा कामन कार्प) 30–40 प्रतिशत।
4. पादप भक्षी मछलियॉ (ग्रास कार्प) 5–15 प्रतिशत।

कृत्रिम अथवा परिपूरक आहार

मछलियों की अच्छी वृद्धि के लिए आवश्यक है कि तालाब में प्राकृतिक भोजन के साथ–साथ बाहर से पूरक आहार भी नियमित रूप से दिया जाए प्रायः पूरक आहार में एक भाग सरसों की खली या मूँगफली की खली एवं एक भाग चावल के कन का मिश्रण मछलियों के कुल वजन का 2 प्रतिशत की दर से प्रतिदिन तालाब में 3–4 निश्चित जगहों पर तथा निश्चित समय पर देते हैं। ग्रास कार्प मछली के लिए गाड़–गधेरों में उपलब्ध जलीय पौधे, नैपियर घास, बरसीम, हरा चारा या सब्जियों के व्यर्थ पड़े अवशेषों को काटकर तालाब में डालते हैं।

समन्वित मत्स्य पालन तकनीकी

पर्वतीय क्षेत्रों में अधिकॉश किसानों के छोटे–छोटे बिखरे हुये जोत एवं सीमित सिचाई के संसाधनों के कारण यहां के किसानों के लिये कम क्षेत्रफल में अधिक लाभ प्राप्त करने वाली तकनिकियों का समावेश आवश्यक है। इस क्रम में समन्वित मत्स्य पालन एक लाभकारी तकनीकी है। जिसके अन्तर्गत मछली पालन, कृषि, उद्यान, सब्जी उत्पादन, बकरी पालन, मुर्गी पालन, बत्तख पालन, गाय पालन, सुअर पालन आदि विभिन्न घटकों को अलग–अलग ना करके मछली पालन से जोड़कर किया जाना ही समन्वित मत्स्य पालन है। इस विधा का में एक–दूसरे के मल–मूत्रों अपशिष्ट पदार्थ बेकार भागों को दूसरे घटकों द्वारा भोजन,खाद आदि के रूप में प्रयोग कर उत्पादन में आयी लागत को कम कर आय में वृद्धि की जा सकती है। मत्स्य पालन की यह तकनीकी काफी लाभकारी है। इस तकनीकी से मत्स्य पालक अधिक आय प्राप्त करने के साथ सालभर विविधता पूर्ण पौष्टिक खाद्य सामाग्री जैसे की दूध,अण्डे,मांस,सब्जी व फल का भी उत्पादन करते है,जिससे दुर्भाग्यवश किसी फसल (घटक) में असफल होने पर किसान को अत्यधिक नुकसान नहीं उठाना पड़ता है। यह तकनीकी अपशिष्ट पदार्थों के पुनरावर्तन के सिद्वान्त पर आधारित है। इस प्रकार के मत्स्य पालन में तालाबों में खाद एवं मछलियों हेतु परिपूरक आहार की भी आवश्यकता नहीं होती है जिससे मत्स्य पालक के मत्स्य पालन एवं कृषि निवेश के व्यय में कमी होती है एवं मत्स्य पालक अधिक लाभ प्राप्त करता हैं।

उपरोक्त विधियों से तालाब की तैयारी के 10–15 दिन बाद जब तालाब के पानी का रंग हरा हो जाय,मत्स्य बीज संचय करना चाहिये। समन्वित मत्स्य पालन में 3 इंच से बढ़ी साईज की तालाब में शीघ्र बढ़ने वाली प्रजातियॉ–सिल्वर,ग्रास एवं कामन कार्प का संचय क्रमशः 30:40:30 के अनुपात में मत्स्य बीज संचय करना चाहिये। जिसकी संचय दर 300–400 प्रति 100 वर्ग मी. होनी चाहिए।

1. **मुर्गी सह–मत्स्य पालनः** इस प्रकार के समन्वित मत्स्य पालन में मुर्गियों को उनके आवास तक ही सीमित रखा जाता है। बाहर नहीं छोड़ा जाता हैं मुर्गियों के लिये मुर्गी बाड़ा बन्धे पर ही बनाया जाता है। एक वर्ग मी. स्थान पर 4–5 मुर्गियों को रखा जाता है। मत्स्य पालक एक फसल में 60 मुर्गियो को पालकर लाभ कमा सकते है। मत्स्य तालाब में आवश्यकता अनुसार 3–5 मुर्गी की बीट/मल प्रति आधा नाली तालाब प्रतिदिन की दर से डालकर अतिरिक्त बीट को खाद के रूप में अन्य फसलों में प्रयोग कर सकते है, तथा कुछ मात्रा को खुब अच्छे से सुखाकर रखने से पास मुर्गी न होने के समय में तालाब में डाला जा सकता है। पर्वतीय क्षेत्रों में क्रायलर प्रजातियों का चुनाव मॉग एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता के कारण लाभप्रद होता है। पर्वतीय घाटी वाले क्षेत्रों में यदि मांस की ज्यादा मॉग हो तो मांस वाली बायलर मुर्गी पालनी चाहिये तथा यदि अण्डे की मॉग हो तो अण्डे देने वाली लेयर मुर्गी पालनी चाहिए। प्रमुख प्रजातियों में रोर्डआइस लैण्ड,गिनीफाउल या लेगहार्न भी पाली जा सकती है। मुर्गियो को प्रतिदिन प्रतिमुर्गी 40–50 ग्रा. भोजन देते है। इनके अपशिष्ट पदार्थ एवं बिखरे हुये भोजन को तालाब में डाल दिया जाता है। जिसका उपयोग मछलियों द्वारा भोजन के रूप में किया जाता है तथा विष्ठा खाद का कार्य करती है। सामान्यतः मुर्गियॉ 5–6 मॉह बाद अण्डे देना प्रारम्भ करती है तथा 16–18 मॉह तक अण्डे देती रहती है इस प्रकार 100 वर्ग मी. क्षेत्र से बिना खाद एवं परिपूरक आहार पर व्यय किये ही 90 किग्रा. मछली लगभग 2000 अण्डे तथा 100 किग्रा. मांस प्राप्त कर सकते है।

2. **बतख सह–मत्स्य पालनः** बतख के साथ मछली पालन करने पर मछलियों के परिपूरक आहार तथा खाद पर होने वाले खर्च को कम किया जा सकता है,क्योकि बत्तखो के अपशिष्ट पदार्थ में काफी

मात्रा में बत्तख का दाना तथा आधापचा भोजन होता है। जो मछलियो के लिये सीधे भोजन का काम करता है तथा बत्तखो की बीट तालाब में खाद का काम करती है। बत्तखे तालाबो में आंवछित जीवो जैसे कीड़ो/डिम्भको को खाती है। बत्तखों के पानी में तैरने से तालाब में आक्सीजन की मात्रा बढ़ती है। जो मछलियों के वृद्धि के लिये आवश्यक है। बत्तखे तालाबों की तली खोद कर अपना भोजन दूढती है जिससे तालाब की उत्पादकता बढती है। इस तकनीक में मछली के साथ–साथ बत्तखो से अण्डे एवं मांस प्राप्त कर अधिक आय प्राप्त की जा सकती है।

सामान्यतः बाजार मांग को देखते हुये बत्तख की प्रजाति का चयन करते है। जिस क्षेत्र में मांस की खपत अधिक हो वहां पर व्हाइट पेकिंग तथा जिस क्षेत्र गें अण्डो की खपत की ज्यादा हो वहां पर खाकी कैम्पवेल प्रजाति का चयन करते है। इसके अतिरिक्त लोकल प्रजाति इण्डियन रनर को भी पाला जा सकता है। पर्वतीय क्षेत्रों में आर्थिक दृष्टिकोण से 100 वर्ग मी0 के तालाबो में 10 बत्तखे पालना लाभदायक होता है। तालाब में जैविक कारकों की आवश्यकता अनुसार बत्तखों की बीट की मात्रा को तालाब में डालते है। बत्तख घर तालाब के बन्धे पर इस प्रकार बनाया जाता है कि उसका आधा भाग तालाब में तथा आधा भाग बन्धे पर रहे। जिससे कि बत्तखों की बीट तालाब में आसानी से चली जाय बत्तखो को 50 से 100 ग्राम प्रति बत्तख प्रतिदिन भोजन दिया जाता है। लगभग छः माह बाद ये अण्डे देना प्रारम्भ कर देती है तथा 2 साल तक अण्डे देती रहती है।

3. **गाय सह–मत्स्य पालनः** 1000 वर्ग मी. तालाब के साथ एक गाय को पाला जा सकता है। एक गाय व उसके बछडे के लिये 6 वर्ग मी० जगह उपयुक्त होती है। पर्वतीय क्षेत्र में गाय सामान्यतः 6 ली0 दूध प्रतिदिन देती है। गाय का गोबर मछली के तालाब के लिये खाद का काम करता है। पर्वतीय क्षेत्रो में मिटटी में कार्बनिक जैविक पदार्थ की कमी होती है जिसे गाय के गोबर से दूर किया जा सकता है। गाय के तुरन्त त्यागे गये मल में 0.60 प्रतिशत नाइट्रोजन, 0.16 प्रतिशत फास्फोरस एवं 0.45 प्रतिशत पोटाश होता है। गाय सह–मत्स्य पालन से 85 किग्रा० मछली के साथ 1800 ली0 दूध प्राप्त होता है।

4. **कृषि/सब्जी सह–मत्स्य पालनः** इस तकनीक में तालाब के बन्धो के साथ लगे हुये खेतो में विभिन्न प्रकार की सब्जियां जैसे टमाटर मिर्च बैगन, पालक, फ्रेंचबीन्स तथा फलो में केला, पपीता एवं विभिन्न प्रकार के फूलों का भी उत्पादन किया जा सकता है। इस तकनीक में तालाब के पोषकता युक्त पानी का प्रयोग सब्जियो, फूलो की सिंचाई एवं तालाब की तली में जमा हुये गाद का प्रयोग खाद के रुप में किया जाता है। इससे सब्जियों के उत्पादन में 15 से 20 प्रतिशत की वृद्धि होती है। इस प्रकार किसान मछलियों के अतिरिक्त सब्जी, फल एवं फूलो से अतिरिक्त आय प्राप्त कर सकता है।

जाल द्वारा तालाब से मछलियों की निकासी

सामान्यतः तालाब में जाल का प्रयोग आवश्यक रूप से हर माह करनी चाहिए और यदि संभव हो तो माह में दो बार जाल के प्रयोग से मछलियों के स्वास्थ्य, बढ़ोत्तरी की जॉच के साथ–साथ ही मछलियों में तंदुरस्ती आती है जिससे मछलियां अधिक मात्रा में भोजन ग्रहण कर अच्छा बढ़वार प्राप्त करती है। पर्वतीय क्षेत्रों में मछली पकड़ने के लिए घघरिया जाल, गिल नैट, मच्छर दानी आदि का प्रयोग किया जाता है। इन विधियों द्वारा मछलियो की निकासी अच्छी प्रकार से नहीं हो पाती है और प्रायः चोटिल हो जाती है। कृषक बंन्धुओं को चाहिए कि वो स्थानीय स्तर पर छोटी फन्दों वाली खींचा जाल बनवा ले या फिर बाजार से मोल ले सकते है अथवा जिन कृषकों के पास ओला रोकने वाला हेल नैट उपलब्ध हो का भी उपयोग किया जा सकता है। यह हेल नैट सस्ता भी होता है और मछलियों को भी कम चोट पहुँचती है।

सफल मत्स्य पालन एवं प्रबंधन के कुछ आवश्यक बिन्दु

- पुराने तालाबों को प्रतिवर्ष गर्मी के दिनों में तली को चटकने तक सुखाना चाहिए।
- मछली का बीज संचय करने के दो सप्ताह पूर्व बिना बूझा हुआ चूने का छिड़काव करना चाहिए।
- चूने का प्रयोग प्रत्येक बदलते हुए मौसम (जाड़े के शुरूआत अक्टूबर–नवम्बर एवं गर्मी के शुरूआत फरवरी–मार्च) के पहले आवश्यक रूप से करना चाहिए।

- जल आगमन और निकासी द्वार जहां तक संभव हो एक दूसरे के विपरीत दिशा में लगाना लाभप्रद होता है।
- प्रतिदिन आवश्यक रूप से मछलियों को उचित मात्रा में संतुलित कृत्रिम भोजन खिलायें।
- यदि मछलियां पानी की सतह पर आकर मुँह से सांस लेने की कोशिश करें तो उन्हे कृत्रिम भोजन देना बन्द कर दें तथा आगे लिखित कृत्रिम उपायों से तालाब के पानी में ऑक्सीजन बढ़ाने की व्यवस्था करें।
- हर माह कम से कम दो बार तालाब में जाल आवश्यक रूप से चलाएं तथा रोगग्रस्त तालाब में चलाए हुये जाल को लाल दवा या नमक के घोल में धोने के बाद ही दूसरे तालाबों में उपयोग में लायें।
- तालाब की तली पर अधिक कीचड़ जमा न होने दें तथा तली में काली बदबूदार कीचड़ का जमाव अधिक हो जाय तो अगली फसल लेने से पहले सफाई आवश्यक होती है।
- तालाब में पानी की गहराई 1.5 मी0 बनाये रखें। तालाब में पानी का स्तर 4 मी. से कम रहने पर सद्रियों में पानी का तापमान काफी कम व गर्मियों में तापमान काफी अधिक हो जाता है, जो मत्स्य उत्पादन को प्रभावित करता है। तालाब अधिकतम 2 मी० से ज्यादा गहरे ना हों अन्यथा धूप की किरणें तालाब की तली तक ना पंहुचने से हानिकारक गैस बनती है जो पानी में उपलब्ध आक्सीजन की मात्रा को कम कर मछलियों को नुकसान पहुंचाती है।
- तालाब के पानी का रंग सदैव हरा व हल्का भूरापन लिये होना चाहिये जो तालाब की प्लवक (प्राकृतिक भोजन) की प्रचुर मात्रा को दर्शाता है। यदि तालाब रंगहीन है, और ऊपर देखने पर तालाब की तली साफ दिखाई देती है तो तालाब में प्राकृतिक भोजन की कमी है। जो मछली के उत्पादन को काफी कम कर सकता है। इस हेतु तालाब में जैविक खादों (गोबर, मुर्गी की बीट, वर्मिग कम्पोस्ट) को समय–समय पर डालते रहना चाहिए। गोबर 150–200 किग्रा० ताजा गोबर प्रति नाली या 100 वर्ग मी. प्रति वर्ष या 5 मुर्गियों की बीट प्रतिदिन अथवा 50–60 किग्रा0 वर्मिग कम्पोस्ट प्रति नाली या 100 वर्ग मी0 प्रति वर्ष की दर से तालाब में डालने पर प्राकृतिक भोजन का वांछित स्तर बनाये रखा जा सकता है।

प्रायः बरसात एवं जाड़े के कोहरे वाले दिनों मे जब 2–3 दिन से अधिक समय तक धूप नहीं निकलती है तो प्लवक भोजन नहीं बना पाते फलस्वरूप तालाब के आक्सीजन का स्तर घटने लगता है, जिससे मछलियां तालाब की सतह या तालाब में जहाँ पर पानी गिरता है, पर आकर मुँह खोलकर सॉस लेने लगती है, यह घटना सुबह 3–5 बजे से शुरू हो जाती है, और दिन के समय धूप निकलने पर सामान्य रूप से तैरने लगती है, प्रायः ऐसे समय में मछलियां तनाव में आकर पेट ऊपर की ओर करके मरने लगती हैं, कृषक बन्धुओं को चाहिए की मछलियों को कृत्रिम भोजन देना एवं खाद डालना बंद कर दें। शाम के समय तालाब में गिरने वाले पानी की व्यवस्था को देख लें कहीं पानी का आगमन बंद तो नहीं है, क्योंकि तालाब में ताजा पानी गिरते रहने से आक्सीजन का स्तर ठीक बना रहेगा। साथ में यह भी देख लें कि कहीं निकास द्वार बंद तो नही है, अन्यथा पानी भर जाने की दशा में मछलियां तालाब से बह अथवा कूद कर बाहर निकल सकती है। इस दशा में कृषक बन्धु निम्न उपाय भी अपना सकते है।

1. तालाब में ताजे पानी के आगमन की दर बड़ा दें।
2. तालाब के पानी को डंडों से पीटें ताकि वातावरण की आक्सीजन पानी में घुल सकें।
3. तालाब मे घुसकर खींचने वाला जाल चलायें।
4. बत्तख अथवा बच्चों को पानी में तैराएं।
5. यदि पानी बंद पाईप से आ रहा है, तो पाइप का पानी फव्वारे के रूप में गिरायें।
6. जल पंप हो तो तालाब के पानी को तालाब से खींचकर ऊँचाई से गिरायें।
7. चूने को भिगाकर 3–5 किग्रा प्रति नाली या 100 वर्ग मी0 की दर से छिड़कें।
8. 3–4 मिलीग्राम लाल दवा को एक लीटर पानी में घोलकर डालें।

- प्रतिवर्ष माह अक्टूबर व नवम्बर तक मछलियों की बिक्री कर देनी चाहिए, क्योकि जाड़े में मछलियों की बढ़त नहीं होती है, एवं दूसरे वर्ष के प्रवेश पर सामान्यतः पाली जाने वाली प्रजातियों में 18 माह के बाद दिये जाने वाले भोजन से वजन में बढ़ोत्तरी ना होकर लैंगिक परिपक्वता हेतु उपयोग में लायी जाती है, जो पर्वतीय क्षेत्र के कृषक भाईयों के लिए आर्थिक दृष्टिकोण से लाभप्रद नही है।
- अन्तिम ध्यान देने योग्य तथ्य यदि कभी भी मछलियों के व्यवहार में आकस्मिक बदलाव या रोगों के लक्षण दिखाई दे तो आवश्यक रूप से किसी मत्स्य वैज्ञानिक से सलाह लेकर तुरन्त उपचार करें।

पर्वतीय क्षेत्रों में कॉमन कार्प (*साइप्रिनस कार्पियो*) पालन

सुरेश चन्द्रा

भा.कृ.अनु.परि.–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल

कॉमन कार्प वस्तुतः एक विदेशी मछली है। जिसकी प्रमुख रूप से तीन उपजातियां पायी जाती है। जैसे की मिरर कार्प, स्केल कार्प एवं लैदर कार्प भारत में स्केल कार्प का आगमन सन् 1957 में हुआ था। जो कि बैंकाक से लायी गयी थी इसलिये इसको बैंकाक स्टेन भी कहते है। एशिया में जलजीव पालन में एक प्रमुख मत्स्य है। जो मैदानी क्षेत्रों में रोहू, कतला, मृगल, ग्रास कार्प एवं सिल्वर कार्प के साथ समन्वित मत्स्य पालन तकनीक में पाली जाती है। किन्तु मध्य हिमालयी क्षेत्रों में यह सिल्वर कार्प एवं ग्रास कार्प के साथ मुख्य रूप से पाली–जाती है। इस नई समन्वित मत्स्य में एक वर्ग मीटर में 3–4 अंगुलिकायें (1–2 इंच) 40–45 प्रतिशत ग्रास कार्प, 30–35 प्रतिशत कॉमन कार्प तथा 20–30 प्रतिशत सिल्वर कार्प के साथ पाली जाती है। सप्ताह में प्रतिदिन कृत्रिम आहार जिसमें 40 प्रतिशत खली, 30 प्रतिशत चावल का चौकर, 10 प्रतिशत गेहूँ का चौकर तथा 10 प्रतिशत सोयाबीन का आटा होता है। जो कि मछली के वजन का 2–3 प्रतिशत की दर से दिया जाता है। पानी की गुणवत्ता सुचारू रूप से हो इसके लिए महिने में 2–3 बार चूना 400 किग्रा प्रति है. तथा लाल दवा 1 लीटर प्रति है. की दर से छिड़काव करना उचित होता है। इस प्रकार वैज्ञानिक तरीका अपनाकर हम अच्छा मत्स्य उत्पांदन ले सकते हैं।

प्रजनन

कॉमन कार्प एक बहुप्रजनक मछली है। मैदानी इलाकों के तालाबों व झीलों में इसका प्राकृतिक प्रजनन होता है, परन्तु वहाँ बच्चों की उत्तरजीविता प्रायः कम पाई जाती है। किन्तु पहाड़ी इलाकों में इसका प्रजनन प्राकृतिक रूप से होने में कठिनाई होती है। अतः सकल बीज उत्पादन के लिए नियन्त्रित अवस्था प्रजनन आवश्यक है। प्रजनन के लिए पूर्ण रूप से प्रजनकों का चयन आवश्यक है ताकि प्रजनन के आशातीत परिणाम प्राप्त किये जा सकें। मैदानी क्षेत्रों में कॉमन कार्प प्रायः पूरे वर्ष प्रजनन करती है। किन्तु प्रजनन का मुख्यतः दो समय स्पष्ट देखने में आता है। वर्षा ऋतु एवं शरद ऋतु जब जल का तापमान 28 से 30°C तक हो जाता है किन्तु पहाड़ी क्षेत्रों में यह अप्रैल से जून के बीच प्रजनन करती है। क्योंकि पहाड़ी क्षेत्रों में जल का तापमान अप्रैल के बाद ही बढ़ता है।

नर व मादा प्रजनकों की पहचान

पहाड़ी इलाकों में अप्रैल से जून के बीच इनका प्रजनन होता है। किन्तु स्थानीय तापमान के ऊपर यह संगय, परिवर्तित हो. सकता है, अतः नर व मादा प्रजनकों की अवस्था की पहचान करते रहना चाहिए। प्रजनकों ब्रूड फिश, का चयन करते समय नर–और मादा की पहचान निम्न लक्षणों के आधार पर की जा सकती हैं।

नर प्रजनक

1. पेक्टोरल पंख छूने पर खुरदरा प्रतीत होता हैं।
2. जननांग में कोई उभार नहीं होता है। बल्कि यह धँसा हुआ होता है।
3. पेंट सधारण रूप से उभरा हुआ प्रतीत होता है।
4. पेट पर गुर्दे के निकट दबाव डालने पर सफेद दूध जैसा पदार्थ (मिल्ट) निकलता है।

मादा प्रजनक

1. पेक्टोरल पंख में खुरदुरापन नहीं होता है।
2. जननांग उभरा और लालिमा लिए हुए होता है।
3. अण्डों की वजह से पेट काफी उभार लिए (फूला हुआ) प्रतीत होता है।
4. पेट पर गुर्दा के निकट दबाव डालने पर अण्डे बाहर निकलते हुए प्रतीत होते हैं।

प्रजनकों का चयन

प्रजनन हेतु जोड़ा बनाने के लिए प्रजनकों को तालाब से सावधानीपूर्वक निकालकर नर तथा मादा प्रजनकों को अलग–अलग स्थान पर रखते हैं। प्रजनकों के प्रजनन के लिए रखते समय नर मादा को वजन में बराबर तथा 1मादा के साथ 2 नर अथवा 2 मादा के साथ 3 नर की संख्या में रखते हैं।

प्रजनन स्थान

कॉमन कार्प का प्रजनन साधारणतः कपड़े से बने प्रजनन हापे में /प्लास्टिक पूल में/फाइबर ग्लास टैंक में कराया जाता है।

विधि

प्रजनकों के जोड़े बनाने के पश्चात उन्हें प्रजनन हापाओं में अथवा सीमेंन्ट या फाइबर ग्लास के टैंकों में छोड़ दिया. जाता है। अण्डे की चिपकने की प्रवृति के कारण चिपकने हेतु सतह प्रदान करने के लिए हापा में जलीय पौधे जैसे हइंड्रिला या जल कुंभी जड़ सहित आदि को साफ पानी में धोकर सामान रूप से फैला दिया जाता है। साधारणतः 4 किग्रा की मादा के लिएं कई किलोग्राम जलीय पौधे रखे जाते हैं। प्रजनन के लिए प्लास्टिक की स्ट्रिप काटकर उसका भी प्रयोग किया जाता है। प्रजनन के लिए 28–32° सेन्टिग्रेट तापमान उचित है। नर मादा प्रजनकों में 10–12 घण्टे में अण्डे जनन की प्रक्रिया पूरी हो जाती है। प्रजनन प्रक्रिया को सरल बनाने लिए कृत्रिम हार्मोन्स जैसे– ओवाप्रिम, ओवाटाइड,वोवा एफ एवं पीयूष ग्रन्थि का घोल इत्यादि का प्रयोग भी किया जा सकता है। इन हार्मोन्स की मात्रा प्रजनकों की परिपक्वता के अनुसार 0.1–0.2 मि. ली./किग्रा. मछली होती है। प्रजनन के बाद अण्डे जलीय पौधे की सतह से चिपक जाते हैं। प्रजनन के बाद प्रजनकों को हापा अथवा टैंकों से बाहर निकाल देना चाहिए। 1 किग्रा मादा औसतन 1 लाख अण्डे देती है। निषेचित और अनिषेचित अंगों का रंग देखकर उनकी पहचान की जा सकती है। निषेचित अण्डे मटमैले पीले रंग के होते हैं। जबकि अनिषेचित अण्डे दुधिया रंग के दिखाई देते हैं। तथा निषेचित अण्डों की तुलना में अनिषेचित अण्डे आसानी से दिखाई देते हैं।

हैचिंग

अण्डे लगे हुए जलीय पौधों को हैचिंग हापा में समान रूप से फैलाकर रख दिया जाता है। अण्डों से (हैचलिंग जीरा) निकलने की क्रिया 28–32° सेन्टिग्रेट जलीय तापमान पर प्रायः 48 घंटों में पूरी हो जाती है। कम तापमान पर हैचिंग में अधिक समय लगता है। हैचिंग प्रक्रिया पूरी हो जाने के बाद जलीय पौधों को हापा से बाहर निकाल देना चाहिए। तथा हैचलिंग को हापा में ही रहने देते हैं। हैचिंग के 72 घंटे (3 दिन) के बाद हैचलिंग का पीतक (योक) पूरी तरह खत्म हो जाता है। हैचलिंग इसी योग का 72 घंटे तक खाना लेती तथा उसके बाद जीरे को बाहरी भोजन की आवश्यकता पड़ती है। अतः उनको मत्स्य बीज के लिए तैयार नर्सरी तालाबों में संग्रहित कर दिया जाता है।

प्रजनन हेतु सावधानियाँ

प्रजनन काल के 1 माह पूर्व नर तथा मादा प्रजनकों को अलग–अलग तालाबों में रखना चाहिए। नर तथा मादा प्रजनकों को एक ही तालाब में रखने से अनियन्त्रित अण्डजनन हो सकता है। कॉमन कार्प के प्रजनकों को रखनें वाले तालाबों में पानी की सतह तथा पानी के अन्दर घास अथवा जलीय पौधे नहीं होने चाहिए। कॉमन कार्प प्रजनकों को प्रजनन के लिए रखने से पहले नर तथा मादा का चयन भली–भॉति कर लेनी चाहिए क्योंकि नर तथा मादा के चयन में शारिरिक बनावट एक जैसी दिखने के कारण त्रुटि हो सकती है। चूँकि कॉमन कार्प एक बहुप्रजनक मछली है। अतः इसका प्रजनन किसी भी ऋतु में आसानी से कराया जा सकता है। मत्स्य कृषक इस तकनीक द्वारा कम लागत का उपयोग अपनाकर स्वरोजगार के साथ–साथ अतिरिक्त आय अर्जित कर सकते है।

एकीकृत मछली पालनः प्रकार और फायदे

तोशीबा, शीतल शर्मा, सुमित कुमार, दीक्षा आर्य, एन.एन. पांडेय एवं संतोष कुमार
भा.कृ.अनु.प.–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल

परिचय

एकीकृत कृषि प्रणाली खेती की आधुनिक तकनीक है। इस तकनीक में खेती के साथ–साथ बागवानी, पशुपालन, कुक्कुट पालन, मत्स्य पालन को बढ़ावा दिया जाता है। इससे किसानों की आमदनी बढ़ाने में काफी मदद मिलती है। जिसमें कृषि गतिविधियों का एक समूह जैसे भूमि उत्पादकता, पर्यावरण की गुणवत्ता और जैविक विविधता को बनाए रखना और पारिस्थितिकी स्थिरता शामिल है। एकीकृत कृषि प्रणाली कृषि की एक सतत प्रणाली है दो या अधिक कृषि गतिविधियों के बीच अनुक्रमिक संबंधों का उपयोग किया जाता है, जिससे खेती में बदलाव आया है फसल पद्धति में अधिकतम उत्पादन के लिए तकनीक और संसाधनों के इष्टतम उपयोग हुआ है। यह प्रणाली सुनिश्चित करती हैः संसाधनों का अधिकतम उपयोग, फसल विफलता के जोखिम को कम करता है और अतिरिक्त आय प्रदान करता है, किसानों के लिए और लघु कृषक परिवार के लिए भोजन प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त यह प्रणाली उप–उत्पादों की रीसाइक्लिंग और एक प्रणाली के दूसरे के लिए इनपुट के रूप में आपस में जुड़े पोषक तत्व प्रवाह करता है, इस प्रकार न्यूनतम लागत पर इकाई क्षेत्र से उत्पादन को अधिकतम किया जा सकता है।

यह प्रणाली मार्ग प्रशस्त करती है, जो एकीकृत मृदा जल उर्वरता में वृद्धि कर सकती है जो प्रबंधन जैव विविधता और जैविक चक्र को बढ़ावा दे सकता है।

एकीकृत मछली पालन के प्रकार

एकीकृत मछली पालन के प्रकार पर्यावरण की स्थिति, सामाजिक नियम, सांस्कृतिक मूल्य और धार्मिक कारक पर निर्भर करता है।

1. **मछली सह मुर्गी पालनः** यह अभ्यास पूरी तरह से निर्मित पोल्ट्री ड्रॉपिंग का उपयोग करता है, मछली पालन के लिए पोल्ट्मुर्गे की बीट नाइट्रोजन और फास्फोरस से भरपूर होती है जिसका मछली तालाबों में उर्वरक के रूप में प्रयोग किया जाता है। एकीकृत मछली सह मुर्गीपालन के अंतर्गत मछलियों के लिए रसायन और पूरक आहार उर्वरक आवश्यकता नहीं होती है। 4500–5000 किलोग्राम/हेक्टेयर मछली, 1250 किलोग्राम मुर्गा मांस, और 70,000 नं. अंडे का वार्षिक उपज में शामिल हैं।
2. **मछली सह सूअर पालनः** मछली पालन सुअर पालन से जुड़ा हुआ है जिसमें तालाब के तटबंध पर सुअरों के लिए घर बनाया जाता है। जिससे अपशिष्ट और मलमूत्र को सीधे तालाब में बहा दिया जाता है। मछली सीधे उस मलमूत्र को खाती है,सुअर का गोबर एक अच्छा उर्वरक है।
3. **मछली सह बतख पालनः** बत्तखें जलीय कीड़ों के लार्वा को खाती हैं और समृद्ध होती हैं उनकी बूंदों के साथ पानी जो मछली के चारे के रूप में काम करता है और प्लवक की वृद्धि भी बढ़ती है। बत्तख की बीट में 25 अकार्बनिक पदार्थ होते हैं कार्बन, फास्फोरस पोटेशियम, नाइट्रोजन सहित, कैल्शियम आदि, जो मछली तालाबों में उर्वरक के रूप में कार्य करता है। बत्तखों के बेहतर स्टॉक जैसे– इंडिया रनर्स का उपयोग पॉली में किया जाता है, मछली के साथ 200–300 बत्तखें पाली जाती हैं जिनसे पर्याप्त आमदनी हो सकती है, यह एक हेक्टेयर क्षेत्र में 3,500–4,000 किलो मछली 18,000 अंडे और 500 किलो बत्तख का मांस एक साल में उत्पादन कर सकता है।
4. **मछली सह फसल उत्पादनः** धान के खेतों में काफी अवधि (3–8 महीने) तक खेतो में पानी भरा रहता है, इसलिए कम लागत पर मछली के साथ चावल उगाया जा सकता है।ऐसी प्रणालियों के पारिस्थितिक लाभों में खरपतवार शामिल हैं,और कीट नियंत्रण, मिट्टी–पानी इंटरफेस का बायोटर्बेशन आदि। केरल के पोक्कली, महाराष्ट्र के खज़ान आदि इसके कुछ उदाहरण हैं। चावल

के खेत में 3–4 महीने की अवधि के लिए मछली पालन, 200–300 किलोग्राम/हेक्टेयर का उत्पादन हासिल किया गया और जबकि मछली 5–6 महीने की अवधि के लिए 400–500 किलोग्राम/हेक्टेयर उपज रही उसी सीज़न में रिपोर्ट किया गया है ।

5. **मवेशी–सह–मछली पालनः** एकीकरण की इस प्रणाली में मवेशी गोबर को बायोगैस संयंत्रों में ऑक्सीकृत स्थानांतरित कर छोटे चैनलों के माध्यम से मछली तालाब में खाद के रूप में उपयोग किया जाता है। आस–पास गौशाला का निर्माण कराना लाभकारी रहता है, गाय का गोबर तालाबों के लिए खाद का काम करता है।

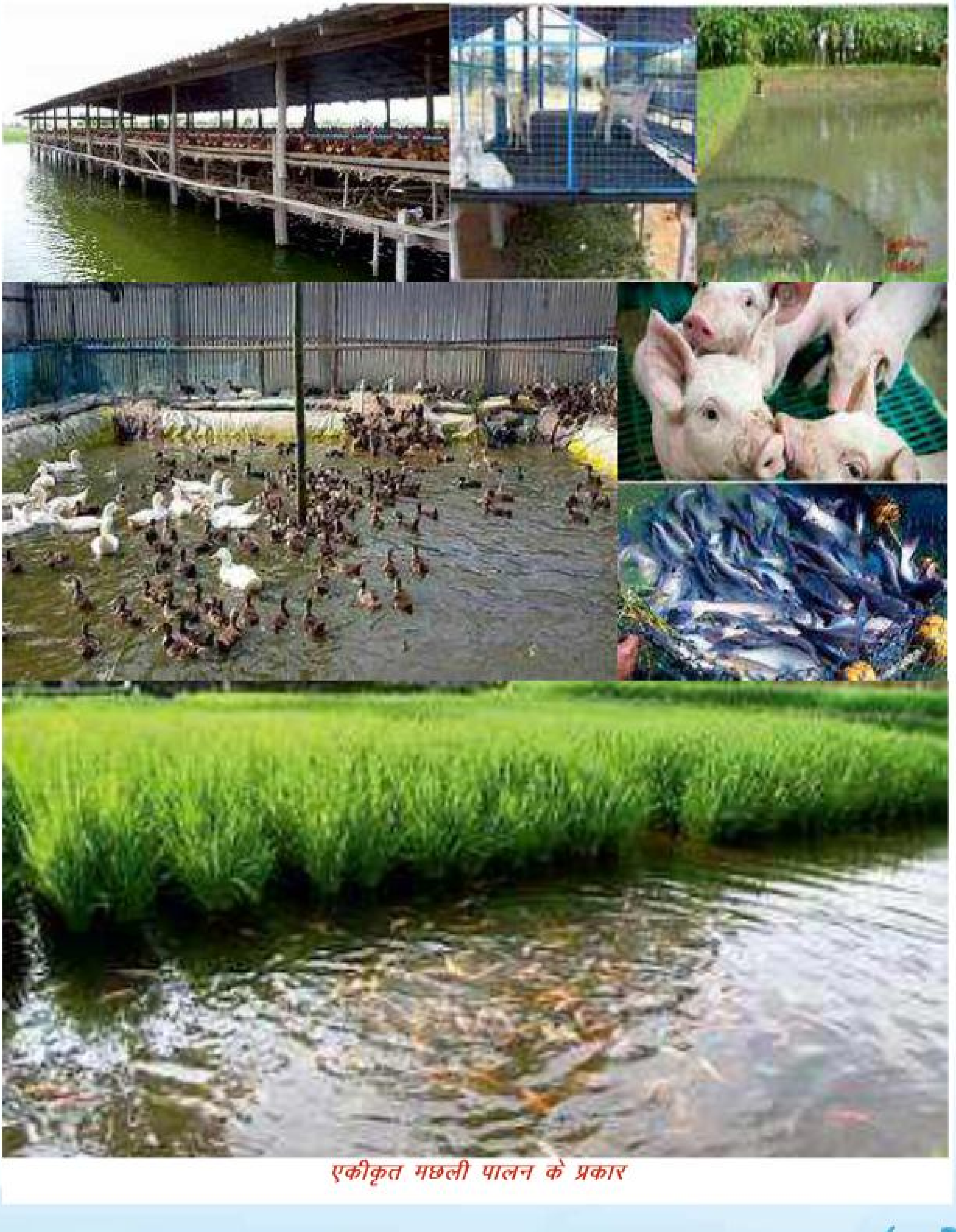

एकीकृत मछली पालन के प्रकार

एकीकृत कृषि प्रणाली के फायदे

1. **आय चक्र वर्षः** फसलों, अंडे, दूध के साथ उद्यमों के कारण, मशरूम, शहद, कोकोन्स रेशमकीट वर्ष भर किसानों को धन का प्रवाह प्रदान करता है।
2. **चारा संकट से निपटने के लिएः** भूमि क्षेत्र के हर टुकड़े का प्रभावी ढंग से उपयोग किया जाता है। पौधारोपण क्षेत्र सीमाओं पर बारहमासी फली के चारा वृक्ष और वायुमंडलीय नाइट्रोजन को ठीक करने के लिए इन अभ्यासों से गुणवत्तायुक्त चारा उपलब्ध होने की समस्या से काफी राहत मिलेगी।
3. **पर्यावरण सुरक्षाः** आईएफएफएस में अपशिष्ट पदार्थों को आपस में जोड़कर प्रभावी ढंग से उचित घटक को रिसाइकिल किया जाता है इस प्रकार पर्यावरण प्रदूषण को कम करते हैं।
4. **क्षमता या स्थिरताः** क्षमता या स्थिरता एल घटक के उप–उत्पादों के प्रभावी उपयोग के माध्यम से जैविक अनुपूरण किया जाता है और इस प्रकार लंबे समय तक उत्पादन क्षमता को बनाए रखने का अवसर प्रदान किया जाता है।
5. **ऊर्जा की बचतः** जीवाश्म ऊर्जा पर हमारी निर्भरता कम करने के लिए एक वैकल्पिक स्रोत की पहचान करना, प्रभावी पुनर्चक्रण तकनीक जैविक कचरे में उपलब्ध बायोगैस उत्पन्न करने के लिए प्रणाली का उपयोग किया जा सकता है जिससे ऊर्जा संकट को बाद की अवधि तक टाला जा सकता है।
6. **नई प्रौद्योगिकी को अपनानाः** संसाधन किसान (बड़े किसान) पूरी तरह से प्रौद्योगिकी का उपयोग करते हैं। आईएफएसकिसान, डेयरी/मशरूम/रेशम उत्पादन/सब्जी का संबंध वर्ष भर धन प्रवाह छोटे/मूल किसानों को गोद लेने की तकनीक अपनाने की प्रेरणा देता है।
7. **रीसाइक्लिंगः** अपशिष्ट सामग्री उचित घटक की प्रभावी रिसाइक्लिंग तरीके से रिसाइकल किया जाता है, इस प्रकार पर्यावरण प्रदूषण को कम करते हैं।
8. **रोजगार सृजनः** पशुधन उद्यमों के साथ खेती में वृद्धि होगी की आवश्यकता महत्वपूर्ण है और इससे निम्न की समस्याओं को कम करने में मदद मिलेगी,आईएफएस काफी हद तक रोजगार पारिवारिक श्रम को नियोजित करने के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान करता है।
9. **ईंधन और लकड़ी संकट का समाधानः** कृषि–वानिकी को उचित रूप से उत्पादन स्तर से जोड़ना, ईंधन और औद्योगिक लकड़ी को फसल पर प्रभाव निर्धारित किए बिना बढ़ाया जा सकता है। साथ ही वनों की कटाई को कम करना, हमारे प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र को संरक्षित करना।

कर्मभूमि की दुनिया में श्रम सभी को करना है....
ईश्वर सिर्फ लकीरें देता है
रंग हमें ही भरना है

भगवत् गीता

रेन्बो ट्राउट का प्रजनन एवं बीज उत्पादन

सुरेश चन्द्रा
भा.कृ.अनु.प.–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल

आधुनिक खेती कार्यों में वैज्ञानिक तकनीकी जानकारी का बहुत अधिक महत्व है। मौसम एवं जीवन शैली के बदलते स्वरूप के साथ देश की बढ़ती विशाल जनसंख्या को सस्ते दाम में पौष्टिक प्रोटीनयुक्त भोजन उपलब्ध कराना वर्तमान की एक महत्वपूर्ण चुनौती है। कृषि, बागवानी, पशुपालन के साथ मछली पालन भी इसमें एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। देश के पर्वतीय क्षेत्रों की विषम भौगोलिक स्थितियों में खेती–बाड़ी का व्यवसाय अनेक तरह की कठिनाईयों से होकर गुजरता है, जिससे उत्पादन और उत्पादकता दोनों ही प्रभावित होते हैं। विकसित लाभकारी विविधिकरण पद्धतियों के अनुपालन द्वारा खेती से कृषक आजीविका निर्वहन के साथ–साथ कृषि पर पढ़ने वाले दबाव को भी कम कर सकते हैं। जलीय संसाधनों की उपलब्धता वाले मध्य हिमालयी क्षेत्रों जहाँ वर्ष पर्यन्त पानी का सामान्यतः तापमान 0 से 208 के बीच रहता है इन जगहों पर अन्य पहाडी मछलियों के अतिरिक्त, अभ्यागत रेनबो ट्राउट नामक मछली का प्रजनन एवं पालन कर बीज उत्पादन से व्यापक स्तर पर पहाड़ो के नियन्त्रित परिवेश में रेनबो ट्राउट मछली पालन को बढ़ावा दिया जा सकता है।

रेनबो ट्राउट मछली को बहते हुए ऑक्सीजन युक्त स्वच्छ जल की आवश्यकता होती है अतः ट्राउट हैचरी निर्माण पूर्व जल की समुचित व्यवस्था वाले क्षेत्र का चयन करना आवश्यक है इसके साथ ट्राउट हैचरी के लिए ऐप्रोज रोड़ एवं विधुत व्यवस्था होना भी जरूरी है। जिससे आवागमन एवं बीज परिवहन कार्यों में किसी तरह का व्यवधान उत्पन्न न हो।

प्रजनकों का चयन

रेनबो ट्राउट मछलियाँ 3 वर्ष में परिपक्वता प्राप्त करती हैं। प्रजनकों को पालन रेसवे से लगभग तीन चार हफ्ते पहले ट्राउट को निकाल कर नर व मादा मछलियों को अलग–अलग रख देते हैं। इनकी पहचान लैंगिक आधार पर की जाती है नर मछलियों की पहचान उनके रंग और निचले जबड़े पर विकसित हुक से की जाती है। मादा मछलियों का उदर फूला हुआ एवं शरीर का रंग हल्का हरापन लिए रहता है। प्रजनन काल में मछलियों की त्वचा अत्यधिक मुलायम एवं रंग चमकीला हो जाता है। चम्पावत केन्द्र में पाली गयी रेनबो ट्राउट मछलियों में लैंगिक परिपक्ता 2011–12 में जनवरी माह के अन्तिम हफ्ते में देखी जाती थी और लगभग फरवरी तक रहती हैं। लेकिन वर्ष 2013 में यह जनवरी के प्रथम हफ्ते में एवं 2014–15 वर्ष में दिसम्बर के तीसरे सप्ताह में प्राप्त की गयी। इससे यह प्रतीत होता है कि आने वाले समय में इसमें और परिवर्तन हो सकता है। इस दौरान पानी का तापमान 2 डिग्री से 6.5 डिग्री तक रहता है।

रेसवे की देखभाल

ट्राउट की आदतों और स्वभावतः के अनुकूल पानी का प्रवाह एवं संतुलित आहार प्रदान किया जाता है। खाद्य में मछली का चूर्ण, सोयाबीन की खली,चावल की कनकी, विटामिन और लवणों एवं मछली का तेल युक्त पौष्टिक भोजन की आपूर्ति की जाती है। यह आवश्यक है कि भोजन के प्रोटीन का स्तर 40 प्रतिशत ऊपर बना रहे। प्रतिदिन 2 बार मछलियों को उनके कुल वजन 3 से 5 प्रतिशत के हिसाब से पैलेट आहार दिया जाता है। मछलियों को स्वच्छ परिवेश एवं बहते हुए जल की आवश्यकता होती है। अतः 12–15 दिन के अन्तराल में टैंक की सफाई की जाती है।

प्रजनन

एक मादा ट्राउट सामान्यतः 1600–2000/किग्रा. तक अण्डे देती है। हैचरी में उपलब्ध सुविधाओं और क्षमता अनुसार ही कुल लिए जाने वाले प्रजनकों का निर्धारण किया जाता है। सामान्यतः एक मादा मछली के लिए 2–3 नर मछलियों की जरूरत होती है। प्रजनन पूर्व इनेमल ट्रे,साफ तौलिये, स्पंज,

ब्रुडफिश ले जाने के लिए ब्रुडफिश कैरियर, पंख एवं हैचिंग टब और ट्रे आदि पोटेशियम परमैंगनेट के घोल से अच्छी तरह धोकर रख लिए जाते है।

स्ट्रिपिंग

मादा प्रजनकों को स्वच्छ तौलिये से हल्के से पोछकर सुखी ट्रे के ऊपर एक हाथ से पकड़कर अंगूठे की सहायता से धीरे–धीरे पेट के अगले हिस्से को बाहर की तरफ दबाते हैं इससे अण्डे पिचकारी की तरह बाहर निकल आते हैं। चमकदार पीलापन रंग के समान आकार के अण्डे अच्छे होते हैं, जबकि सफेद अण्डे उचित परिणाम नहीं देते हैं। सामान्यतः स्वस्थ मछलियों के अण्डे 4–6 मिमी आकार के एवं 50–100 मिग्रा. वजन के होते हैं। प्रायः एक मछली के कुल वजन के 15–20 प्रतिशत तक अण्डे प्राप्त हो जाते हैं। इन अण्डों के ऊपर मादा मछली का मिल्ट डालते हैं। इसमें भी नर मछली का पेट आगे से पीछे को दबाकर सफेद मिल्ट बाहर निकलता है। इन अण्डों और मिल्ट को एक मुलायम पंख से हल्के हाथ से मिलाते हैं। इस दौरान यह ध्यान देना आवश्यक है कि इसमें प्रकाश कम से कम पड़े। ट्रे में इन्हें 15–20 मिनट तक ढक कर रख दिया जाता है। इसके पश्चात इन्हें साफ पानी से धो दिया जाता है। अण्डों में स्ट्रिपिंग के समय मिलने वाले मछलियों के मल, रक्त के थक्के आदि को सफाई के दौरान बाहर निकालना आवश्यक है।

निषेचित अण्डों का जल प्रवाहित प्रणाली मे संवर्धन

41.5 x 45.5 (37.5 सेमी. x 37.5 सेमी) के दो तरफ जालीयुक्त ट्रे में अण्डे रखे जाते हैं। इसमें 5–7 लीटर /मिनट पानी का बहाव रखा जाता है। एक ट्रे में 2000–5000 तक अण्डे रखे जा सकते हैं। इन अण्डों से भरी ट्रे को 25 मी लम्बे एवं 50 सेमी चौड़े आयताकार फाइवर टैंक में रखे जाते हैं। एक फाइवर टैंक में ऊपर लिखित आकार की 4 ट्रे तक रखी जा सकती हैं, और इनमें 8–20 हजार तक अण्डे संवर्धित किये जा सकते हैं। खराब अण्डों को नियमित रूप से बाहर निकाल लिया जाता है। आइड ओमा degree days 20–25 दिन में तैयार हो जाते हैं। जिनका परिवहन अन्य जगहों को किया जा सकता है। सामान्यतः 05–12°C तापमान पर 35–42 दिन में अण्डे से बच्चे बाहर निकल आते हैं। हैचरी संवर्धन में अण्डे से बच्चे

बाहर निकलने में 370° degree days आवश्यक है। ट्रे एवं टैंको का नियमित सफाई अत्यन्त आवश्यक है। हैचरी संवर्धन के दौरान बढ़ती अवधि एवं पानी के तापमान के साथ जैसे–जैसे निशेचित अण्डों में विभिन्न अवस्थायें प्राप्त होती है, इनमें कवक एवं बैक्टीरिया संक्रमण की आशंका बढ़ जाती है। अतः समय–समय पर टैंकों की पूर्ण सफाई अत्यन्त आवश्यक है। इस दौरान लगभग 90–95 प्रतिशत अण्डों से यौकसैक युक्त लार्वा प्राप्त होते हैं। इसके पश्चात इन्हें बड़े टबों में संवर्धित किया जाता है।

टब में लार्वी संवर्धन

अण्डों से हैचिंग उपरान्त यौकसैक युक्त लार्वी प्राप्त होते हैं। सामान्यतः 90–95 प्रतिशत तक अण्डे हैच कर जाते हैं। यौकसैक लगी रहने के कारण लार्वी चलना फिरना नहीं कर पाते हैं। इस यौकसैक के अवशोषित होने में तापमान समय लग जाता है। इसके पश्चात इनका चलना फिरना शुरू हो जाता है, और बाहर से महीन सन्तुलित आहार ग्रहण करने योग्य हो जाते हैं। लार्वी को विभिन्न आकार के गोलाकार या आयताकार टबों में रखा जाता है। बहते हुए पानी की व्यवस्था करना भी आवश्यक है।

टबों के लिये जल की उत्तम गुणवत्ता बनाये रखने के लिए प्रतिदिन एक साफ ब्रुश से सफाई की जाती है। जिससे दिये गये आहार के बच्चे अवशेष एवं मछलियों के अपवर्ज पदार्थ बाहर हो जाते हैं। पानी के कुछ भाग को बीच–बीच में बदलाव करना लाभप्रद होता है। हैचरी में प्राप्त होने वाले पानी की मात्रा एवं तापमान का लार्वी संवर्धन पर सीधा प्रभाव पड़ता है। 13–14 °C से अधिक तापमान पर लार्वी में डीफोरमेटी देखी जाती है। अतः इस ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है। लार्वी को प्रतिदिन महीन संतुलित आहार दिन में 2–3 बार टैंक के ऊपर पाउडर रूप में दिया जाता है। लगभग 25–30 दिन इन्डोर संवर्धन के बाद ये शारीरिक रूप से मजबूत हो जाते हैं जिन्हें प्रक्षेत्र के नर्सरी रेशवे में संचय किया जा सकता है।

नर्सरी प्रबंधन

लगभग एक माह के ट्राउट फ्राई छोटे–छोटे आयताकार नर्सरी रेशवे जिनका आकार सामान्यतः 30–50 मी. होता है में 100–200/मी के हिसाब से संचय की जाती हैं। लेकिन संचय घनत्व पानी के बहाव अनुसार बढाया घटाया जा सकता है। ट्राउट मछली के नर्सरी प्रबन्धन के लिए कुछ महत्वपूर्ण बातों का ध्यान रखना आवश्यक है।

- बहते हुए साफ जल की सतत आपूर्ति बनाये रखना।
- नियमित रूप से दो तीन बार आहार प्रदान करना।
- एक निश्चित समयन्तराल में नर्सरी रेशवे की पूर्ण सफाई करना।
- नर्सरी टैंकों की सफाई के दौरान फ्राई को दो तीन प्रतिशत नमक के घोल अथवा 200–300 मिलीग्राम/लीटर पोटेशियम परमैगनेट के घोल में 1–2 मिनट तक डुबा कर नर्सरी में छोड़ना।
- ट्राउट मांसाहारी के साथ–साथ कैनाबिलिस्टिक व्यवहार भी दर्शाती है अतः फ्राई की 20–25 दिन में एक बार आकारनुसार ग्रेडिंग करना आवश्यक है। इसमें अलग अलग आकार की फ्राई को अलग–अलग नर्सरी संवर्धन इकाईयों में संचय करना चाहिए जिससे छोटी फ्राई को नुकसान न पुहंचे इस प्रकार 20–30 दिन बाद तैयार फ्राई को बड़े टैंकों में संचय अथवा इनका विक्रय किया जा सकता है।

उत्तम बीज उत्पादन प्राप्त करने हेतु कुछ उपाय

- प्रजनक ट्राउट मछलियों का चयन प्रजनन के तीन–चार माह पूर्व कर लेना चाहिए।
- इन्हें सन्तुलित आहार नियमित रूप से देते रहना चाहिए।
- प्रतिदिन रेसवे में रखी गयी प्रजनक ट्राउट का व्यवहार एवं खाद्य ग्रहण करने पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है।
- प्रजनन से 45–20 दिन पूर्व नर और मादा मछलियों का चयन कर लिया जाना चाहिए।
- नर एवं मादा ट्राउट को अलग–अलग रेसवे में रखना चाहिए।
- 0.7 से 2 किलो तक के मादा प्रजनक जिनकी आयु तीन से पाँच वर्ष हो स्ट्रीपिंग में आसानी के साथ–साथ अधिक अण्डे भी प्राप्त होते है।
- जिस दिन प्रजनन कार्य करना हो उसके पहले दिन की शाम के समय ट्राउट मछलियों को रेसवे में खाद्य नही देना चाहिए, क्योंकि स्ट्रीपिंग के समय नर और मादा मछलियों के मल द्वारा अण्डों के खराब होने की सम्भावना बहुत अधिक रहती है।
- स्ट्रीपिंग पूर्व नर और मादा मछलियों को लौंग के तेल (40 मिग्रा प्रति.लीटर) के घोल में 1–2 मिनट तक डुबोने से यह अचेत हो जाती है। जिन्हें बिना तनाव के स्ट्रीपिंग किया जा सकता है।
- लगभग एक किलो की स्वस्थ्य मादा ट्राउट से 1600–2000 तक अण्डे प्राप्त किये जा सकते है।
- एक स्वस्थ्य नर से प्राप्त मिल्ट से 2 से 3 मादा मछलियों के प्राप्त अण्डों का निषेचन किया जा सकता है।
- प्रजनकों को स्ट्रीपिंग करते समय यह ध्यान देना चाहिए कि उनके शरीर पर अत्यधिक दबाव न पड़े, इससे प्रजनक मछलियों के आन्तरिक अंगों मे चोट पड़ने की सम्भावना बढ़ने के साथ–साथ स्ट्रीप किये अण्डें भी खराब हो जाते है। प्रायः ऊपर से धीरे–धीरे दबाकर नीचे की तरफ को दबाव डालना चाहिए इससे अण्डें पिचकारी की तरह बाहर निकल आते है।
- जिन मादा मछलियों के स्ट्रीपिंग के समय पहले पानी बाहर निकले उनमें तुरन्त नर का मिल्ट मिला देना चाहिए इससे निषेचन बढ़ने की सम्भावना रहती है।
- यह समस्या उन मादा मछलियों में देखी जाती है जो अधिक परिपक्व हो गयी हैं अतः प्रजनन के महिनों में नियमित रूप से मछलियों की जाँच करते रहना चाहिए।

- प्रायः ऐसा पाया गया है कि वातावरणीय परिर्वतन एवं मछलियों के बढ़ते पालन से लैंगिक परिपक्वता पहले प्राप्त हो जा रही है। यह अवधि लगभग 20 दिन से 30 दिन तक देखी गयी है अतः जो इस क्षेत्र में कार्यरत है उन्हें भी इस तरह के परिर्वतनो पर ध्यान देना चाहिए।
- स्ट्रीपिंग करते समय यह ध्यान रहे कि सभी अण्डें बाहर निकल गए है। प्रायः ऐसा देखा गया है कि जिन मादा मछलियों में अण्डें पेट में रह जाते है। उनके यकृत एवं आंतो में संक्रमण की सम्भावना बढ़ जाती है और प्रजनक मरने लगते है।
- ऐसी ट्राउट मादा जिन्हें स्ट्रीपिंग के लिए उपयोग नहीं किया गया उन मछलियों के भी अण्डे यदि पेट में उपस्थित हो तो बाहर निकाल देना चाहिए। जिससे नए बनने वाले अण्डे सही तरह से विकसित होते है।
- प्रजनन कार्य के बाद ब्रुडर मछलियों को बीटाडीन या पोटेशियम परमेग्नेट के घोल में डुबोकर बड़े पालन रेसवे में डालना चाहिए, इस दौरान रेसवे में प्रवेश करने वाले पानी का बहाव समुचित मात्रा में उपलब्ध हो तथा रेसवे का नितल भी साफ रखना चाहिए।
- निषेचित अण्डों को यथासम्भव सीधे प्रकाश से दूर रखना चाहिए एवं प्रजनन कार्य भी कम से कम प्रकाश में करना चाहिए।
- निषेचन के 15–20 मिनट बाद अण्डों को अच्छे से धोकर सर्वधन ट्रे में रखा जाता है।
- निषेचन के लगभग एक घण्टे बाद सवर्धन ट्रे के सफेद पड़ गये अण्डो को उसी दिन बाहर कर देना चाहिए।
- हैचरी में अण्डे सवर्धन के दौरान विशेष सावधानी बरतनी चाहिए एवं नियमित रूप से खराब अण्डों को ट्रे से बाहर निकालते रहना चाहिए। इस प्रकार की कुछ सावधानियां अपनाकर अधिक ट्राउट बीज प्राप्त किया जा सकता है।

उपसंहार

अभ्यागत रेनवो ट्राउट मछली तीव्र बढ़वार मजबूत एवं शीतजल के 0–2 °C पानी के तापमान को सहने की क्षमता के चलते नियन्त्रित प्रक्षेत्रों में पालन हेतु अत्यन्त उपयोगी एवं लाभप्रद होती जा रही है। प्रचुर बहते हुए स्वच्छ जल की उपलब्धता के बाबजूद अनेक पर्वतीय कृषक ट्राउट बीज की सही उपलब्धता न होने के कारण इस व्यवसाय को नहीं अपना पाते हैं। ट्राउट प्रजनन एवं बीज उत्पादन की वैज्ञानिक जानकारी एवं इसके सही अनुपालन द्वारा न केवल रेनबो ट्राउट बीज की उपलब्धता सुलभ होगी बल्कि यह पहाड़ के ग्रामीण अंचलों में आय का एक सबल साधन बन सकता है।

अपने मिशन में कामयाब होने के लिए,
आपको अपने लक्ष्य के प्रति एकचित निष्ठावान
होना पड़ेगा।

–ऐ.पी.जे. अब्दुल कलाम

शीतजल मत्स्य बीज के आयात के दौरान रखी जाने वाली सावधानियाँ

सोहन सिंह, हरि कृष्णा एवं अमित पाण्डे
भा.कृ.अनु.परि.–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल

शीत जल से तात्पर्य ऐसे जल निकायों से है– जिनका तापमान आम तौर पर लगभग 10 से 15 डिग्री सेल्सियस होता है जो की ठंडे वातावरण में अनुकूलित मछली की विशिष्ट प्रजातियों के रहने हेतु अनुकूल होता है। ठंडे तापमान में घुलनशील ऑक्सीजन का स्तर अधिक होता है, जो शीतजल की मत्स्य प्रजातियों के लिए आवश्यक है। शीत जल की मत्स्य प्रजातियां जलीय पारिस्थितिक तंत्र में पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने में अहम् भूमिका निभाती है। शीतजल की मत्स्य प्रजातियों में प्रोटीन तथा ओमेगा–3 फैटी एसिड जैसे मूल्यवान स्रोत पाये जाते है, जो खाद्य सुरक्षा संबंधी समस्याओं को दूर करते हुए स्थायी रूप से पौष्टिक भोजन का उत्पादन करने में सहायता प्रदान करती है। शीतजल मत्स्य पालन में ट्राउट, साल्मन एवं शीतजल के अनुकूल विभिन्न मत्स्य प्रजातियाँ शामिल की जाती है। शीतजल की मत्स्य प्रजातियों के स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए मत्स्य पालन का प्रबंधन आवश्यक है, जिसमें मुख्यतः उनके वास स्थलों को संरक्षित करना, पानी की गुणवत्ता की जाँच व प्रदूषण नियंत्रण इत्यादि शामिल है। पर्यावरण में हो रहे परिवर्तन एवं अनियंत्रित मानव हस्तक्षेपों ने शीतजल मत्स्य प्रजातियों के अस्तित्व को खतरे में डाल दिया है, जिस कारण ये मत्स्य प्रजातियां विलुप्ति के कगार पे आ गई है तथा जो मत्स्य प्रजातियां है भी उनमें स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याऐ एवं पर्यावरण के अनुरूप न ढल पाने की समस्या उत्पन्न हो रही है। अतः उनके पुनर्वासन हेतु जैविक एवं शारीरिक रूप से स्वस्थ मछली के उन्नत बीजों के आयात की आवश्यकता पड़ती है, जो विकास दर, रोग प्रतिरोधक क्षमता के मामले में आनुवंशिक रूप से बेहतर होते हैं तथा जिनकी सहायता से स्थानीय शीतजल की मत्स्य प्रजातियों में प्राकृतिक एवं वैज्ञानिक क्रियाओ द्वारा आनुवंशिक विविधता एवं पर्यावरण के अनुसार ढलने की क्षमता पैदा की जा सकती है।

मत्स्य बीज के आयात का महत्व

आयातित मछली के बीज शोधकर्ताओं और संरक्षणवादियों को ठंडे पानी की विभिन्न मत्स्य प्रजातियों के जीव विज्ञान, व्यवहार और पारिस्थितिकी के अध्ययन समझने मैं भी काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। मछली के बीज आयात करने से प्राकृतिक जल निकायों में कम हो रही मछली की आबादी को पुनः स्थापित किया जा सकता है, जो अत्यधिक मछली पकड़ने, वास स्थलों के विनाश या पर्यावरणीय परिवर्तनों के कारण घट जाती है। मछली के बीज का आयात विभिन्न मत्स्य प्रजातियों के व्यवहार और विभिन्न वातावरणों के लिए उनकी उपयुक्तता को समझने में भी काफी सहायक सिद्ध होता है। उच्च गुणवत्ता वाले बीजों का आयात करने से मछली उत्पादन बढ़ाने तथा भोजन की बढ़ती मांग को पूरा करने में मदद मिलती है। मत्स्य बीज का आयात विशेषकर जलकृषि मे लगे किसानों को अपने स्टॉक में विविधता लाने, बाजार की माँगों को पूरा करने एव संभावित रूप से अपनी आय को बढ़ाने में सहायता प्रदान करता है।

मत्स्य बीजों के रखरखाव हेतु मुख्य बिंदु

- मत्स्य बीजों के रखरखाव में तापमान, पीएच, घुलित ऑक्सीजन और अमोनिया के स्तर जैसे जल गुणवत्ता मापदंडों की निगरानी कर उनके रखरखाव पर विशेष ध्यान देना चाहिए।
- नियमित रूप से पानी की जाँच कर सुनिश्चित करना चाहिए कि यह प्रदूषकों और विषाक्त पदार्थों से मुक्त हो।
- विशिष्ट प्रजातियों एवं उनके विकासात्मक अवस्था के लिए मत्स्य बीजों को उपयुक्त उचित और उच्च गुणवत्ता वाला आहार प्रदान करना चाहिए और जैसे–जैसे मछली के बीज बढ़ने लगे, उनकी आहार व्यवस्था को समायोजित करना चाहिए।
- मत्स्य बीजों के रखरखाव एवं नवीनतम प्रथाओं की जानकारी हेतु जलकृषि विशेषज्ञों व पंजीकृत संस्थाओ के संपर्क मे रहना चाहिए।

मत्स्य बीज के आयात की प्रक्रिया व उसमें रखी जाने वाली सावधानियाँ

- मत्स्य बीजो के आयात के संबंध में आयातक देश के नियमों और कानूनी आवश्यकताओं को सत्यापित कर उनका अनुपालन करना चाहिए। इसमें आवश्यक परमिट, प्रमाणपत्र प्राप्त करना और संगरोधन (Quarantine) प्रोटोकॉल का पालन करना आदि शामिल होना चाहिए व साथ ही यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि मत्स्य बीज निर्यातक देश में सक्षम प्राधिकारियों द्वारा जारी वैध स्वास्थ्य प्रमाणपत्र के साथ ही आये। यह प्रमाणपत्र मछलियों की स्वास्थ्य स्थिति की पुष्टि करता है और यह सुनिश्चित करता है कि वे बीमारियों से मुक्त हैं।
- मत्स्य बीजो के आगमन पर संगरोध प्रक्रियाएँ लागू करनी चाहिए। संगरोध मत्स्य बीजों के स्वास्थ्य की निगरानी करने, संभावित बीमारियों के प्रसार को रोकने और उन्हें स्थानीय जलीय वातावरण में स्थानांतरित करने से पहले की क्रिया है।
- संगरोध मत्स्य बीजों को परिस्थितियों के अनुकूल बनाने के साथ यह भी सुनिश्चित करता है की मत्स्य बीज अच्छी गुणवत्ता के हो तथा बीमारियों, परजीवियों या अन्य किसी भी असामान्य लक्षणों से मुक्त हो।
- पारगमन के दौरान मत्स्य बीजों में तनाव और मृत्यु दर को कम करने के लिए उचित परिवहन की व्यवस्था के साथ अन्य उपायों जैसे उपयुक्त तापमान, ऑक्सीजनेशन और पर्याप्त पैकेजिंग इत्यादि भी सुनिश्चित कर लेना चाहिए ।
- आयातित मत्स्य बीजों का सटीक रिकॉर्ड रखना चाहिए। इनमें मत्स्य प्रजातियों की उत्पत्ति और उनके लिए पूर्व में किये गए किसी भी उपचार या दवा के बारे में विस्तृत जानकारी शामिल होनी चाहिए।
- मत्स्य बीजों को स्थानीय पारिस्थितिक तंत्र में शामिल करने के बाद होने वाले संभावित पर्यावरणीय प्रभाव, प्रजातियों की अनुकूलता, आक्रमण का जोखिम और स्थानीय जैव विविधता जैसे तथ्यों का भी पूर्व मैं सटीक अध्ययन कर लेना चाहिए।
- बीमारियों की शुरूआत और प्रसार को रोकने के लिए जैव सुरक्षा उपायों को लागू करना चाहिए, इसमें उपकरण व अन्य सुविधाओं का उचित कीटाणुशोधन और अन्य स्वच्छता प्रथाओं आदि का पालन शामिल होना चाहिए।
- आयातित मत्स्य बीजों की निगरानी करनी चाहिए, नियमित निगरानी से किसी भी संभावित समस्या या बीमारी का शीघ्र पता लगाने व उसका त्वरित उपचार करने में मदद मिलती है।

इन सभी सावधानियों का परिश्रमपूर्वक पालन करने से मछली के बीज के आयात से जुड़े जोखिमों को काफी हद तक कम किया जा सकता हैं और साथ ही स्थानीय जलीय पारिस्थितिकी तंत्र की सुरक्षा करते हुए जलकृषि के सतत विकास को भी काफी हद तक सुनिश्चित किया जा सकता हैं।

संगरोधन

संगरोधन (Quarantine) विशेष रूप से मछली के बीज या किसी भी जीवित जीव के आयात के दौरान की जाने वाली एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। इसमें आयातित जीवों को एक निद्रिष्ट अवधि के लिए अलग करके उनकी निगरानी की जाती है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि वे स्थानीय वातावरण में जारी करने से पहले बीमारियों, परजीवियों या किसी अन्य संभावित हानिकारक एजेंटों से मुक्त हो। जलकृषि में, उन बीमारियों की शुरूआत को रोकने के लिए संगरोध प्रोटोकॉल महत्वपूर्ण हैं जो स्थानीय मत्स्य आबादी या पारिस्थितिकी तंत्र को नष्ट कर सकते हैं।

संगरोधन उपायों में आम तौर पर शामिल होता हैं

- **अलगावः** बीमारियों या परजीवियों के संभावित संचरण को रोकने के लिए आयातित मछली के बीजों को स्थानीय आबादी से अलग रखा जाता है।
- **स्वास्थ्य जांचः** बीमारियों या असामान्यताओं के किसी भी लक्षण का पता लगाने के लिए नियमित स्वास्थ्य मूल्यांकन और परीक्षण किए जाते है।

- **उपचारः** यदि किसी बीमारी या परजीवी का पता चलता है, तो उसका उचित उपचार कर स्थानीय जलकृषि में इस्तेमाल करने योग्य बनाया जा सकता है।
- **अवलोकन अवधिः** मत्स्य बीजों को एक निद्रिष्ट संगरोधन अवधि से गुजरना पड़ पड़ता है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि वह रोगमुक्त है।

भारत में, मत्स्य बीजों के लिए क्वारेंटाइन सुविधाएं आम तौर पर विशिष्ट क्षेत्रों में स्थापित की जाती है जो संगरोधन (Quarantine) प्रक्रिया को प्रभावी ढंग से चलाने में सक्षम होती हैं। संगरोधन सुविधाएं जैव सुरक्षा सुनिश्चित करने और स्थानीय जलीय वातावरण में बीमारियों या आक्रामक प्रजातियों के प्रसार को रोकने के साथ–साथ मत्स्य बीजों के आयात और बाद में स्थानीय स्तर पर उपयोग में लाने के प्रबंधन के लिए काफी उपयोगी सिद्ध होती हैं।

भारत में मत्स्य बीज संगरोधन की परिक्रिया की संचालन व्यवस्था निम्न कारको के माधयम से की जाती है

- **प्रमुख बंदरगाहः** देश में प्रवेश करने वाले आयातित मत्स्य बीजों के निरीक्षण और संगरोधन प्रक्रिया का प्रबंधन करने के लिए संगरोधन सुविधाएं प्रमुख बंदरगाहों के पास स्थित होती हैं।
- **जलकृषि क्षेत्रः** जलकृषि क्षेत्रों के भीतर या निकट विशेष मत्स्य बीज संगरोधन सुविधाएं होती हैं। ये क्षेत्र सुनिश्चित करते हैं कि खेती के लिए लाए गए मत्स्य बीजों को स्थानीय जल निकायों में छोड़े जाने से पहले संगरोधन परिक्रिया पूरी की जा चुकी हो।
- **मत्स्य पालन अनुसंधान संस्थान या केंद्रः** सरकारी मत्स्य अनुसंधान संस्थानों या केंद्रों में आयातित मछली के बीजों के निरीक्षण और संगरोधन के लिए सुसज्जित संगरोधन सुविधाएं होती हैं। ये संस्थान अनुसंधान, विकास एवं मत्स्य भंडार के स्वास्थ्य को सुनिश्चित करने में मुख्य भूमिका निभाते हैं।
- **सरकार द्वारा नामित सुविधाएंः** सरकार विभिन्न राज्यों में विशिष्ट संगरोध सुविधाएं स्थापित करती है जो मत्स्य बीज संगरोधन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए समर्पित होती हैं। ये सुविधाएं संगरोधन प्रक्रियाओं के लिए राष्ट्रीय दिशानिर्देशों एवं मानकों का समुचित पालन करती हैं।
- **राज्य जलकृषि विभागः** राज्य–स्तरीय जलकृषि विभाग या एजेंसियां मत्स्य बीज के आयात का प्रबंधन करने और क्षेत्रीय नियमों का अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए मत्स्य बीज संगरोधन सुविधाएं संचालित करती हैं।

आयातित मत्स्य बीजों से होने वाला लाभ काफी हद तक ऐहतियाती उपायों और नियमों के सख्त पालन पर निर्भर करता हैं। पर्याप्त सावधानियां लागू न करने से कई समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं, जिनमें बीमारियों का प्रसार, आनुवंशिक समस्याएं और नकारात्मक पर्यावरणीय प्रभाव शामिल हैं इसलिए, मत्स्य बीज आयात में कड़े प्रोटोकॉल और निरीक्षण सुनिश्चित करना अति आवश्यक है।

संगरोधन से होने वाले लाभ

- **स्वास्थ्य की निगरानीः** संगरोधन के माध्यम् से मत्स्य बीजों के स्वास्थ्य और स्थिति की बारीकी से जानकारी प्राप्त की जा सकती है। किसी भी प्रकार की बीमारी, तनाव या असामान्यताओं के लक्षण को पहचानकर तुरंत उपचार किया जा सकता है, जिससे अन्य जलीय जीवों में बीमारी फैलने का खतरा कम हो जाता है।
- **आनुवंशिक शुद्धता और गुणवत्ता नियंत्रणः** संगरोधन मत्स्य बीजों की आनुवंशिक शुद्धता और गुणवत्ता की जानकारी प्रदान करता है, जिससे प्रजनन उद्देश्यों के लिए स्वस्थ और आनुवंशिक रूप से स्वस्थ मछली का चयन किया जा सके।
- **पर्यावरणीय अनुकूलनः** संगरोधन अवधि के दौरान, मत्स्य बीज अपने नए वातावरण की जल स्थिति के अनुकूल तैयार हो जाते हैं, जिन्हे की बाद में पानी के बड़े निकायों में स्थानांतरित किया जा सकता है।

- **अनुसंधान एवं विकास:** संगरोधन सुविधाएं अक्सर अनुसंधान एवं विकास केंद्रों के रूप में काम करती हैं। जहां वैज्ञानिक विभिन्न मत्स्य प्रजातियों के व्यवहार, विकास पैटर्न और विशिष्ट आवश्यकताओं का अध्ययन करते हैं। बाद मे इस जानकारी का उपयोग जलकृषि प्रथाओं में सुधार लाने और बेहतर प्रजनन तकनीक को विकसित करने के लिए किया जा सकता है।
- **नियामक अनुपालन:** प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र में मत्स्य बीजों को नियंत्रित करने के कठोर नियम होत हैं तथा संगरोधन इन नियमों का अनुपालन सुनिश्चित करने में मदद करता है, जिससे आक्रामक प्रजातियों के आने या मौजूदा पारिस्थितिक तंत्र के संतुलन को बाधित करने का जोखिम कम हो जाता है।

आयातित मत्स्य बीजों का संगरोधन न करने से होने वाले नुकसान

- **रोग संचरण:** संगरोधन बीमारियों की पहचान करने तथा उनके प्रसार को रोकने में मदद करता है। संगरोधन के बिना, अन्य मत्स्य प्रजातियों में बीमारियों या परजीवियों के प्रवेश का जोखिम होता है, जिससे व्यापक संक्रमण हो सकता है और संभावित रूप से पूरी मत्स्य आबादी नष्ट हो सकती है। अज्ञात बीमारियों के संक्रमण से मछलियों के समग्र विकास मे बाधा उत्पन्न हो सकती है। उनकी प्रजनन क्षमता कम होने के साथ साथ मृत्यु दर में वृद्धि हो सकती है।
- **आर्थिक नुकसान:** बीमारी के प्रकोप से मत्स्य फार्मों या जलीकृषि कार्यों को महत्वपूर्ण आर्थिक नुकसान हो सकता है।
- **पर्यावरणीय प्रभाव:** उचित संगरोधन के बिना संक्रमित मछलियों को प्राकृतिक जल निकायों में छोड़ने से बीमारियों और परजीवियों का प्रसार हो सकता है, जो संभावित रूप से पारिस्थितिकी तंत्र के पारिस्थितिक संतुलन को बाधित कर सकता है।
- **कानूनी निहितार्थ:** कई क्षेत्रों में, बीमारियों के प्रसार को रोकने के लिए जलीय प्रजातियों के आयात और संचलन के संबंध में कठोर नियम हैं। इन संगरोधन नियमों का पालन न करने पर कानूनी कार्यवाही अथवा जुर्माना हो सकता है। कुल मिलाकर, संगरोधन मत्स्य भंडार के स्वास्थ्य को सुनिश्चित करने, पारिस्थितिक तंत्र की रक्षा करने एवं मत्स्य पालन कार्यों की स्थिरता को बनाए रखने के लिए एक निवारक उपाय के रूप में कार्य करता है।

जलकृषि में मत्स्य बीजों का आयात विभिन्न कारकों के आधार पर लाभप्रद और चुनौतीपूर्ण दोनों हो सकता है। मत्स्य बीजों का आयात विविध प्रजातियों, आनुवंशिक विविधताओं और बेहतर विकास दर को पेश करने की अनुमति देता है, जो जलकृषि कार्यों की उत्पादकता और लाभप्रदता को बढ़ा सकता है। यह स्थानीय उत्पादन में कमी या अंतराल को संबोधित करने में भी मदद करता है, खासकर जब कुछ प्रजातियां आसानी से उपलब्ध नहीं होती हैं या जब प्रजनन उद्देश्यों के लिए विशिष्ट आनुवंशिक लक्षणों की आवश्यक होती हैं।

अंतिम निष्कर्ष निकालने से पूर्व आयातित मत्स्य बीजों के प्रति एक संतुलित दृष्टिकोण अति आवश्यक है।कठोर जैव सुरक्षा उपायों को लागू करने, जिम्मेदार व्यापार प्रथाओं का समर्थन करने और अंतर्राष्ट्रीय नियमों का पालन सुनिश्चित करने के साथ साथ स्थानीय सरकारों और जलकृषि उद्योगों को भी पर्यावरण और घरेलू जलकृषि की सुरक्षा के लिए मत्स्य बीजों के आयात के दौरान होने वाली समस्याओं के उपाय के लिए सहयोग करना चाहिए।

पर्वतीय क्षेत्र में मछली पकड़ने के उपकरण

आर.एस. पतियाल, पार्थ दास एवं राजेश एम.
भा.कृ.अनु.परि.–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल

प्रस्तावना

हिन्दू पौराणिक कथाओं के अनुसार भगवान विष्णु ने मत्स्य का रूप धारण करके पृथ्वी की रक्षा की। इतना ही नहीं मछली और मानव का रिश्ता प्राचीन काल से है। कहीं सुन्दर नैनों वाली स्त्री को मीनाक्षी कहा जाता है तो कहीं मछली को देखना भी शुभ माना जाता है। तुलसीदास जी रामचरित मानस में लिखते है कि भगवान राम की बारात ने जब अयोध्या से जनकपुर की ओर प्रस्थान किया तो सभी प्राकृतिक शुभ संकेत मिल रहे हैं जिनमें मछली का दिखना भी एक है। मछली और मानव का अत्यन्त पुराना रिश्ता है इसे नकारा नहीं जा सकता मछली के पोषक गुण किसी से छिपे नहीं है। आधुनिक युग में मछली एक भोजन ही नहीं अपितु एक उद्योग के रूप में उभर कर आया है जो कि भारत की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। उद्योग का ग्लैमर व्यवसायियों तथा अनुसंधान कर्ताओं को भी भा गया कि कैसे उन्नत किस्म के यंत्र बनायें जिससे कि अधिकाधिक मछलियां पकड़ी जा सकें। प्रौद्योगिकी की प्रगति के साथ समय –समय पर ऐसी विभिन्न प्रकार की तकनीकों का विकास किया गया, जिसमें मुख्य रूप से ऐसे नाव और जाल जिनसे वे कम समय में ज्यादा क्षेत्र का दोहन कर अधिक मुनाफा कमाया जा सकें। इस प्रकार की विधियों में ट्रोलिंग एवं पर्ससिनिंग मुख्य थे। समय के प्रवाह और अधिक बचत के लोभ के कारण अधिकाधिक यांत्रिकृत क्रियाशील का मत्स्य प्रगहण यन्त्रों का विकास, मत्स्योत्पादन में एक क्रान्ति तो लाया परन्तु जल संसाधनों की जैव विविधता को एक अप्रत्याशित क्षति पहुॅचा गया। सामान्यतः मत्स्य प्रग्रहण यन्त्र दो प्रकार के होते है–क्रियाशील एवं स्थिर। क्रियाशील यन्त्रों का अभिप्राय मछलियों को घेरकर जबरदस्ती पकड़ना तथा स्थिर प्रग्रहण यन्त्रों के उपयोग से मछली को चकमा देकर उसी से गलती कराकर पकड़ना । इस अध्याय मे पर्वतीय क्षेत्रों मे प्रयुक्त होने वाले मत्स्य प्रग्रहण यन्त्रों के विषय ने विस्तार से चर्चा कि गयी है।

1. फॉसा जाल (Gill Net)

फांसी जाल एक आयताकार जाल होता है, जिसको फ्लोट और सिंकर की सहायता से पानी में एक दीवार के रूप में लगा देते है। इन जालों को बनाने में इस प्रकार का धागा उपयोग में लाया जाता है कि जिससे यह पानी में मछली की नजर में न आये और मछली उस रास्ते से यदि जाये तो उसके गलफड़ों में धागा अटक जाये। यह क्रिया गिलिंग कहलाती है और यदि मछली के मूवमेंट के दौरान यदि मछली के गलफड़े को छोड़कर कोई भी अंग जैसे फिन, पूँछ इत्यादि अटक जाये तो ऐसी क्रिया को एनटेंगलिंग कहते है। कार्य विधि के आधार पर गिलनेट (क्लोम जाल) की तीन भागों में वर्गीकृत किया गया है।

क. **चलायमान फांसी जालः** इस प्रकार के जाल अधिकतर प्रवाही जल संसाधनों में उपयोग किये जाते है। जालों को पानी के बहाव के साथ छोड़ दिया जाता है जबकि मछलियां धार से उल्टी दिशा में गति करती है। इस प्रकार के जालों में फ्लोट की संख्या अधिक रखी जाती है और सिंकर कम या बिलकुल नहीं इस प्रकार के जाल भारतीय नदियों में उपयोग किये जाते है।

ख. **स्थिर फांसी जालः** इस तरह के जालों को किसी भी स्थान पर प्रयोग किया जा सकता है परन्तु जाल में प्रयुक्त पदार्थ तथा फ्लोर एवं सिंकर की संख्या भिन्न हो सकती है। जाल की तली में,बीच में और सतह में स्थिर किया जा सकता है।

ग. **घेराव फांसी जालः** इस विधि में जाल को विशेषकर उथले पानी में गोल धारे में स्थिर करके बीच में पानी को जोर से डालकर मछलियों को डराया जाता है जिससे वो वहां से भागे और जाल में फंस जायें इस तरह की विधियॉ जलाशयों तथा नदियों में प्रचलित है।

घ. **तीन तड़िया जालः** इस तरह के जाल में तीन तह होती है बाहरी दो तह बड़े कणाकार वाली

तथा मीटरी तह छोटे कणाकार की होती है जिसे लिंट कहते है। मछली जब बड़े गण से निकलकर भागने का प्रयास करती है तो छोटे कण वाली तह में पिटकर दूसरी बड़े कण वाली तह से अटक जाती है। इस तरह के फांसी जाल से उपज तो अधिक आती है परन्तु इन जालों को बनाने मे अधिक लागत आती है और जांल से फंसी मछलियां निकालने में दुविधा के कारण ये जाल इतना ज्यादा प्रचलन में नहीं हैं।

2. मछली पिंजरा

लकड़ी, बांस की खयंये, लोहे के सरियों और प्लास्टिक से मछली के पिंजरे बनाये जाते है। इन पिंजरों में मछली घुस तो सकती है परन्तु निकलने का कोई रास्ता नहीं होता। मछली या तो पिंजरे में रखे लुभावक के लालच में या पिंजरे मे शरण पाने के लिए घुसती है। वैसे भिन्न प्रकार की मछलियों को लुभाने के लिए विभिन्न पिंजरों का प्रयोग किया जाता है। इस विधि का प्रयोग ग्रामीण तालाबों में किया जाता है।

3. कांटा डोर

कांटा डोर मछली,पकड़ने की अत्यन्त प्राचीन पद्वति है। जिसमें काटा एक लुभावक से ढ़क दिया जाता है और जब मछली चारा खाने आती है तो स्वयं भी फंसकर रह जाती है। कांटाडोर का उपयोग या तो छोटे स्तर पर हाथ से मछली पकड़ने के लिए होता है या एक लम्बी डोर को ब्रांचलाईन से हुक जोड़कर उससे लुभावक लगा देते है। पर्वतीय क्षेत्रों में यह विधि बहुयायत प्रचलित है।

क्रियाशील बनाये स्थिर मत्स्य प्रगहण विधियाँ

	स्थिर		क्रियाशील
1.	कम लागत पर तैयार किये जा सकते है। जो आम मछुवारे की पहुॅच में आते है।	1.	बहुत मॅहंगे होते है।
2.	जल संसाधनों की जैवविविधता को स्थिर रखते है।	2.	जैव विविधता को नुकसान पहुॅचाते है।
3.	कार्य की गति सीमित होती है।	3.	कार्य गति कार्य के अनुसार होता है।
4.	मानवीय काम का उपयोग होता है।	4.	ईधन का उपयोग किया जाता है।

निष्कर्ष

स्थिर मत्स्य प्रग्रहण के यंत्रों से मछलियों को उनकी जैविक क्रियाओं के अध्ययनों के आधार पर उन्हीं के द्वारा गलती करा पर पकड़ा जाता है। सामान्यतः स्थिर यंत्र चयनित प्रकृति के होते है इसलिए इनका उपयोग जल संसाधनो के समुचित उपयोग के साथ–साथ उनकी जैव विविधता का कायम रखने में भी सहायक होता है। अन्ततः आर्थिक दृष्टि से ये जाल आम मछुवारों की पहुॅच में आते है जो कि प्रौद्योगिकी विकास का मुख्य उद्देश्य है। समय आ गया है, जब क्रियाशील प्रग्रहण यन्त्रों की संख्या पर लगातार स्थिर मत्स्य प्रग्रहण यन्त्रों को प्रोत्साहित किया जाये।

हिमालयी क्षेत्रों में मत्स्य उत्पादन बढ़ाने का एक सशक्त माध्यम - पिंजरा (केज) पालन

सुरेश चन्द्रा
भाकृअनुप–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल

विश्व के प्रत्येक देश की पहली प्राथमिकता अपने नागरिकों की खाद्य सुरक्षा को सुदृढ और सुनिश्चित करना है। जोउस देश की विकास यात्रा और आम लोगो की खुशहाली का मार्ग प्रशसत करती है। सुनिश्चित करने के लिए सबसे प्रमुख और आमूल जरूरत देशवासियो की खाद्य सुरक्षा होती है जो यह दर्शाती है कि मानव जीवन की सबसे बड़ी चुनौती में से एक भोजन है। विश्व जनसंख्या जहॉ 8 अरब हो गयी है वही भारत भी लगभग एक सौ चालीस करोड़ की जनसंख्या के साथ सबसे अधिक आबादी वाला देश बनने जा रहा हैं। इतने विशाल देश को गुणवत्ता युक्त भोजन उपलब्ध कराना विशेषकर जलवायु परिवर्तन के इस युग में अत्यन्त चुनौतीपूर्ण कार्य है।नवीनतम तकनीकों के सामन्जस्य के साथ खेती ही वर्तमान में इसका एक उपाय है। पिछले लगभग 6–7 दशकों से कृषि के साथ जलीय संसाधनों का उपयोग भी देश में बड़ा है और मत्स्य पालन इसमें एक प्रमुख भूमिका निभा रहा है। पर्वतीय राज्यों में भी मछली पालन बड़े स्तर पर अपनाया जाने लगा है।

हिमालयी क्षेत्र को एशिया का जल बैंक भी कहा जाता है। जिसका प्रमुख कारण उपस्थित अनेक ग्लेशियर, नदियॉ, धारायें,उच्च मध्य एवं घाटियों में उपस्थित प्राकृतिक झीलें और मानव निर्मित जलाश्यों की प्रचुर उपस्थिति है। इन जलीय संसाधनों एवं में बहुत मत्स्य संपदा, मात्स्यिकी और मत्स्य पालन विकास एवं प्रसार की अनेक सम्भावनाओं को दर्शाती है। पर्वतीय क्षेत्रों की भौगोलिक बनावट और सीमित संसाधनों के साथ बढ़ती हुई मछली की मॉग को पूरा करने के प्रयासों के तहत केज फार्मिंग एक उभरता हुआ सशक्त माध्यम के रूप में पूरे देश में स्थापित देश में हो रहा है। इसे मत्स्य पालन के भविष्य की तकनीक से भी जाना जाता है। पर्वतीय राज्यों में 46956 किमी. लम्बी नदियों के अलावा 2. 15 लाख हेक्टेअर क्षेत्र में फैली प्राकृतिक और मानव निर्मित झीलें और जलाशय उपलब्ध है। इनमें जम्मू कश्मीर लगभग 71.53%. हिमाचल प्रदेश 16.45% , उत्तराखण्ड 9.97%, अरूणाचल प्रदेश 1.30% और सिक्किम 0.73% जलीय संसाधनों का योगदान करते है। ऐसा पाया गया है कि इतने प्रचुर जलीय संसाधनों की उपस्थिति के बावजूद भी मत्स्य पालन हेतु लगभग 2% जलीय संसाधन उपयोग में आ रहे है। यघपि इतने कम क्षेत्रफल होने के पिछे विद्यमान प्राकृतिक एवं पहाड़ो की संरचना भी है। परन्तु इन सबके बावजूद बढ़ती जनसंख्या के साथ स्थलीय दबाव को कम करने के लिये प्रकृति प्रदत्त इन जलीय संसाधनों के कारण और विवेकपूर्ण वैज्ञानिक उपयोग द्वारा पर्वतीय अंचलों में रहने वाले किसानों की आजीविका सुधार कर जीवन में खुशहाली का मार्ग प्रसस्त किया जा सकता है। वर्तमान में जनसंख्या वृद्वि, बढ़ता आर्थिक विकास और आम आदमी में स्वास्थ्य उपयोगी खाद्यों के प्रति बढ़ती जागरूकता से ऐसा अनुमान किया गया है कि आने वाले समय में मछली की मॉग वर्तमान के उत्पादन से कई गुना अधिक होगी। जगह के लिये बढ़ती प्रतिस्पर्धा के चलते एक्वाकलचर से जुड़े लोगों के लिए यह एक बड़ी समस्या है इसके साथ समुद्री उत्पादन में आती स्थिरता से अर्न्तदेशीय जलीय संसाधनों का मत्स्य पालन हेतु उपयोग काफी हद तक बढ़ती मॉग को पूरा करने में सहायक हो सकता है। जिसमें उत्पादन एवं आमदनी दोनों में वृद्वि हो सके। इसके चलते खुले जलक्षेत्रों में पिंजरा पालन वर्तमान में लोकप्रिय एवं जलाशयों के पास रहने वाले कृषकों के लिए प्रमुख आजिविका के उत्तम साधन के रूप में स्थापित हो रहा है। यद्यपि भारत में कुल 35 लाख हेक्टेयर जल क्षेत्र से अधिक में फैले लगभग 19400, जलाशय उपलब्ध है। इनके उचित उपयोग से सकल मत्स्य उत्पादन में आशातीत वृद्वि की जा सकती है।

पिजरों में मत्स्य पालन के लाभ

- उपलब्ध बड़े जलाशयों का मत्स्य पालन हेतु उपयोग
- अर्न्तस्थलीय संसाधनों पर दबाव कम करने में सहायक

- उच्चतम मत्स्य उत्पादन एक छोटे से नियंत्रित परिवेश में प्राप्त हो जाता है
- जलाशय के प्राकृतिक परिवेश और दिये जाने वाले भोजन के सही चक्रीयकरण से अधिकतम मत्स्य पालन प्राप्त हो जाता है।
- पिंजरो का उपयोग बड़ी मत्स्य अंगुलिकाओं के उत्पादन में सहायक होकर मत्स्य बीज की उपलब्धता आसान हो जाती हैं
- पिंजरो की देखभाल और नियंत्रण आसान है भोजन और संचित की हुई मछलियों की देखभाल प्रभावी रूप से की जा सकती है
- स्वदेशी मछलियों के संवर्धन हेतु प्राकृतिक आवास उपलब्ध हो जाता है
- स्थानीय स्तर पर रोजगार का सृजन

पिजरों में पालन का विश्व परिदृश्य

जलीय क्षेत्रों में पिंजरा एक चारों तरफ से जॉल या बास से ढका हुआ क्षेत्र है जिसमें मछलियों का संवर्धन किया जाता हैं। केज या पिंजरा जीवपालन दक्षिणी पूर्व एशिया के देशों में सर्वप्रथम कमपूचिया में लगभग वर्ष 1900 से पहले जहॉ मछुवारे झीलों के किनारे टोकरी या जालों में क्लेरियस नामक मांगुर मछली को रखते थे, और जब परिवहन हेतु तैयार हो जाए तो निकाल लेते थे। इसी तरह 1922 में इण्डोनेशिया में बॉस के पिंजरों में खुली जगहो से पकड़े गये फ्राई को संचय किया जाता था। इस तरह यह धीरे–धीरे वियतनाम, थाईलैण्ड, पश्चिमी सुमात्रा आदि देशों में फैल गया है। इसके साथ यूरोप,एशिया, अफ्रीका, अमेरिका आदि। के देशों में भी वर्तमान में फैल चुका है। सालमन मछलियों को पिजरो में पालने के तहत नार्वे में इसका विकास बहुत तेजी से हुआ। विश्व स्तर पर नार्वे, चिली, यूके, जापान, वियतनाम, कनाडा, तुर्की एवं फिलिपिन्स जैसे देशों में पिंजरा पालन द्वारा 2–3% तक मत्स्य उत्पादन प्राप्त किया जाता है। इसी तरह कनाडा में वर्ष 2004 तक 70% अर्न्तस्थलीय मत्स्य उत्पादन पिंजरे से प्राप्त किया जाता है और 80–90% तक समुद्री उत्पादन का पिंजरो में किया जाता है यह इस पद्वति के महत्व को दर्शाती है। कुल 40 परिवार की 80 प्रजातियॉ की मछलियॉ पिंजरों में पाली जाती है। सालमोनिडी जिसमें 66% प्रतिशत तक की भागेदारी करती है। 51% सालमो सलार, 27% रेन्बोट्राउट, पन्गेशियस, तिलापिया आदि प्रजातियॉ है। लगभग 90% तक पिंजरा पालन में प्राप्त होने वाले मत्स्य उत्पादन में आठ प्रजातियॉ प्रमुख भूमिका निभाती है।

पिंजरों में पालन की चुनौतियाँ

- केज से निकलने वाले मछलियों के अपवर्ज पदार्थों द्वारा आस–पास के जलीय परिवेश के जलीय पारिस्थिकी तंत्र के खराब होने की संभावनाए हो सकती है।
- प्रयोग किये जाने वाले खाद्य का बचा बिना उपयोग खाद्य सीधे जलीय परिवेश में मिल जाने से जलीय परिवेश पर प्रभाव के साथ अधिक खर्च होने की सम्भावना रहती है।
- पिंजरों के जालों में जैवदूषकों (जैव फाउलिंग) की समस्या परिचालन की एक महत्वपूर्ण चुनौती के रूप में उपस्थित होती है।
- मछलियों में होने वाली बीमारियों का फैलाव तीव्र और ज्यादा होता है, क्योंकि एक ज्यादा संख्या में बहुत अधिक मछलियॉ एक सीमित क्षेत्र में रखी रहती है और बीमारियों का भी खतरा रहता है।
- संचित मछलियों की बाहर के जलीय क्षेत्रों में कूदकर निकलने की संभावना रहती है,जिनमें जलीय क्षेत्र की मत्स्य संपदा पर प्रभाव पड़ने की आंशका रहती है।
- चूंकि बड़े जलक्षेत्र अनेक तरह की संस्थाओं द्वारा नियत्रित होते है, अतः उनमें आपसी तालमेल बैठाना भी एक चुनौतीपूर्ण कार्य रहता है।

भारत में पिंजरों में मत्स्य पालन

भारत में पिंजरा पालन की शुरूआत 1970 के दशक में हुई जिनमें हवा में सॉस लेने वाली मछलियों को पिंजरों में पालन किया गया। वर्तमान में झारखण्ड और छत्तीसगढ़ में जलाशयों में पिंजरों

से उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्वि प्राप्त की है। पिंजरो के लिये नाइलॉन,प्लास्टिक,पालीथीन,स्टील गैस तैरते हुए पिंजरे ज्यादा उपयोग में आते है। पिंजरे में मत्स्य पालन द्वारा जलाशयों के मत्स्य उत्पादन को कई गुना तक बढ़ाया जा सकता हैं। देश में झारखण्ड, छत्तीसगढ़,ओडिशा, महाराष्ट्र और गुजरात ने मिलकर लगभग 80% पिंजरे उपलब्ध है। अनुमानों अनुसार अकेले झारखण्ड राज्य में लगभग 6000 पिंजरो में मत्स्य उत्पादन किया जा रहा है। देश में करीब 15,000 पिंजरों का उपयोग मछली पालन के उपयोग हेतु किया जा रहा है जिनकी संख्या दिनों दिन बढ़ रही है, और लगभग 16–17% उत्पादन जलाशयों के पिंजरों से प्राप्त हो रहा है। पिंजरा मत्स्य पालन में चारों तरफ से जाल से घिरी जगह जिसमें नियमित जगह में मछलियॉं रखी जाती है और पानी का बहाव रहता है।यद्यपि कार्प प्रजातियॉं पिंजरा पालन में ज्यादा उपयोगी नहीं पायी गयी है लेकिन इनके उचित रख–रखाव, भोजन आदि का मानकीकरण करने से आने वाले वर्षो में इनका भी बाजार की मॉंग अनुसार पालन किया जा सकता है।

भीमताल में डी.सी.एफ.आर. द्वारा स्थापित केज

केजों में उत्पादित कार्प अंगुलिकाएं

पिंजरो का परिवेश पर असर जानने के लिए आक्सीजन,पीएच. कार्बन डाइआक्साइड ,एल्कैलिटी फास्फोरस एवं कुल नाइट्रोजन की एक निश्चित समय अन्तराल पर नियमित रूप से जॉंच आवश्यक है। कुल जलाशय के क्षेत्रफल का 0.6–1.2% तक में केज यूनिटें स्थापित करना उपयुक्त है। पंगेशियस के फ्राई से अंगुलिकाओं 2 (माह) यानि फिंगरलिंग उत्पादन के लिए 500–700 की संख्या में 20–30 मिलीमीटर आकार की प्रति क्यूबिक मीटर संचय कर सकते है, और बड़े टेबिल आकार मछली उत्पादन के लिए 60–100 (50–70 मिमी.) की संख्या प्रति क्यूबिक मीटर संचय कर 6–8 माह में निकाल कर बिक्री की जा सकती है। जिसमें 30–50 किग्रा/प्रति क्यूबिक भी उत्पादन प्राप्त हो जाता है।50 मी. की संख्या में पंगेशियस संचय से लगभग 40–50 किग्रा/मी.^{3} उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। पिंजरे गोल या आयताकार होते है। जलाशयों में दोनों ही तरह के पिंजरे उपयोग किये जाते है। एक आदर्श रूप में बड़ी मछलियों के पालन के लिए 6x4x4 मी. के पिंजरे प्रयोग किये जाते है। छोटे फ्राई या बीज संवर्धन के लिए 2x2x2 मी. ज्यादा उपयुक्त होते है। इन्हें बैटरी के रूप में 6 या 12 या 24 की संख्या में कैटरपिलर के आकार में स्थापित किया जाता है।कुल केजों के 25–30% का क्षेत्रफल बीज उत्पादन के प्रयोग हेतु किया जाता है।

पिंजरों में पाली जानें वाली प्रजातियॉं

रेन्बो ट्राउट, पैगेशियस, मंरल, ओस्टोब्रहम विलगरी, कैट फिश की प्रजातियॉं तिलापिया, महाशीर, सैराना, लेबियो वाटा,यून्टियस झींगा, एनावस टैस्टडिनियस, लेबियो डिरो, लेबियो डाइचैलस, लेबियो रोहिता, कामन कार्प, ग्रास कार्प, सिल्वर कार्प

शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल द्वारा केजों में मत्स्य पालन के प्रयास

शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय ने भीमताल स्थित एक 47 हे. के प्राकृतिक जलाशय में प्रदर्शन यूनिट के रूप में 32 यूनिटो की केज ईकाई स्थापित की गयी है। इसमें 16 यूनिट बड़े मछली का उत्पादन जिनका आकार 5 x 5 x 4 मी. में किया जाता है। इसी तरह 16 यूनिट 2 x 2 x 2 मी.

की है जिनमें विभिन्न प्रजातियों का मत्स्य बीज संचय किया जाता है। यह मत्स्य बीज स्थानीय कृषकों को वितरित किया जाता है। वर्ष 2023–24 में लगभग 50,000 अंगुलिकाएं 230 मत्स्य कृषकों को संचय हेतु उपलब्ध करायी गयी।

केजों में मछलियों की देखभाल

बृहद् केज यूनिट

केज यूनिटे कैटपिलर की संरचना में स्थापित की गयी है, और ऐसे स्थान पर स्थापित की गयी है जहां वायु वेग का असर कम पड़ता है और जल क्षेत्र की गहराई 10 मी. से अधिक होती हैं। यद्यपि बड़े 1000 हे. से अधिक वाले जलक्षेत्र उपयुक्त माने जाते है। यह भी ध्यान दिया जाता है फास्फोरस और कुल नाइट्रोजन की मात्रा 0.2 मिग्रा/ली तथा 1. 2 मिग्रा/ली से कम हो तथा उपयोग किये जाने वाले जाल अच्छी गुणवत्ता के एचडीपीई के बिना गॉठ वाले 3–6 मिमी मोटाई के एवं संचय किये जाने मत्स्य अवस्थानुसार 10–20 मिमी गैस साईज 30–40 मिमी. मेस साइज के प्रयोग किये जाते है।

पहाड़ों में मत्स्य पालकों को सुगमता से बड़े आकार की अंगुलिकाओं की आपूर्ति सुनिशिचित करने, एवं स्थानीय महत्वपूर्ण मत्स्य प्रजातियों के संरक्षण एवं संवर्धन,तथा प्रक्षेत्र स्तर के शोध कार्य एवं केज पालन के बारे में स्थानीय लोगों में फैलाने के उद्देश्य से अधिक से अधिक जानकारी उपलब्ध कराने के उद्देश्य से डी.सी.एफ.आर. ने इन केज यूनिटों की स्थापना एक प्रदर्शन यूनिट के रूप में की गयी है। भीमताल स्थित केज के एक 2 वर्ग मी. केज यूनिट से 3,000–5,000 तीन–चार माह में बड़ी फ्राई का उत्पादन आसानी से किया जा सकता है और रू. 2,000–2,500 तक शुद्व आमदनी अर्जित की जा सकती है। कुल कम से कम 12 यूनिट में बीज उत्पादन से केज से रू. 24,000–30,000 की कुल आय 3–4 महिने में आर्जित की जा सकती है केज की विशेषता प्राकृतिक जलीय गुणवत्ता का संवर्धन हेतु मिलना है।

इसी तरह 5 x 5 x 4 मी. की एक केज में बड़े आकार की कार्प अंगुलिकायें (कामन और ग्रास कार्प) 400–500 तक संचित की जाती है। एक वर्ष में नियमित साफ–सफाई ,तैरने वाले मत्स्य आहार के प्रयोग से कामन कार्प मछलियॉ 350–500 तक वजन प्राप्त कर लेती है, जिसमें 150– 200 किग्रा. तक कुल उत्पादन हो जाता है। जिससे 40–50,000 की कुल आय प्राप्त हो जाती है एवं रू. 20–35,000 तक की शुद्व आय अर्जित की जा सकती है। पर्वतीय ॲचलों में यद्यपि कम तापमान के चलते उत्पादन थोड़ा कम होता है। लेकिन कार्प प्रजातियॉ रू. 250–300 / किग्रा. के हिसाब से आसानी से बाजार में विक्रय हो जाती है। इन केजों का उपयोग साइजोथोरेक्स (असेला), महाशीर आदि के संवर्धन में उपयोग हो रहा है।

उत्तराखण्ड राज्य में स्थित उपलब्ध जलाशयों से मत्स्य उत्पादन की क्षमता

भारत के उत्तरी भाग में स्थित उत्तराखंड राज्य एक खूबसूरत पहाड़ी राज्य है। यह अपने समृद्ध संस्कृति लुभावने परिदृश्य, और विविध वनस्पतियों और जीवों के लिए जाना जाता है। राज्य की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में मछली पालन एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह ग्रामीण लोगों को आजीविका का एक स्रोत प्रदान और पोषण सुरक्षा में योगदान देता है। मछली पालन राज्य के पर्यटन उद्योग को भी लाभ पहुंचाता है, उत्तराखंड में मछली पालन में काफी संभावनाएं हैं। सरकार के निरंतर प्रयासों और किसानों की कड़ी मेहनत से आने वाले वर्षों में मछली उत्पादन और निर्यात में और वृद्धि हो सकती है।

उत्तराखण्ड राज्य में लगभग 2700 किमी. में नदियाँ बहती है। 24200 से अधिक हेक्टेअर में फैले जलाशय 297 है में उपस्थित झीलें एवं क्षेत्रफल में फैला रेसवे,तालाब उपस्थित है। भागीरथी नदी समिति टिहरी डैम जिसकी ऊँचाई 260.5 मी.है। भारत का सबसे लम्बा जलाशय है और विश्व में 12 स्थान पर आता है। समुद्र सतह से ऊँचाई 1700 भी है,और जिसके सतह का क्षेत्रफल 52 वर्ग किमी. में फैला है। यह जलाशय भी पिंजरा पालन के विस्तार के लिए अत्यन्त उपयोगी हो सकता है,चूंकि ऐसा स्थान जहाँ बाहरी हस्तक्षेप एवं हवा की तीव्रता कम रहे वहां तैरते केजों को स्थापित किया जा सकता है। भारत सरकार के नियमोंनुसार ऐसी जगह जहाँ गहराई 10 मी. से अधिक हो एवं जलाशय के कुल क्षेत्रफल के 1% तक पिंजरा पालन में उपयोग में लाया जा सकता है। उपयोग की जाने वाली मत्स्य प्रजाति का चयन पहले के अनुभवों एवं बाजार मांगनुसार किया जा सकता है। राज्य सरकार द्वारा उपयुक्त जलाशयों को चिन्हित कर पिंजरा पालन हेतु उपयोग किया जा सकता है। चूंकि पर्वतीय क्षेत्र में मत्स्य उत्पादन जल के कम तापमान और भौगोलिक कारणों से शामिल क्षेत्रों और कम सघनीकरण वाली पालन पद्वतियाँ ही द्वारा किया जाता हैं।ऐसे में मैंदानी जनपदों में उपलब्ध जलाशयों के उचित प्रयोग से उत्तराखण्ड में मत्स्य उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि अर्जित की जा सकती है। इसी तरह टिहरी में अच्छी प्रजाति चयन द्वारा भी अपेक्षित मछली उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

उत्तराखण्ड की प्रमुख नदियाँ

क्र.सं.	नदी का नाम	कुल लम्बाई (किमी.)	प्रभावी लम्बाई (किमी.)
1.	अलकनन्दा	720	187
2.	भागीरथी	561	189
3.	गंगा	553	179
4.	गोरी गंगा	248	96
5.	काली	343	235
6.	कोसी	247	121
7.	मदांकनी	142	62
8.	लदिया	101	58
9.	नन्धौर	114	67
10.	पिण्डर	305	10
11.	रामगंगा पश्चिम	375	11
12.	रामगंगा पूर्वी	176	8
13.	सोलनी	156	4
14.	गौला	225	91
15.	धौलीगंगा	179	179
16.	भाकरा	429	43
17.	टसन	116	35
18.	पिलाखैर	133	41

उपस्थित झीलें

कुमाऊँ की झीलों का विवरण		गढ़वाल सम्भाग के मुख्य ताल	
झील का नाम	क्षेत्रफल (हे.)	झील का नाम	क्षेत्रफल (हे.)
भीमताल	47.0	रवाताल	4.25
नैनीताल	55.0	बजवारीताल	1.06
सातताल	49.0	हेमकुण्ड	9.30
खुर्पाताल	5.0	देवरियाताल	2.4
गरूड़ताल	6.0	कासनताल	2.51
		वासुकिताल	5.60
		सत्राताल	0.99
		पनयाताल	2.53
		नन्दीकुण्ड	6.63
		लाभाताल	0.56
		खोइयाताल	2.32

उत्तराखण्ड राज्य में पिंजरा पालन हेतु उपयोगी सम्भावित जलाशय और पिंजरा पालन मत्स्य उत्पादन क्षमता

क्र. सं.	झील का नाम	पैरामीटर (किमी.)	क्षेत्रफल (हे.)	सम्भावित पिंजरो की क्षमता	(क्षेत्रफल हे.)	मत्स्य उत्पादन मिट्रिकटन (@20–30 किग्रा./क्यूबिक मीटर)	कुल आय (लाख में) @ रू. 85 प्रति किग्रा.
1.	नानक सागर	39.3	1760.3	500	1.2	350	300
2.	बैगुल	59.3	1677.8	500	1.2	350	300
3.	धौरा	21.6	1350.0	500	1.2	350	300
4.	बौर	21.7	1257.6	500	1.2	350	300
5.	हरिपुरा	16.4	883.0	250	0.6	175	150
6.	तुमडिया	57.2	1604.0	500	1.2	350	300
7	टिहरी जलाशय	52.0		2000	4.8	1400	1200
				4750	**11.4**	**3325**	**2850**

उत्तराखण्ड में स्थित पॉच बड़े 1000 हेक्टेयर से ऊपर जलाशयों जिनमें नानक सागर, बैगुल, धौरा, बौर एवं तुमरिया में 500 केज यूनिटें (प्रत्येक 6x4x4मी.) इन जलाशयों में स्थापित की जा सकती है। कुल 10–15 हैक्टेयर जलक्षेत्र को पिंजरो से अच्छादित करने पर प्रतिवर्ष उत्तराखण्ड के जलाशयों से कम से **कम 3000–3500 टन मत्स्य उत्पादन द्वारा कुल लगभग आय लगभग 28 करोड़ से 30 करोड़ तक की अतिरिक्त** आय प्राप्त हो सकती है, इसमें स्थानीय नौजवानों को रोजगार के साथ, मत्स्य विक्रय केन्द्र, पिंजरा पालन के जालों एवं फ्लोटों की मरम्मत करने, साफ करने वाले उपकरणों, नावों, बर्फ बनाने का स्थानीय संयंत्र ,मछलियों के मूल्य संवर्धन हेतु आचार आदि बनाने की दुकानें आदि का सृजन होगा। मछलियों में लगभग 20–25% तक की उत्पादन हानि केवल उचित प्रसंस्करण एवं परिवहन के अभाव में हो जाती है, इसी के मध्यनजर में चल रही **प्रधानमन्त्री मत्स्य सम्पदा योजना**

के अर्न्तगत इस हानि को 2024 तक 10% तक लाने का प्रावधान रखा गया है, इन जल संसाधनों से प्राप्त होने वाले मत्स्य उत्पादों का प्रसंस्करण एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते है। इसी तरह के प्रयास टिहरी जलाशय एवं अन्य विकसिंत हो रहे जलाशयों में केज (पिंजरा) पालन से स्थानीय युवकों को रोजगार के नये अवसर प्रदान होने के साथ ताजे, प्रोटीनयुक्त खाद्य मछली के रूप में आसानी से उपलब्ध हो सकेगे।

उत्तराखंड मत्स्य पालन एक नज़र में

(स्रोतः उत्तराखंड राज्य मत्स्य विभाग, देहरादून–2023)

1.	मछली फार्म/हैचरी	14 संख्या
2.	राज्य स्तरीय ब्रूड बैंक	02 संख्या
3.	राज्य स्तरीय फेडरेशन (ट्राउट)	01 संख्या
4.	जिला स्तरीय फेडरेशन (हरिद्वार)	01 संख्या
5.	प्राथमिक मत्स्यपालन सहकारी समितियां	137 संख्या
6.	नदियां	2686 किमी.
7.	जलाशय	07 संख्या 20587 हेक्टेयर
8.	झीलें	31297 हेक्टेयर
9.	कुल मत्स्य पालन संसाधन क्षेत्रफल	26,000 हेक्टेयर
10.	वार्षिक बीज उत्पादन	306 लाख
11.	तालाब (निजी और ग्राम समाज के तालाब)	871 हेक्टेयर
12.	नदियों में पहचाने गए/कार्यात्मक एंग्लिंग बीट	100/29
13.	वार्षिक मछली उत्पादन	7324 मीट्रिक टन
14.	मछली बाजार	02
15.	मत्स्य पालन हितधारक	13806

उपसंहार

प्रोटीनयुक्त खाद्य की उपलब्धता बढ़ती जनसंख्या के साथ जलवायु में होते परिवर्तनों के मध्यनजर सुनिश्चित करना एक बहुत बड़ी चुनौती है। अर्न्तस्थलीय जलक्षेत्रों के दबाव को कम करते हुए बड़े जलाशयों में पिंजरा पालन भविष्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते है। केज पालन की नवीनतम तकनीकों के साथ पर्वतीय राज्यों में उपलब्ध खुले जलाशयों में इस तरह की पालन पद्वतियॉ मत्स्य उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्वि कर सकती है,और पर्वतीय राज्यों के साथ उत्तराखण्ड की समृद्वि में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते है।

रोग

शीतजल मत्स्य पालन तालाबों की बीमारियाँ एवं उपचार विधियाँ

सुमंत कुमार मल्लिक एवं संतोष कुमार
भा.कृ.अनु.प.–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल

आजीविका निर्वहन हेतु अन्य कृषि व्यवसायों के साथ–साथ पर्वतीय क्षेत्रों के लोगों का रूझान मछली पालन की बढ़ रहा है। देश के पर्वतीय राज्य विषम, कठिन भौगोलिक परिस्थितियों के साथ–साथ संवेदनशील पारस्थितिकी तंत्र के चलते भी अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाते हैं। अधिकतर खेती वर्षा आधारित है। इन क्षेत्रों में सामान्यतः वर्षपर्यनत पानी का तापमान 20°c से कम रहता है। अतः शीतजल में जीवित रहने एवं बढ़ने वाली, ग्रास कार्प, सिल्वर कार्प, कॉमन कार्प, ट्राउट, महाशीर एवं स्नो ट्राउट आदि प्रजातियों का उपयोग किया जाता है। पालन दौरान अनेक तरह के स्वास्थ्य संबन्धित समस्यायें मछलियों में देखी जाती हैं। शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, इस तरह की समस्याओं की सही पहचान कर उनके उपचार हेतु विधियाँ विकसित कर मत्स्य कृषकों तक पहुँचाने का कार्य कर रहा है। इस लेख में परजीवियों द्वारा उत्पन्न होने वाली बीमारियों का उल्लेख किया गया है। सामान्यतः रोगों का अतिक्रमण उपस्थित रोगाणु, प्रदूषित जलीय वातावरण द्वारा उत्पन्न तनाव एवं इनके संपर्क में रहने वाली मछलियों की संवेदनशीलता पर निर्भर करता है।

रोगग्रस्त मछलियों के सामान्य लक्षण

- मछलियों का तालाब के किनारे प्र एवं सतह पर बार–बार आना।
- उल्टा–सीधा चक्कर लगाना एवं सुस्त होकर धीरे–धीरे पानी में तैरना।
- कुछ आवाज करने पर भी मछलियों की सतह पर आने रहना।
- मछलियों को दिये गये खाद्य का ग्रहण न करना।
- पानी के प्रवेश द्वार पर आना एवं खरपतवार के नीचे रहना।

शारीरिक लक्षण

- पकड़ने पर मछलियों के शरीर से अधिक म्युकस (लसलसा द्रव्य) का निकालना।
- मछली के शरीर का रंग का असमान्य होना तथा बहुत अधिक कालापन होना।
- मछली के ऊपर या पंखों के निचे लाना–निशान अथवा घाव दिखाई देना।
- त्वचा के उपर सफेद या काले रंग की राई के दाने के बराबर, उबार आदि दिखाई देना।
- शल्कों का निकलना पेट का फूल जाना, शल्कों के बीच में द्रव्य जमा होना।
- गलफड़ों का टूटना, सड़ना एव उनके उपर सफेद रंग के पदार्थ का जमाव दिखना।
- पंखों का सड़ना दूटना।
- मछलियों का लम्बाई के सपेक्ष कमजोर होना।
- मछलियों के मुँह की थूथन का आकार असमान्य होना अथवा बढ़ना।
- गलफड़ों का अधिक दिखाई देना।
- जख्मों, शरीर के गलफड़ों के ऊपर या पंखों में रूई जैसी चीज का जमा होना।

मछली के शरीर में होने वाले विकार जिनमें परजीवी या जीवाणु की प्रायः कोई भूमिका नही होता है। वरन् अन्य जलीय परिवेश या आहार सम्बन्धित कारकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इनसे होने वाली बीमारियाँ निम्नवत हैं:

1.1 ऑक्सीजन की कमी एवं कार्बन डाइऑक्साइड गैस की अधिकता द्वारा उत्पन्न विकार

लक्षण

ऑक्सीजन की कमी से मछली सतह पर आ जाती है। काफी बेचैनी वाले लक्षण मछलियों में प्रकट होते हैं। शरीर में ऑक्सीकृत खून की सप्लाई असमान्य हो जाती है जिससे मछलियाँ मरनी शुरू होती हैं। सामान्यतः मत्स्यपालन टैंकों एवं तालाबों में ऑक्सीजन की कमी एवं कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा आवश्यकता से अधिक होने पर ट्राउट, ग्रास कार्प, सिल्वर कार्प एवं स्नो ट्राउट मछलियाँ अधिक प्रभावित होती हैं। कॉमन कार्प चूँकि तालाब की तली पर रहने की आदि होती हैं, इसीलिये इन पर प्रभाव अन्त में होता है।

कारण

अत्यधिक कार्बनिक पदार्थों का जमा होना, तालाब में बहुत अधिक बायोमास, नीली हरी शैवाल की अधिकता तथा तापमान में वृद्धि इत्यादि प्रमुख कारण है। यदि तालाब में 7–8 मिग्रा/ली ऑक्सीजन हो तो कार्बन डाइऑक्साइड की 24 मिग्रा/ली मात्रा भी हानिकारक नहीं होती है। इसके विपरीत यदि ऑक्सीजन बहुत कम हो तो थोड़ी सी मात्रा भी नुकसानदायक होती है।

रोकथाम

- तालाब के पानी में 200 किग्रा/हे. के हिसाब से बुझा चूना देना चाहिए।
- तालाब के पानी को बॉस के डण्डों द्वारा पीटना चाहिए,जिससे वातावरण की ऑक्सीजन तालाब में मिल जाय।
- यदि मछलियाँ सतह पर–आ रही हों तो तुरन्त पम्प द्वारा बाहर का साफ पानी तालाब में डालना काफी उपयोगी होता है।
- पोटेशियम परमैंगनेट 3–4 मिग्रा/लीटर के हिसाब से तालाब में देने से समस्या पर तुरन्त काबू किया जा सकता है।
- खाद्य देना कुछ दिन के लिये बन्द कर देना चाहिए।
- यदि वायुकरण करने के साधन हों तो वायुकरण की व्यवस्था करनी चाहिए।
- हमेशा घने बादल एवं उमस वाले दिनों में एवं गर्मी की प्रथम वर्षा के समय अत्यन्त सावधान रहना चाहिए। इन्ही दिनों में इस प्रकार की समस्यायें उत्पन्न होती हैं।

स्पॉन में पेट फूलने की बीमारी

लक्षण

मछलियों के आमाशयिक भाग पर गैस के बुलबुले या उदरीय भाग पर कुछ गैस के बुलबुले, पेट का बाहर निकलना, कभी–कभी आँखें फूल जाना, गलफड़ों का लाल–लाल चमकदार होना आदि प्रमुख लक्षण हैं। सूक्ष्मदर्शी यन्त्र में पूरी मछली देखने से पत्ता चलता है कि पेट के अन्दर भी गैस होती है तथा गलफड़ों के ऊपर भी गैस के बुलबुले दिखाई देते हैं।

कारण

यह जीरों और स्पान का रोग है। वायुमण्डलीय एवं जलीय गैसों के दबाव की अधिकता से इस रोग की आशंका बढ़ जाती है। पानी के तापमान का बढ़ना तथा पानी में वायु की अधिकता इसमें सहायक होते हैं। कभी–कभी तालाब में नीली हरी शैवाल की अधिकता भी एक महत्वपूर्ण उत्प्रेरक बन जाती है।

प्रभाव

जब गैस के बुलबुले छोटी मछलियों के शरीर में अधिक हो जाते हैं तो सूक्ष्म रक्त नलिकाओं के रक्तप्रवाह में रूकावट उत्पन्न हो जाती है, जिससे शरीर में ऑक्सीजन मिश्रित रक्त की कगी हो जाती है। फलतः मछलियाँ मरने लगती हैं। कभी–कभी इससे बहुत अधिक संख्या में मछलियाँ मर जाती हैं।

रोकथाम

नीली हरी शैवाल यदि तालाब के पानी में उपस्थित हैं तो खाद्य देना बंद कर देना चाहिए। तालाब के पानी में इस दौरान पम्प इत्यादि द्वारा पानी नहीं भरना चाहिए। यदि सम्भव हो तो तालाब की सतह को सूर्य की रोशनी से बचाना चाहिए। यह कार्य तैरने वाले पौधों से किया जा सकता है। इससे नीली हरी शैवाल मर जाती है।

विषैली अमोनिया गैस द्वारा उत्पन्न रोग

लक्षण

यह सभी उम्र की मछलियों को प्रभावित करती है। इससे गलफड़े बहुत अधिक लाल हो जाते हैं।. गल्फड़ों का कुछ भाग टूटना, लाल–लाल घाव होना, रक्त निकलना इत्यादि इसके प्रमुख लक्षण हैं। मछली के शरीर के अन्दर के अंगों जैसे यकृत, गुर्दा एवं आमाशय के आस–पास रक्त दिखाई देता है। इसे गलफड़े की बीमारी के नाम से जाना जाता है।

कारण

तालाबों के तल पर आवश्यकता से अधिक कार्बनिक पदार्थों का जमा होना, बहुत अधिक संख्या में तालाबों में मछलियों का संवर्धन, खाद्य का तालाब में जमा होना, पानी निष्कासन की अव्यवस्था आदि इसमें उत्प्रेरक होते हैं। अमोनिया तालाब में मछली की चयापाचयिक क्रियाओं एवं अन्य पदार्थों के सड़ने–गलने के फलस्वरूप बनती है। यह दो रूपों में पायी जाती हैः आयनीकृत अमोनिया (NH4+N) एवं अनायनीकृत अमोनिया (NH3+N)। अनायनीकृत अमोनिया ही मछलियों के लिये अधिक मात्रा में घातक होती है। अधिक अमोनिया की उपस्थिति में मछली भोजन लेना बंद कर देती है, गलफड़े आवश्यकता से अधिक कार्य करने से बढ़ जाते हैं तथा शरीर में ऑक्सीकृत रक्त की कमी हो जाती है। पी–एच 7 पर 1.39 मिग्रा/लीटर अनायनीकृत अमोनिया विषाक्त होती है। इसकी विषक्तता तालाब के पी–एच एवं तापमान पर निर्भर करता है। अधिक पी एच एवं कम तापमान होने पर यह ज्यादा विषाक्त होती है।

रोकथामः तालाब का पानी पम्प या निकास द्वार से निकालकर ताजा एंव साफ जल भरना चाहिए।

- खाद्य देने मे कमी कर देनी चाहिए विशेषकर अधिक प्रोटीनयुक्त खाद्यों पर रोक लगाना लाभप्रद होता है।
- तालाब का पानी किसी प्रयोगशाला में जाँच के लिये अवश्य दे देना चाहिए। विषाक्तता के आधार पर ही प्रबन्धन करना उपयुक्त होता है। अमोनिया का स्तर तालाब में बहुत अधिक घटता बढ़ता रहता हैं।
- पी–एच वृद्धि के साथ अमोनिया का स्तर भी बढ़ता जाता है तथा अधिक अमोनिया घातक सिद्ध होती है। अतः इस दौरान ऐसी कोई भी चीज तालाब में न मिलाएँ जो पी–एच में वृद्वि कर दे।

हाइड्रोजन सल्फाइड गैस से उत्पन्न विकार

लक्षण

इस गैस द्वारा बहुत,साफ कोई लक्षण मछली के ऊपर नहीं दिखाई देता है तथापि तालाब या हैचरी के पानी में सड़े अण्डे की तरह गन्ध आने से इस गैस की उपस्थिति का अनुमान किया जा सकता है। कभी–कभी हैचरी में इस गैस की अधिकता से स्पान की भारी संख्या में मृत्यु हो जाती है।

कारण

बहुत अधिक गहराई वाले तालाब, जलाशय या ऑक्सीजन रहित जल संसाधनों में यह गैस पैदा होती है। कार्बनिक पदार्थों का अधिक जमा होना भी इसका एक प्रमुख कारण है। हैचरी में इस प्रकार की समस्या का मुख्य कारण, अण्डों का कवच एवं अनिषेचित अण्डों का नीचे बैठ जाने पर सड़ना है जिससे इस प्रकार की गैस पैदा होती है जो स्पान एवं अण्डों के लिये हानिकारक होती है।

प्रभाव

चूँकि इस गैस की उपस्थिति से साँस लेने के लिये आवश्यक ऑक्सीजन की कमी हो जाती है और हे मछलियाँ मरने लगती हैं। इसकी विषाक्तता मछलियों के उम्र पर निर्भर करती है। स्पान एवं अण्डों में 0.008 मिग्रा/लीटर की मात्रा भी हानिकारक होती है।

रोकथाम

तालाब या हैचरी के पानी में से कार्बनिक पदार्थों अथवा सड़े–गले अण्डों को बाहर करना उपयोगी होता है।

- हैचरी में यदि इस प्रकार की समस्या हो तो पानी में 4–2 मिग्रा/लीटर पोटेशियम परमैंगनेट मिलाना लाभप्रद होता है।
- तालाब में 200 किग्रा/हे की दर से चूने का प्रयोग लाभदायक होता है।
- तालाब के नितल का वायुकरण करना चाहिए।

नाइट्राइड गैस द्वारा उत्पन्न विकार

लक्षण

इससे होने वाली बीमारी को भूरे रक्त की बीमारी के नाम से जाना जाता है। तालाब जल में ऑक्सीजन प्रचुरता के बावजूद भी मछलियाँ तनावग्रस्त होकर पानी की सतह पर बैचेन होकर तैरती दिखाई देती हैं। रक्त में ऑक्सीजन की कमी हो जाती है।

प्रभाव

जब पानी में उपलब्ध नाइट्राइट रक्त में मिलता है तो रक्त के हीमोग्लोबिन का उपस्थित हीम लौह फेरस रूप से फेरिक रूप में बदल जाता है जिसे मिथोमोग्लोबिन कहते हैं। इस परिवर्तित रक्त के रूप से मछलियों के रक्त की ऑक्सीजन ग्रहण करने की क्षमता समाप्त हो जाती है। फलतः ऑक्सीजन मछली के विभिन्न भागों में नहीं जा पाती है और धीरे–धीरे मछलियॉ मरने लगती है।

कारण

तालाब के तलछट (कीचड़) में मौजूद नाइट्रेट के अवकरण के फलस्वरूप नाइट्राइट बनता है। कभी–कभी नाइट्रीफिकेशन की प्रकिया में कुछ असन्तुलन हो जाने के कारण नाइट्राइट जमा होने लगता हैं और तालाब में इसकी मात्रा बढ़ने लगती है। 4.6 मिग्रा/लीटर नाइट्राइट की मात्रा से मछलियाँ मर जाती हैं।

रोकथाम

तालाब में कैल्शियम क्लोराइड या सोडियम क्लोराइड मिलाने से इसकी विषाक्तता क्षीण हो जाती है। इसके अलावा ऑक्सीजन की कमी से भी विभिन्न परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। ऑक्सीजन की उचित मात्रा से कई अन्य प्रकार की बीमारियों पर नियंत्रण पाया जा सकता है। अधिकतर विकारों की वजह तालाब के पानी के भौतिक एवं रासायनिक गुणों में अधिक बदलाव होना है। इनमें से प्रमुख तापमान, कार्बनिक पदार्थ, अधिक जनसंख्या में मछलियों का संचयन एवं तनाव आदि है। अतः समुचित प्रबन्धन इसका एक मात्र उपाय है।

संक्रामक बीमारियाँ

इस प्रकार की बीमारियों की जड़, परजीवी या जीवाणु होते हैं। लेकिन तालाब के पानी के भौतिक एवं रासायनिक गुणों की भी इसमें सहभागिता होती है जो इन हानिकारक जीवाणुओं के वृद्दि में सहायक होते है।

परजीवी बीमारियाँ

इसमें प्रोटोजोआ, कृमि वर्ग एवं क्रस्टेशिया वर्ग के परजीवी मुख्यतः मछलियों को नुकसान पहुँचाते हैं। ये परजीवी मछली के शरीर के ऊपर, गलफड़ों में या शरीर के भीतरी अंगों, जैसे– आँत, यकृत, वृक्क आदि के ऊपर या अन्दर रहते हैं। इनके हानिकारक प्रभाव से मछलियों की वृद्धि रूक जाती है

और धीरे–धीरे मृत्यु होने लगती है। उचित मात्रा में खाद्य देने के उपरान्त भी बढ़ती नहीं हैं। अतः विभिन्न प्रकार के परजीवियों से होने वाली बिमारियों के लक्षण तथा उपचार की जानकारी होना आवश्यक है। मुख्य परजीवी बीमारियों के लक्षण, कारण और रोकथाम के उपाय कमशः दिये गये हैं।

खुजली का रोग

लक्षण

यह रेनबो ट्राउट के फाई एवं अंगुलिकाओं की एक प्रमुख बीमारी है। मुख्यतः छोटी मछलियॉ (जीरा तथा अंगुलिकायें) इस रोग से अधिक संक्रमित होती हैं। इसमें शरीर तथा गलफड़ों के ऊपर छोटे–छोटे सफेद धब्बे जैसे दिखाई देते हैं। तालाब के किनारे की तरफ मछलियों का आना, शरीर को किसी चीज पर रगड़ना आदि प्रमुख लक्षण हैं। इसे खुजली की बीमारी भी कहते हैं।

कारण

एक्थोपिथिरियस एक प्रोटोजोन परजीवी है जो इस बीमारी का कारण है। जीरे एवं अंगुलिकाओं का यह एक मुख्य रोग है। यह सूक्ष्मदर्शी यन्त्र के द्वारा ही देखा जा सकता है। बीमार मछलियों की त्वचा एवं पंखों के ऊपर 05–1.0 मिमी. आकार के सफेद दाने जैसी अत्यन्त छोटी–छोटी ग्रन्थियाँ दिखाई पड़ती है। यह 12 से 18 घंटे की अवधि में 1,000 तक नये परजीवियों को जन्म देता है। ये पूरे तालाब में घूमते रहते हैं और मौका मिलते ही मछली के शरीर पर चिपक कर लाल रक्त कणिकाओं को खाते हैं। इनके संक्रमण से मछलियों में रक्त की कमी हो जाती है। फलतः रक्त में हीमोग्लोबिन की कमी हो जाती है, जिससे शरीर की श्वास, लेने की शक्ति कम हो जाती है।

इक्थोओपिथिरियस नामक परजीवी द्वारा उत्पन्न इसमें मछलियों में खुजलाहट के साथ शरीर के उपर दाने पैदा हो जाते हैं। यह परजीवी 12–18 घण्टे की अवधि में लगभग 1000 तक नये परजीवियों को जन्म देता है और ये तालाब में परपोषी की तलाश में घुमते रहते हैं। मछली की त्वचा एवं रक्त कोशिकाओं को खाकर ये परिपक्वता प्राप्त कर लेते हैं तथा सफेद दाननुमा ग्रन्थियों से बाहर निकल जाते हैं।

रोकथाम

मछलियों को 2–3% नमक के घोल में 2–3 मिनट तक डुबाकर तालाब में छोड़ना काफी लाभप्रद होता हैं। यह क्रिया यदि एक सप्ताह तक की जाय तो इन परजीवियों से छुटकारा पाया जा सकता है। 300 से 500 किग्रा/हे. चूना देना भी लाभप्रद होता है। जलीय तापमान के बदलाव से भी इनके नियन्त्रण में मदद मिलती है।

ट्राइकोडिनोसिज

लक्षण

यह भी जीरों एवं अंगुलिकाओं की बीमारी है। त्वचा, पंखों एवं गलफड़ों के ऊपर में रहते हैं। गलफड़ों का लाल दिखाई देना, छोटे–छोटे धब्बे दिखाई देना आदि सामान्य लक्षण हैं। बीमार मछलियों में खुजली होने लगती हैं जिससे मछलियाँ शरीर को रगड़ने की कोशिश करती हैं। शरीर का रंग सामान्य से ज्यादा काला हो जाता है। शरीर का म्यूकस (ललसता द्रव्य) भी अधिक मात्रा में निकलता है। ट्राउट, ग्रास कार्प एवं कौमन कार्प सबसे अधिक प्रभावित होते है। इस परजीवी का प्रकोप विशेषकर वर्षा ऋतु में देखा गया है। बीमार मछलियों का झुण्ड, सतह एवं किनारों पर अधिकतर आते रहते हैं।

कारण

ट्राइकोडिना भी प्रोटोजोन परजीवी है, इसकी कई प्रजातियाँ पायी जाती हैं जिनकी पहचान सूक्ष्दर्शी यंत्र द्वारा आसानी से की जा सकती है। बहुत अधिक संख्या में मछली के जीरे का संचयन, अल्पाहार, अधिक कार्बनिक पदार्थों का जमा होना इत्यादि इसके कारण हैं। ये शरीर के जीवद्रव्य को चरते हैं।

रोकथाम

3–4 दिन तक 2–3ः नमक के घोल में 2–3 मिनट तंक डुबाकेर रखना चाहिए, 1,000 एसीटिक एसिड में 2–3 मिनट डुबाकर रखने से सारे परजीवी शरीर से अलग हो जाते हैं। इसके अलावा पोटैशियम परमेंगनेट के घोल में (100–200 मिग्रा/ली) डुबाने से भी ये परजीवी अलग होकर मर जाते हैं।

मिक्सोस्पोरिडियन परजीवी द्वारा उत्पन्न रोग

लक्षण

ये परजीवी भी प्रोटोजोआ फाइलम के अन्तर्गत आते हैं। शरीर के ऊपर शल्कों के बीच में छोटी सफेद थैली जैसी संरचना एवं गलफड़ों के ऊपर भी सफेद बड़ी–बड़ी लसलसी थैली जिनकी संख्या एक–दो से लेकर पूरे गलफड़ों के क्षेत्र तक ढकी होती है, पाये जाते हैं। कभी–कभी इनके शरीर से झड़ने के बाद छोटे–छोटे लाल दाग हो जाते हैं, जो अन्य जीवाणुओं को पनाह देते हैं। मछली बहुत कमजोर हो जाती है। यह छोटी–बड़ी सभी प्रकार की मछलियों में पायी जाती है। छोटी मछलियों के लिये यह काफी घातक होते हैं। नर्सरी तालाबों की यह सबसे प्रमुख बीमारी है। कौमन कार्ण एवं ग्रास कार्प के गलफड़ों एवं शरीर के ऊपर, पंखों के जड़ आदि पर सफेद बिन्दु के आकार के देखे जाते हैं। वृक्क एवं यकृत के अन्दर भी इन परजीवियों के स्पोर्स को देखा जा सकता है।

कारण

ये परजीवी एक सिस्ट बना लेते हैं और हजारों स्पोर्स एक खोल में रहते हैं जिसे सिस्ट कहते हैं। यही अवस्था मछलियों को रोगी करने की क्षमता रखती है। ये स्पोर्स आहार अथवा जल के साथ शरीर के अन्दर विभिन्न अंगों में प्रवेश करते हैं, जहाँ से इनका प्रवेश रक्त में होता है और अपने गन्तव्य जगह पर एकत्र होकर बढ़ना शुरू करते हैं। ये गलफड़ों के फिलामेन्ट की जड़ एवं सिरे, शल्कों के बीच में यकृत एवं वृक्क में पाये जाते हैं। वृक्क में जाकर वृक्क के टिब्यूल्स को नष्ट करना शुरू कर देते हैं। गलफड़ों की सतह को पूर्णतया आच्छादित करके मछलियों के श्वसन में बाधा उत्पन्न करते हैं। फलतः मछलियाँ धीरे–धीरे मरने लगती हैं। ये प्रमुखतः तीन प्रकार के होते हैं जिन्हें मिक्सोबोलस, हेनिग्वा एवं थेलीह्नस कहा जाता है।

रोकथाम

यद्यपि इसकी रोकथाम के लिये कोई विशेष औषधि उपलब्ध नहीं है फिर भी उचित प्रबन्धन कार्य काफी सहायक होते हैं। तालाब को जीरे के संवर्धन कार्य के लिये उपयोग करने से पहले अच्छी तरह ब्लीचिंग पाउडर 40–60 मिग्रा /ली के हिसाब से तल पर डालना चाहिए इससे तालाब के बचे स्पोर्स नष्ट हो जाते हैं।

माइकोस्पोरिडयन

लक्षण

ये भी प्रोटोजोआ के स्पारोजोआ वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। ये गुख्यतः शरीर के अन्दर के अंगों में होते हैं। इनसे शरीर के बाहर कोई स्पष्ट लक्षण नहीं दिखाई देते हैं लेकिन मछली बीमार–सी दिखती है। ये विडाल वर्ग के मछलियों के अण्डाशयों में तथा कार्प वर्ग की मछलियों के वृक्कों में पाये जाते हैं। इनके संकमण से मछलियों की परिपक्वता पर प्रभाव पडता है।

कारण

ये परजीवी मुख्यतः ऊतकों के बीच में पाये जाते हैं। यकृत, वृक्क एवं अण्डाशय में इनकी उपस्थिति से विकार की सम्भावना बढ़ जाती है।

रोकथाम

इनके रोकथाम के लिये उचित प्रबन्धन कार्य ही उपयोगी होता है।

तन्तुओं वाले प्रोटोजोआ परजीवी द्वारा उत्पन्न विकार

लक्षण

इससे बिमार मछलियों के शरीर के ऊपर फफूँद जैसे या पीले रंग की रूई जैसी जमा हो जाती है। इनकी उपस्थिति से शरीर से म्यूकस काफी मात्रा में निकलता है। बाहर से देखने पर इनमें और फफूँद में अन्तर करना मुश्किल होता है।

कारण

यह बीमारी वोर्टीसेला (Vorticella sp.), इंपिस्टाइलिस (Epistyllius sp), जोआंथेम्नियम (Zoothamnium sp) आदि तन्तुओं वाले प्रोटोजोआ का भारी संख्या में शरीर पर उगने से होता है। ये मुख्यतः कार्बनिक पदार्थों, सडी हुई चीजों एवं घावों पर रहना पसन्द करते हैं। कार्बनिक पदार्थो का अधिक मात्रा में जमा होना इनके अधिकता का मुख्य कारण है। मछलियों या झीगों का बहुत सघन संचयन अथवा तनाव आदि इस परजीवी के पनपने में सहायक होता है।

रोकथाम

कार्बनिक पदार्थों को छोटे टैंकों अथवा तालाबों से समय–समय पर, निकलवाना उपयोगी होता है। क्योंकि यह अधिकतर छोटे प्लास्टिक पूलों, टैंकाँ इत्यादि में देखे जाते हैं। पोटैशियम परमेंगनेट का घोल 2–3 मिग्रा/लीटर के हिसाब से छोटे टैंकों या प्लास्टिक पूलों में देने से काफी लाभ मिलता है। समय–समय प्लास्टिक पूलों एवं टैंकों को फॉरमैल्डीहाइड से साफ करते रहना चाहिए। नमक 2–3% के घोल में प्रभावित मछलियों को डुबाने से स्थिति में सुधार होती है।

कृमियों से उत्पन्न विकार

कृमि प्लेटीहैल्मैन्थिस फाइलम के अन्तर्गत आते हैं। ये सभी उम्र की मछलियों में पाये जाते हैं तथा भारतीय प्रधान कार्प मछलियों के लिये काफी घातक होते हैं। कार्बनिक पदार्थों की अधिकता इनके फैलाव में सहायक होती है। डैक्टाइलोगाइंरस गाइरोडेक्टाइलस, डिप्लोस्टोमुला एवं लिग्यूला आदि प्रमुख कृमि है।

डैक्टाइलोगाइरोसिज

लक्षण

डैक्टाइलोगाइरज परजीवी फाइलम प्लेटीहैल्मैन्थिज के मोनोजिनिया वर्ग में आते हैं। इन कृमियों के जीवन चक्र में एक ही होस्ट होता है। इससे प्रभावित मछलियों के शरीर से हल्के नीले रंग का म्यूकस बहुत अधिक निकलता है। मछलियों का रंग भी सामान्स से ज्यादा काला हो जाता है। गलफड़ों के ऊपर हल्के सफेद पीले रंग की धारियाँ–सी दिखती हैं। गलफड़ों का रंग सामान्य रंग से अलग पीले लाल रंग का हो जाता है। घाव भी हो जाते हैं। बहुत ज्यादा संकमण की अवस्था में गलफड़ों के ऊपर हल्के पीले रंग की रूई जैसी संरचना जिसमें मिट्टी इत्यादि भरी रहती है, हो जाती है। इनका प्रभाव विशेषकर गलफड़ों के ऊपर होता है। इससे मछलियाँ बीमार सी दिखती हैं। मछलियों की वृद्धि रूक जाती है और अन्त में मरने लगती हैं। इन्हें सूक्ष्मदर्शी यन्त्र द्वारा ही देखा जा सकता है।

कारण

डैक्टाइलोगाइरज नामक कृमि से मछलियों में यह संकमण होता है। कृमियों की पहचान इसमें उपस्थित दो आँख के धब्बे एवं 14 किनारे के हुक (सात जोड़ें) एवं दो बड़े हुक से होती है। ये अण्डे देती है।

ऐसे तालाब जिसमें कार्बनिक पदार्थ ज्यादा हों, मछलियों की संख्या अधिक हो, ऑक्सीजन की मात्रा कम रहती हो, अमोनिया की मात्रा अधिक रहती हो, पानी का पी एच सामान्य से नीचे हो, में इनके संक्रमण की आशंका बहुत अधिक रहती है। छोटी–बड़ी सभी मछलियाँ इससे प्रभावित होती हैं। ये मछली के गलफड़ों के तन्तुओं को खाकर नष्ट कर देते हैं जिससे मछलियों की श्वसन क्रिया में अवरोध उत्पन्न हो जाता है और मर जाती है।

रोकथाम

फॉर्मेल्डिहाइड 20–25 मिग्रा/लीटर की दर से तालाब के पानी में देने से काफी लाभ मिलता है लेकिन नर्सरी तालाबों के अलावा बड़े तालाबों में इसका प्रयोग महँगा होता है। मैलाथियॉन 0.25 मिग्रा/ली के हिसाब से देने से भी इसकी रोकथाम हो जाती है, लेकिन अधिक संक्रमण में दवाई का सेवन करना ही उपयोगी होता है।

गाइरोडेक्टाइलोसिज

लक्षण

शरीर के ऊपर छोटे–छोटे लाल दाग होना, अत्यधिक म्यूकस द्रव्य का त्वचा से निकलना, मछलियों की वृद्धि न होना एवं बेचैनी इसके लक्षण हैं। यह परजीवी गलफड़ों एवं मछली की त्वचा दोनों पर निवास करता है। अतः दोनो जगहों पर ही इनके लक्षण देखे जा सकते हैं। गलफड़ों में रक्त वाले घाव होना, गलफड़ों का टूटना, सड़ना आदि प्रमुख लक्षण है।

कारण

यह भी डैक्टाइलोगाइरस परजीवी वर्ग का जन्तु है जिसे गाइरोडैक्टाइलस कहते हैं। इसमें आँखें नही होती है एवं बाहरी हुकों की संख्या 16 (8 जोड़े) एवं दो बड़े हुक बीच में होते हैं। यह बच्चों को जन्म देता है। ये भी विषम परिवेशों में पाये जाते हैं तथा जीरों तथा अंगुलिकाओं के शरीर में पाये जाते हैं। इनके संक्रमण से 80–90% जीरे मर जाते हैं। कार्बनिक पदार्थों की अधिकता एवं छोटे नियच्त्ति क्षेत्र में इनकी वृद्वि की संभावना अधिक होती है।

रोकथाम

इस संक्रमण को भी डैक्टाइलोगाइज की तरह नियंत्रित किया जा सकता है। उचित तालाब प्रबन्धन कार्य इसकी रोकथाम में सहायक होता ळें

रेन्बो ट्राउट की आँखों की बीमारी

लक्षण

बड़ी मछलियों में यह ज्यादा पायी जाती है। प्रभावित मछलियों की ऑखे शुरूआत में हल्की एक किनारे से लाल लाईन की तरह दिखती है। धीरे–धीरे पूरी ऑख सफेद हो जाती है, और एक सफेद परत से ढक जाती है। पूरी आँख का बाहर निकलना, आँख के लेंन्स का सिकुड़ना, मछलियों का कमजोर दिखना, रंग अधिक काला हो जाना, पूरी तरह से मछलियों का अंधा हो जाना और अन्त में मछलियों की मृत्यु हो जाती है। छोटी 1–2 साल की रेनबो ट्राउट में यह बीमारी बहुत कम देखी गयी। अधिक संक्रमण की अवस्था में 35–40 प्रतिशत तक मछलियाँ प्रभावित हो जाती हैं। अंधेपन की वजह से मछलियाँ दिया हुआ खाद्य ठीक तरह से ग्रहण नहीं कर पाती हैं और धीरे–धीरे कमजोर होकर मरने लगती हैं।

कारण

यह बीमारी प्रायः डिप्लोस्टोमियम स्पैतिकम नामक डाईजैनिक ट्रिमाटोड, जिसका जीवन चक्र तीन जीवों में पूरा होता है द्वारा उत्पन्न होती है। इसके अतिरिक्त कभी–कभी इस तरह के लक्षण फलैबोबैक्टिरियम/ ऐरोमोनास वैक्टिरिया द्वारा प्रभावित मछलियों में भी उत्पन्न होते है। महत्वपूर्ण खाद्य अवयवों की कमी में भी ऑख की बीमारी देखी गयी है।

उपचार

- रोग के लिये जिम्मेदार कारक की उचित पहचान कर निदान किया जा सकता है।
- समय–समय पर मछलियों के टैंकों की सफाई ।
- नमक (3%) के घोल अथवा पोटेशियम परमैग्नेट (400–500 ppm) के घोल में डिप ट्रिटमेंन्ट

मछली का जुआं (आरगुलस)

इस रोग को सामान्यतः आरगुलोसिस अथवा मछलियों में जुएं की बीमारी के नाम से जाना जाता है। यह परजीवी 5–8 मिमी. आकार का जुएं जैसा दिखाई देता है। जिसे नग्न आँखों से भी मछलियों के ऊपर अथवा नीचे की पंखों की जड़ों पर मजबूती से चिपका हुआ देखा जा सकता है। इस परजीवी के मुख में जहरीली ग्रन्थि पायी जाती है, जो मछली के शरीर से रक्त एवं उतकों के द्रव्य को चूसते हैं। इनके द्वारा शरीर के ऊपर किये गये घावों में फफूँदी एवं जीवाणुओं के संक्रमण की आशंका बढ़ जाती है। प्रायः पालन तालाबों में अधिक कार्बनिक खादों एवं अधिक संचय दर से इस रोग के उत्पन्न होने की संभावना बढ़ जाती है। शरीर से म्यूकर अथवा लसलसा द्रव्य अधिक मात्रा में निकलता है, एवं मछलियाँ अत्यधिक बेचैन रहती है और बार–बार तालाब की सतह तथा किनारों पर दिखाई पड़ती है।

रोगाणुरोधक पेप्टाइड्स (एंटी माइक्रोबिअल पेप्टाइड)

यामिनी लोहुमी एवं अमित पाण्डे
भा.कृ.अनु.प.–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल

रोगाणुरोधी पेप्टाइड्स (एएमपी) प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले अणुओं का एक विविध वर्ग है जो सभी बहुकोशिकीय जीवों द्वारा रक्षा की पहली पंक्ति के रूप में उत्पादित किया जाता है। रोगाणुरोधी पेप्टाइड्स आम तौर पर अमीनो एसिड की छोटी श्रृंखलाएं होती हैं और वे जीव की रक्षा प्रणाली का एक अभिन्न अंग होती हैं। इन पेप्टाइड्स में बैक्टीरिया, यीस्ट, कवक, वायरस और यहां तक कि कैंसर कोशिकाओं को सीधे मारने के लिए गतिविधि की एक व्यापक श्रृंखला हो सकती है। उनकी उपस्थिति कीड़ों, पौधों, जानवरों और मनुष्यों में बताई गई है जो कि जीवित जीवों को सूक्ष्मजीवों के आक्रमण से बचाती है। ये पेप्टाइड्स सीक्वेंस और संरचनाओं में भारी विविधता दिखाते हैं लेकिन वे क्रमिक रूप से संरक्षित होते हैं। रोगाणुरोधी पेप्टाइड्स प्रोकैरियोटिक और यूकेरियोटिक दोनों जीवों द्वारा निर्मित होते हैं। रोगाणुरोधी पेप्टाइड्स को पहली बार 1939 में प्रोकैरियोटिक कोशिकाओं से ग्रैमिसिडिन की खोज के साथ रिपोर्ट किया गया था, जो बैसिलस ब्रेविस से अलग किया गया एक रोगाणुरोधी पदार्थ है। ग्रामिसिडिन ग्राम–नेगेटिव और ग्राम–पॉजिटिव दोनों बैक्टीरिया के खिलाफ सक्रिय रहता है। ग्रैमिसिडिन व्यावसायिक पैमाने पर एंटीबायोटिक्स के रूप में उत्पादित होने वाले पहले एएमपी थे। यूकेरियोट्स में, एएमपी जन्मजात प्रतिरक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यूकेरियोट्स से पहला रोगाणुरोधी पेप्टाइड 1896 में गेहूं के आटे के पदार्थ से खोजा गया था जो ब्रेड यीस्ट के लिए घातक था। अब तक रिपोर्ट किए गए अधिकांश एएमपी यूकेरियोटिक हैं और पौधों, जानवरों और कवक द्वारा उत्पादित होते हैं। रक्त, पसीना, लार, प्लाज्मा, श्वेत रक्त कोशिका स्राव और कणिका अर्क जैसे शरीर के तरल पदार्थ अपने रोगाणुरोधी गुणों के लिए सर्वोत्तम माने जाते हैं। पौधों और अकशेरुकी जीवों में अनुकूली प्रतिरक्षा की कमी होती है और इसलिए उन पर बैक्टीरिया और कवक द्वारा हमला किया जाता है। वे संक्रमण से बचने के लिए पूरी तरह से अपनी जन्मजात प्रतिरक्षा प्रणाली पर भरोसा करते हैं, इसलिए एएमपी उन्हें हमलावर रोगजनकों से बचाते हैं। एएमपी आज तक जांचे गए सभी अकशेरुकी जीवों में पाए गए हैं, विशेष रूप से कीड़े और समुद्री अकशेरुकी जीवों में। एएमपी इन प्राणियों की उपकला कोशिकाओं, हेमोलिम्फ, फागोसाइट्स (श्वेत रक्त कोशिकाएं) और हेमोसाइट्स (रक्त कोशिकाएं) में पाया जा सकता है। कृषि, पशुपालन, चिकित्सा और विशेष रूप से विकासशील देशों में एंटीबायोटिक दवाओं के बढ़ते उपयोग के कारण सूक्ष्मजीवों का रोगाणुरोधी प्रतिरोध एक गंभीर समस्या बनता जा रहा है और रोगाणुरोधी पेप्टाइड्स इन एंटीबायोटिक दवाओं का एक अच्छा विकल्प प्रदान करते हैं। कई रोगाणुरोधी पेप्टाइड्स मल्टी–ड्रग प्रतिरोधी (एमडीआर) बैक्टीरिया के खिलाफ प्रभावी होते हैं और उनमें प्रतिरोध विकसित करने की प्रवृत्ति कम होती है।

बैक्टीरिया विभिन्न तरीकों से एंटीबायोटिक दवाओं के प्रति प्रतिरोध विकसित कर सकते हैं, जिसमें दवा–लक्ष्य अंतःक्रिया को रोकना, लक्ष्य प्रोटीन में दवा–बाइंडिंग साइट में संशोधन, और लक्ष्य कोशिकाओं से दवा का प्रवाह शामिल है। रोगाणुरोधी पेप्टाइड्स में संभवतः उनकी विशिष्ट क्रिया के कारण प्रतिरोध विकसित करने की प्रवृत्ति कम होती है। अधिकांश रोगाणुरोधी पेप्टाइड्स एम्फिपैथिक होते हैं और वे सीधे रोगजनक की झिल्ली पर कार्य करते हैं। गैर–झिल्ली लक्ष्यीकरण एएमपी को दो व्यापक श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है: एक वे जो जीवाणु कोशिका दीवार को लक्षित करते हैं और दूसरे वे जो इंट्रासेल्युलर लक्ष्य रखते हैं। पेनिसिलिन जैसे पारंपरिक एंटीबायोटिक दवाओं की तरह, एएमपी भी कोशिका दीवार संश्लेषण को रोक सकते हैं। यद्यपि अधिकांश पारंपरिक एंटीबायोटिक्स कोशिका दीवार घटकों के संश्लेषण में शामिल विशिष्ट प्रोटीन से बंधे होते हैं, एएमपी अक्सर विभिन्न पूर्ववर्ती अणुओं पर परस्पर प्रभाव डालते हैं जो कि कोशिका दीवार संश्लेषण के लिए आवश्यक होता हैं। कई यूकेरियोटिक एएमपी विशेषताओं का पता लगाया गया है लेकिन उनमें से कुछ को नैदानिक परीक्षणों में शामिल नहीं किया गया है जबकि केवल कुछ को अमेरिकी खाद्य एवं औषधि प्रशासन (एफडीए) द्वारा अनुमोदित किया गया है। नैदानिक परीक्षणों में अधिकांश एएमपी प्राकृतिक एएमपी के एनालॉग हैं, लेकिन कुछ पूरी तरह से सिंथेटिक हैं (उदाहरण के लिए, IMX942)। नैदानिक परीक्षणों में

अधिकांश एएमपी सामयिक अनुप्रयोगों तक ही सीमित हैं। एएमपी प्रभावकारिता में सुधार के लिए कई उपायों का अध्ययन किया गया है। इनमें एएमपी का रासायनिक संशोधन और डिलीवरी वाहनों का उपयोग शामिल है। रोगाणुरोधी पेप्टाइड्स की श्रेणियाँ रोगाणुरोधी पेप्टाइड्स अणुओं का एक अलग और विविध वर्ग हैं। आज तक रिपोर्ट किए गए 2800 से अधिक पेप्टाइड सीक्वेंसों के साथ, एएमपी को वर्गीकृत करना महत्वपूर्ण है। एएमपी को कई अलग–अलग तरीकों से वर्गीकृत किया जा सकता है, जो कि संरचना, सीक्वेंस पर आधारित हो सकता है। एएमपी में बैक्टीरिया को मारने से लेकर, प्रतिरक्षा मॉड्यूलेशन या बायोफिल्म निर्माण को रोकने के साथ–साथ कैंसर–रोधी या एंटी–वायरल गुण संबन्धी गतिविधियों की एक श्रृंखला भी हो सकती है। चूंकि पेप्टाइड्स की गतिविधि संरचना और सीक्वेंस पर निर्भर है, इसलिए एएमपी को समूहीकृत करते समय इन दोनों गुणों को ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है।

संरचनात्मक विशेषताओं के आधार पर वर्गीकरण के परिणामस्वरूप तीन व्यापक उपवर्ग बनते हैं।

1. पहले उपसमूह में अल्फा–हेलिकल संरचनाओं वाले एएमपी होते हैं, जो मुख्य रूप से कीड़ों और मेंढकों के बाह्य कोशिकीय मैट्रिक्स में पाए जाते हैं। इनमें से अधिकांश पेप्टाइड्स एक जलीय घोल में असंचरित होते हैं, लेकिन ट्राइफ्लूरोएथेनॉल, सोडियम डोडेसिल सल्फेट (एसडीएस), मिसेल और लिपोसोम जैसे महत्वपूर्ण माइक्रेलर सांद्रता से ऊपर डिटर्जेंट/सर्फैक्टेंट के संपर्क में आने पर संरचित हो जाते हैं। कैथेलिसिडिन परिवार के एक सदस्य, मानव एएमपी एलएल–37 का इस उपसमूह में गहन अध्ययन किया गया है। कैथेलिसिडिन एमपी में 12–80 अमीनो एसिड होते हैं। कैथेलिसिडिन कशेरुकियों में सबसे विविध एएमपी है, जो मुख्य रूप से चूहों, भेड़, बकरियों, घोड़ों और गोजातीय स्तनधारियों में पाया जाता है।
2. एएमपी के दूसरे उपवर्ग में β शीट संरचना होती है। इस वर्ग में एएमपी शामिल हैं, जैसे कैथेलिसिडिन परिवार से प्रोटीग्रिन, डिफेंसिन और टैचीप्लेसिन। दिलचस्प बात यह है कि लगभग सभी β शीट एएमपी में सिस्टीन अवशेष होते हैं, जो संरक्षित होते हैं और डाइसल्फाइड बांड बनाते हैं। डाइसल्फाइड बांड डिफेंसिन में संरचनात्मक स्थिरता प्रदान करते हैं और प्रोटीज क्षरण को कम करते हैं। β शीट एएमपी समाधान में अधिक संरचित होते हैं और जलीय वातावरण से झिल्ली वातावरण में जाने पर अधिक संरचनात्मक परिवर्तन से नहीं गुजरते हैं। टैचीप्लेसिन और पॉलीफेमुसिन (आर्जिनिन–समृद्ध, अनुक्रम द्वारा 30%) अन्य β शीट एएमपी हैं जो हॉर्सशू केकड़ों के हेमोसाइट्स से अलग किए गए थे।
3. एएमपी के तीसरे और अंतिम उपवर्ग में एक विशिष्ट विस्तारित कॉइल संरचना होती है। इस श्रेणी के अधिकांश एएमपी कैथेलिसिडिन परिवार से हैं और दो या दो से अधिक प्रोलाइन अवशेषों से बने होते हैं जो अल्फा हेलिकल या β शीट जैसे माध्यमिक संरचनात्मक तत्वों को तोड़ते हैं। इंडोलिसिडीन एक ट्रिप्टोफैन–समृद्ध एएमपी है जो गोजातीय न्यूट्रोफिल से अलग होता है। इसमें केवल 13 अमीनो एसिड होते हैं। इंडोलिसिडीन मिसेल की उपस्थिति में एक अच्छी तरह से परिभाषित विस्तारित संरचना के साथ एक अद्वितीय "झिल्ली से जुड़ी पेप्टाइड संरचना" बनाता है।

रोगाणुरोधी पेप्टाइड्स के गुण

रोगाणुरोधी पेप्टाइड्स एएमपी आकर्षक पदार्थ हैं जो बैक्टीरिया और कवक से लेकर पौधों और जानवरों तक विभिन्न जीवों में पाए जाते हैं। ये पदार्थ अपने आणविक आकार और क्रिया के स्पेक्ट्रम में भिन्न होते हैं। इन्हें जन्मजात प्रतिरक्षा प्रणाली का एक महत्वपूर्ण हिस्सा माना जाता है, जो वायरस, बैक्टीरिया और कवक से संक्रमण को रोकता है। हाल के अध्ययनों से यह भी पता चलता है कि एएमपी कैंसर के उपचार में इम्यूनोलॉजिकल मॉड्यूलेटर के रूप में भी कार्य कर सकता है, जैसे कि त्वचा के घावों की रिकवरी और रोग पैदा करने वाले सूक्ष्मजीवों द्वारा गठित बायोफिल्म के उपचार में। एएमपी अक्सर 100 से कम अमीनो एसिड और 5000 डाल्टन से कम आणविक भार वाले पदार्थ होते हैं। एएमपी 2 से 13 तक शुद्ध धनात्मक आवेश दिखाते हैं, जिसमें एक विशिष्ट धनात्मक डोमेन हो सकता है। लाइसिन, आर्जिनिन और कभी–कभी हिस्टिडीन अवशेषों की उपस्थिति धनात्मक प्रकृति से संबंधित

होती है। हाइड्रोफोबिसिटी सभी एएमपी की एक महत्वपूर्ण विशेषता है और इसे पेप्टाइड सीक्वेंस में हाइड्रोफोबिक अवशेषों के प्रतिशत के रूप में व्यक्त किया जाता है, जो वेलिन, ल्यूसीन, आइसोल्यूसीन, एलानिन, मेथिओनिन, फेनिलएलनिन, टायरोसिन और ट्रिप्टोफैन होते हैं। ये आमतौर पर एएमपी में 50% होते हैं। हाइड्रोफोबिसिटी (जलविरोधीता) उस सीमा को नियंत्रित करती है जिस सीमा तक पानी में घुलनशील एएमपी झिल्ली लिपिड बाईलेयर (द्विपरत) में विभाजित हो सकते हैं। पारगम्यता के लिए यह झिल्ली आवश्यक है। हालाँकि, उच्च हाइड्रोफोबिसिटी स्तनधारी कोशिका विषाक्तता और रोगाणुरोधी चयनात्मकता को बढ़ाती है। एम्फिपैथिसिटी एएमपी की एक अन्य विशेषता है। एम्फिपैथिसिटी से तात्पर्य है कि एएमपी में हाइड्रोफिलिक और हाइड्रोफोबिक अवशेषों या डोमेन के सापेक्ष बहुतायता होती है। इसे न केवल प्राथमिक सीक्वेंस स्तर पर बल्कि एएमपी की 2डी या 3डी संरचना में भी धनात्मक और हाइड्रोफोबिक अवशेषों के बीच संतुलन के रूप में भी समझा जा सकता है।

मछली रोगाणुरोधी पेप्टाइड्स

मछली एक ऐसी जीव है जो पानी में रहती है तथा विभिन्न प्रकार के रोगजनकों के संपर्क में रहती है। इन रोगजनकों से बचाव के लिए, मछली में एक प्राकृतिक रक्षा प्रणाली होती है, जिसमें अनुकूली प्रतिरक्षा प्रणाली और जन्मजात प्रतिरक्षा प्रणाली दोनों शामिल होती हैं। रोगाणुरोधी पेप्टाइड्स उनकी प्रतिरक्षा प्रणाली का एक महत्वपूर्ण हिस्सा। ये छोटे पेप्टाइड्स हैं जो मछली के विभिन्न अंगों और ऊतकों में पाए जाते हैं तथा बैक्टीरिया, कवक, वायरस और परजीवी जैसे रोगजनकों को मारने या उनके विकास को रोकने में मदद करते हैं। रोगाणुरोधी पेप्टाइड्स मछली में संक्रमण से लड़ने में मदद कर सकते हैं। इन पेप्टाइड्स के अध्ययन से मछलियों के स्वास्थ्य में सुधार हो सकता है एवं रोग–निवारक पदार्थों का एक नया स्रोत भी तैयार हो सकता है। रोगाणुरोधी पेप्टाइड्स, जो प्राकृतिक रूप से मछली में पाए जाते हैं, संक्रमण से लड़ने की क्षमता प्रदान करते हैं। पेप्टाइड्स संक्रमण को रोकने और स्वास्थ्य बनाए रखने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। रोगाणुरोधी पेप्टाइड्स मछली की विभिन्न प्रजातियों में भिन्न–भिन्न प्रकार के होते हैं, जो उन्हें विभिन्न परिस्थितियों और वातावरण के अनुकूल होने की अनुमति देते हैं

मछली में सबसे आम एएमपी अल्फा हेलिकल एम्फिपैथिक पेप्टाइड्स हैं। सभी प्रमुख एएमपी वर्ग, जैसे कैथेलिसिडिन, हेपसीडिन, डिफेंसिन, हिस्टोन–व्युत्पन्न पेप्टाइड्स और पिस्किडिन, मछली में मौजूद होते हैं। पैराडॉक्सिन मछली में पाए जाने वाले रोगाणुरोधी पेप्टाइड्स का पहला परिवार था। यह छिद्र बनाने वाली अल्फा हेलिकल संरचना के साथ लंबाई में 33 अमीनो एसिड अवशेष है। मछली के आंतरिक अंग, मांसपेशियां, कंकाल और त्वचा का श्लेष्म सभी शारीरिक रूप से सक्रिय पेप्टाइड्स के स्रोत हैं। इस प्रकार रोगाणुरोधी पेप्टाइड्स एक अद्वितीय पदार्थ हैं जो मल्टीड्रग–प्रतिरोधी जीवों के इलाज के लिए सर्वोत्तम हैं। यह दिलचस्प है कि एएमपी में कई क्रिया तंत्र हैं और यह एंटीवायरल और कैंसर विरोधी प्रभाव भी दिखा सकता है। पिछले दशक में, एएमपी की प्रभावकारिता में सुधार हुआ है जिससे चिकित्सीय एजेंटों के रूप में विकास हुआ है। मौजूदा एएमपी को संशोधित करने और नए एएमपी को डिजाइन करने से लेकर एएमपी के लिए डिलीवरी सिस्टम का उपयोग करने तक, संशोधित करने के विभिन्न तरीके हैं। एएमपी का रासायनिक संशोधन जैव अनुकूलता में सुधार के लिए सबसें नियोजित एवं सरल तरीकों में से एक है। इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए हाल ही में कई सह–संयोजक और गैर–सहसंयोजक वितरण प्रणालियाँ बनाई गई हैं। कुल मिलाकर, एंटीबायोटिक प्रतिरोध के उद्भव और इस तथ्य के कारण कि अगले दशक में कई एएमपी–आधारित दवाएं विकसित हो रही हैं या निर्माणाधीन हैं, इन नवीन यौगिकों के लाभों का एहसास होगा और उनका व्यावसायीकरण बढ़ेगा।

आंत के लिए लाभकारी आहार फाइबर का वर्गीकरण

अंजू काला, वैभव खरडे, एल सी चौधरी एवं अभिषेक चंद्र सक्सेना
भाकृअनुप–भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, इज्जतनगर

आहारी फाइबर विभिन्न पथों के माध्यम से होस्ट कल्याण की भूमिका निभाते हैं, जो उनके आहारिक मूलों से जुड़े विविध पथों के साथ, विशिष्ट भौतिक और रासायनिक संरचनाओं के साथ, खाद्य के गुणस्तर और गुट संबंधित शारीरिक गुणों के साथ जुड़े होते हैं। आहारी फाइबर के विभिन्न प्रकार और स्रोतों की विशेष भौतिक और भौतिक विशेषताएँ होती हैं, जिनमें अद्वितीय भौतिकरण और शारीरिक गुण होते हैं, इसलिए आहारी फाइबर से जुड़े लाभकारी स्वास्थ्य परिणामों के लिए जिम्मेदार प्रमुख चरणों को समझना कठिन और अत्यावश्यक है। इस व्यापक विश्लेषण में विभिन्न प्रकार और प्रक्रियाओं से प्राप्त आहारी फाइबर की विभिन्न वर्गीकरण और संरचनाओं का संकलन किया गया है । इसके अलावा, आहारी फाइबर प्राकृतिक बैक्टीरिया समुदाय, शारीरिक क्रियाओं और कुल स्वास्थ्य पर कैसा प्रभाव डालते हैं, इस पर विवरण दिया गया है। आहारी फाइबर, माइक्रोबायोटा और स्वास्थ्य को जोड़ने वाले आणविक तंत्रों से हम सामान्य प्रमुख बीमारियों को लड़ने के लिए प्रभावी लक्ष्य खोल सकते हैं।

अपनी जल विशोषणीयता के आधार पर, आहारी फाइबर (DFs) को दो समूहों में विभाजित किया जाता हैः विलयनशील आहारी फाइबर (SDF), जिसमें पेक्टिन, गम, और जेली होती है, और अविलयनशील आहारी फाइबर (IDF), जिसमें सेलुलोज, हेमिसेलुलोज, और लिग्निन शामिल होता है। विशेष रूप से, SDF ने IDF की तुलना में मानवों के लिए अधिक प्रमुख स्वास्थ्य लाभ प्रदान किए हैं, जैसे रक्तचाप की कमी, पाचनतंत्र के विकारों की रोकथाम, और कैंसर की सुरक्षा। संतुलित रूप से SDF से DF का अनुपात 30þ से 50þ के बीच बनाए रखना, आंत्रिक क्रियाओं की विनियमन और कोलेस्ट्रॉल की कमी जैसे दोनों भागों के सकारात्मक शारीरिक प्रभावों के लिए अनुकूल माना जाता है। इस प्रकार, आहार में SDF की विशेषता को बढ़ाने की दिशा में की जाने वाली प्रतियोगिताएँ सामान्यतः मूल्यवान मानी जाती हैं।

आहारी फाइबर की गुणवत्ताऐं

संरचनात्मक गुणवत्ताऐं

यौगिक संरचना की जाँच भौतिक और रासायनिक गुणवत्ताओं की खोज के साथ पॉलिसैक्राइडों की संरचना और गतिविधि के बीच संबंध में महत्वपूर्ण होती है।

1. **आणविक भारः** आहारी फाइबर (DFs) की विलयता, घनत्व, और जेल बनाने की गुणवत्ताएँ उनके आणविक भारों के आधार पर अस्थायी होती हैं। सीताफल, सेब, और आलू से प्राप्त विलयनशील आहारी फाइबर (SDF) के माध्य औसत आणविक भार 84 से 743 kDa, 103 से 485 kDa, और 2 से 1819 kDa के बीच होता है। आमतौर पर, चेन की लचीलता चेन के आधार पर बढ़ती है । उन पॉलिसैक्राइडों के पास उच्चतमोद्धत आणविक भार होता है जो पानी में संतोषजकता को प्रदान कर सकते हैं, जो उनकी जैविकता और भौतिक गुणवत्ताओं को बढ़ावा देने में सहायक हो सकता है।

2. **कार्यात्मक समूहः** आहारी फाइबर (DFs) की भौतिक–रासायनिक और कार्यात्मक विशेषताएँ उनके कार्यात्मक समूहों के आधार पर प्रभावित हो सकती हैं। फूरियर–ट्रांसफॉर्म इन्फ्रारेड स्पेक्ट्रोस्कोपी भौतिक समूहों के बीच मौजूद बॉन्ड्स के बारे में अवलोकन प्रदान करती है। आहारी फाइबर में धरात्मक समूहों (जैसे कि हाइड्रॉक्सिल और कार्बोक्सिल) की प्रमुख मात्रा होती है, जो पानी के अणुओं के साथ हाइड्रोजन बोंड स्थापित करने की क्षमता रखते हैं, जो उनकी भौतिक–रासायनिक और भौतिकी विशेषताओं में योगदान कर सकते हैं।

3. **माइक्रोस्कोपिक रूपरेखाः** आहारी फाइबर (DFs) की माइक्रोस्ट्रक्चरल विशेषताएँ, जिनमें गोंद, आकार, कण व्यवस्था, और आकृति शामिल हैं, उनके भौतिकी वैवेदनिक व्यवहार पर प्रमुख प्रभाव डालती हैं। इस प्रकार, DFs की माइक्रोस्ट्रक्चरल विशेषताएँ उनके स्रोत और श्रेणी पर निर्भरता के

आधार पर विविधता प्रदर्शित करती हैं। बड़े, पोरस, और ढीले व्यवस्थित सतहें कोलेस्ट्रॉल और पित्त की संबंधित सामग्रियों को बांधने की DFs की क्षमता को स्पष्ट कर सकती हैं।

इ. भौतिक–रासायनिक गुणवत्ताऐं

1. **हाइड्रेशन क्षमताः** आहारी फाइबर (DFs) की पानी को आकर्षित करने की क्षमता उनके पाचन तंत्र में पानी को धारण करने की क्षमता (WHC), और उनके फूलने की प्रवृत्ति (SC) से जुड़ी है। WHC DFs द्वारा प्रेशर या सेंट्रीफुगेशन के बाद प्राप्त पानी की मात्रा से संबंधित होता है। उच्च WHC वाले DFs के संरचित खाद्य के संरचना को फिर से आकार देने और कैलोरिक सामग्री को कम करने में सहायक हो सकते हैं। इसके अलावा, उच्च WHC वाले DFs मस्तिष्कीय क्रिया की प्रक्रिया को बढ़ा सकते हैं, जिससे भूख की भावना पर प्रभाव पड़ सकता है और शरीर का वजन प्रबंधन करने के लिए कार्य कर सकता हैं।

2. **तेल–धारण क्षमता (OHC):** तेल–धारण क्षमता (OHC) आहारी फाइबर (DFs) द्वारा धारित जा सकने वाले तेल की मात्रा से संबंधित है, और यह तेल या तेल के स्राव को अपशिष्ट में रोकने की DFs की क्षमता के साथ संबंधित है। उच्च OHC वाले DFs का खाद्य अमल्शन को स्थिरीकरण करने और पाचन तंत्र के भीतर तेल पाचन और अवशोषण को कम करने में उपयोग होता है। DFs की मूल स्थिति और रासायनिक विन्यास उनकी OHC पर प्रभाव डालने वाले प्रमुख कारक हैं। इसके अलावा, विशेषताएँ जैसे कि घनत्व, सतह विशेषताएँ, और हाइड्रोफोबिक प्रकृति भी उनकी OHC में योगदान करती हैं। घनत्व कम होने पर अधिक पोरसिटी और विस्तारित सतह क्षेत्र होता है, जो उनकी क्षमता को लिपिड घटकों को अवशोषित या बाँधने की बढ़ावा देता है।

3. **पित्ताशय कील, कोलेस्ट्रोल, और धातु आयन बाँधने की क्षमताः** आहारी फाइबर (DFs) की अंतर्गत पित्त लवण और कोलेस्ट्रॉल को सही से जोड़ने की स्वाभाविक क्षमता होती है। पित्त लवण आहारी फाइबर की बाईं आंत में खाद्य चर्बी की पाचन और आसिमिलेशन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। DFs की क्षमता बिल पित्ताशय कील से जुड़ने की साथ–साथ उनकी क्षमता से संबंधित होती है जो लिपिड स्तर को कम करने की क्षमता कहलाती है, जिसे सामान्यतः उनके hypolipidemic प्रभाव के रूप में संदर्भित किया जाता है।

4. **फर्मेंटेबिलिटीः** यह एक प्रोसेस है जिसमें आहारी फाइबर (DFs) को बड़ी आंत (सीकम) में छोटे फैटी एसिड्स (SCFAs) में घटित किया जाता है। यह बड़े आंत में कैलोनिक बैक्टीरिया द्वारा किया जाता है। पेक्टिन जैसी आहारी फाइबर को आसानी से आंतिक बैक्टीरिया द्वारा विकिरणित किया जा सकता है, जबकि अविलयनशील आहारी फाइबर जैसे सेलूलोज का यह प्रक्रिया नहीं होता है। पेक्टिन, उसकी जटील और अधिक शाखायुक्त संरचना के कारण, कोलोनिक बैक्टीरिया द्वारा उत्पन्न किए गए विभिन्न ग्लायकोसिडेज़ द्वारा विकिरण के लिए प्रयुक्त होती है। दूसरी तरफ, ग्लूकोज की एक रेखांकित श्रृंखला से बनी सेलूलोज, पाचन एंजाइमों का पहुँच को सीमित कर सकता है। बड़े आंत में इसकी न्यूनतम विलेयता के कारण, सेलूलोज का विकिरण नहीं होता है।

निष्कर्ष

आहारी फाइबर्स आंत में पारिस्थितिकता और मेजिकल संतुलन को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। विभिन्न स्रोतों से उत्पन्न होने वाली, आहारी फाइबर (SDF) सामग्री और रासायनिक संरचनाओं में विशिष्ट भिन्नताएँ प्रदर्शित करती हैं, जिनसे विविध भौतिकरूपी गुणधर्म और भौतिकी भूमिकाएँ पैदा होती हैं। इसके अलावा, विभिन्न प्रकार की आहारी फाइबर में स्वाभाविक रूप से मौजूद संरचनात्मक अंतर आंत माइक्रोबायोटा की संरचना और गतिविधियों को आकार देने में सहायक होते हैं ताकि लाभकारी संक्षिप्त फैटी एसिड (SCFAs) उत्पन्न हो सकें। ये SCFAs, उपयोगकर्ता के समूल तत्व संतुलन को बनाए रखने और समूल उपयोगकर्ता कल्याण को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

मछली मांसाहार एवं मानव संसर्ग रोग

दिनेश कुमार शर्मा
भाकृअनुप–केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान, मकदूम, मथुरा (उ.प्र.)

पौष्टिक भोजन के प्रति जागरूकता एवं बढ़ती आय के कारण वर्तमान परिस्थितियों में लोगों की मांस आहार की प्रवृत्ति बढ़ी है। वैसे भी पशु मांस से प्राप्त प्रोटीन ऐमीनो एसिड का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। पशु से प्राप्त आहार में मछली आहार का महत्वपूर्ण स्थान है जिससे मानव खाद्य के रूप में उत्तम गुणवत्ता वाली प्रोटीन एवं वसा प्राप्त होती है। विश्व स्तर पर भुखमरी एवं कुपोषण के विरुद्ध संघर्ष में भी मछली की महत्वपूर्ण भूमिका है। प्रोटीन का प्रमुख स्रोत होने के साथ–साथ मछली से हमें दीर्घ श्रृंखला वाले ओमेगा–3 वसा अम्ल, आयोडीन, विटामिन–डी एवं कैल्शियम प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते हैं। मछली मांस से प्राप्त ये पोषक तत्व मानव त्वचा एवं अस्थियों को स्वस्थ रखने के लिए आवश्यक हैं और मछली मांस इन पोषक तत्वों की आपूर्ति में अद्वितीय स्थान रखता है यही कारण है कि विकासशील देशोंमें मछली को आहार का प्रमुख स्रोत माना जाने लगा है और पशु प्रोटीन के रूप में मछली भोजन का मुख्य हिस्सा या एकमात्र स्रोत बन गया है। भोजन के रूप में मछली अनेकों स्वास्थ्य समस्याओं के उपचार हेतु प्रयोग में लाई जाती है। उदाहरणार्थ ग्वाइटर, एक आयोडीन अल्पता जनित रोग, में मछली का प्रयोग अत्यंत लाभकारी पाया गया है।

खाद्य एवं कृषि संगठन (संयुक्त राष्ट्र संघ) की रिपोर्ट के अनुसार महिलाओं में गर्भधारण से लेकर पैदा संतान के दूसरे जन्मदिन तक अर्थात 1000 दिवस की अवधि में बच्चों के भौतिक एवं मानसिक विकास के लिए पौष्टिक आहार की महत्वपूर्ण भूमिका है और मछली का इस अवधि मेंभोजन के रूप में प्रयोग बाल विकास से महत्वपूर्ण योगदान कर सकता है। यही कारण है की मछली से प्राप्त उत्पाद चाहे वह पेस्ट,केक,पाउडर के रूप में हो काफी लोकप्रिय होते जा रहे हैं। मछली आहार का मानव जीवन में प्रचलन निरंतर बढाने के साथ ही मछलियों और जल जनित मानव रोगों का खतराभी बढ़ा है। पशुजन्य रोगों में मछली आहार से उत्पन्न अनेक संक्रमण मानव स्वास्थ्य के लिए खतरा हो सकते हैं।

पशुजन्य परजीवी रोग मानव में काफी प्रचलित हैं। अन्य पशुओं की तरह ही मछली का आहार के रूप में प्रयोग या संसर्ग मानव में परजीवी रोगों को जन्म दे सकता है। इन मछली जनित परजीवी कारकों में पर्णकृमि (ट्रेमाटोड़),फीता कृमि (सिस्टोड़),एवं गोल कृमि (निमेटोडस) तो है ही आदिजीवी (प्रोटोजोआन) परजीवी भी शामिल हैं जो वैश्विक रूप से मानव स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं।

मछली जनित संसर्ग रोग मानव में अधिकतर अधपके मछली खाद्य उत्पादों के भोजन के रूप में प्रयोग करने से होते हैं या फिर मछली के संसर्ग और खाद्य उत्पादों को असावधानीपूर्वक तैयार करते समय अस्वच्छ व्यवहार के कारण सवंमित हो जाने से होते हैं। स्वस्थ और स्वास्थ्यवर्धक भोज्य पदार्थों के रूप में मछली प्रयोग के लिए आवश्यक हैकि मछलीजन्य परजीवी रोगों की भली–भांति जानकारी लोगों तक पहुंचे ताकि अपने स्वास्थ्य रक्षा के साथ–साथ मछली का आहार के रूप में अधिक–अधिक प्रयोग कर सकें।

भोजन के रूप में प्रयोग की जाने वाली मछलियां चाहे वह ताजा पानी या समुद्र पानी से प्राप्त हैं अनेक परजीवियों के लिए पोषक का कार्य करती है (शम्सी 2019)। इन परजीवियों में से अनेक परजीवी मानव में रोग उत्पन्न करने में समर्थ हैं। बड़ी संख्या में होने के बावजूद मछली जन्य मानव रोगों की चर्चा कम ही की जाती है। यही कारण है की मछली परजीवीजन्य रोग जाने–अनजाने नजर अंदाज रह जाते हैं। कभी–कभी प्रचलित खाद्य पदार्थ निरीक्षण मान कभी इन परजीवी संक्रमणों को भली–भांति दृष्टिगोचर नहीं कर पाते हैं। अधपके,कच्चे मछली खाद्य पदार्थों का बढ़ता प्रचलन एवं जलवायुपरिवर्तन भी इन रोगों को व्यापक बनाने और फैलाने में सहयोग कर करते हैं। मछलीजन्य परजीवी रोगों का खतरा कितना बड़ा है इसका अंदाजा हम इस बात से लगा सकते हैं कि वर्तमान में ताजा जल मछलीजन्य यकृत पर्ण कृमि से सवंमित लोगों की संख्या 45 मिलियन है और लगभग 680 मिलियन लोगों को इस संक्रमण का खतरा है (साईजंथा एवं सहयोगी 2021)।

सामुद्रिक खाद्य या मछलीजन्य मानव परजीवी रोगों में हेल्मिंथ परजीवियों की विशेष भूमिका है क्योंकि सामुद्रिक पारिस्थितिकियों में इनकी विविधता एवं प्रचुरता है। इसलिए मछलियों में इनका संक्रमण अधिक प्रभावी है (ऑग्वीवु एवं सहयोगी 2014)। भोजन में प्रयोग होने वाली अनेक मछलियां इन हेल्मिंथ परजीवियों के जीवन चक्र में माध्यमिक या वाहक पोषक का कार्य करती हैं। फिर खाद्य श्रृंखला में प्रयोग की जाने वाली मछलियों का आकार भी उनके परजीवियों से संक्रमण होने की संभावना को निर्धारित करता है और बड़े आकार की मछलियों की परजीवी संक्रमण से प्रभावित होने की संभावना अधिक होती है। मछलीजन्य अनेक मानव परजीवियों का मछलियों में प्रभाव अलक्षणिक रहने के कारण सवंमित मछलियों की पहचान कठिन होती है विशेष रूप से परजीवी की संक्रामक अवस्था का आकार और संक्रमण प्रचलन दर कम होने की स्थिति में (लोरी एवं स्मिथ, 2007 एवं शम्सी एव सुथार 2016)।

अनेकों मछली परजीवी मानव संक्रमण की क्षमता रखते हैं जिनमें से कुछ बहुत कम परंतु कुछ अत्यंत हानिकारक होते हैं तथा घातक एलर्जी या पाचन तंत्र संबंधी समस्याओं जैसे अपच, पेटदर्द, दस्त के अतिरिक्त मस्तिष्क रक्तस्राव, पक्षाघात और कैंसर जैसी स्वास्थ्य समस्याओं को जन्म दे सकते हैं (कोंग और एलिसीखा एवं सहयोगी 2021)। आमतौर पर मछलीजन्य मानव परजीवी रोग निम्न प्रकार के हैं।

पर्णकृमि रोगः पर्णकृमि वर्ग के कई परजीवी मछली आहार को ग्रहण करने या मछली के निकट व्यवहार से मानव रोग का कारण हैं। उदाहरणार्थ क्लोनोरकिससाइनेंसिस, ऑपिसथोरकिसवाइवररिनी, एवं ऑपिसथोरकिसफेलीनियस जो यकृत को प्रभावित करने बाले पर्णकृमि हैं, मछलियों के मानव व्यवहार–आहार से संचरित होते हैं। इसी प्रकार पैरागोनिमसवेस्टर्मिनाई एवं पैरागोनिमसहेटेरोट्रॉप्स पर्णकृमि क्रेब्स के द्वारा संचरित होते हैं। इन सभी परजीवियों के जीवन चक्र में मछलियां या क्रेब्स माध्यमिक पोषक का कार्य करते हैं। यकृत को प्रभावित करने वाले फ्लूक्स की मानव शरीर में अधिक संख्या पित्त नली शोथ कोजन्म देती है और नली की दीवारों को क्षति पहुंचाकर यकृत को प्रभावित करती है जिससे प्रभावित मानव में पाचन संबंधी समस्याऐं विकसित होती हैं (हंग 2015)। फ्लूक्स संक्रमण मानव शरीर में कॉलंजाइटिस, कॉलिडीकोलियोथिस, पेनक्रिएटाइटिस एवं कॉलिनजिओसार्कोमा का कारण भी बन सकते है। पैरागोनिमस जो एक फेफड़ों को प्रभावित करने वाला केकड़ा जन्य फ्लूक परजीवी रोग है, मानव संक्रमण के रूप में निमोनिया को जन्म देता है। मछलीजन्य परजीवी संक्रमण दक्षिणी पूर्वी एशिया क्षेत्र में ,विशेष रूप से चीन एवं थाईलैंड, जहां मछली आहार का अधिक प्रचलन है व्यापक रूप से पाया जाता है। यह पर्णकृमि समुद्री, खारे और ताजेपानी आदि से प्राप्त सभी प्रकार की मछलियों में पाए जाते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन की सूची के मछली संसर्गजन्य मानव रोगों में पर्णकृमि संक्रमण उदीयमान रोगों में उल्लेखित है। हेटेरोफाइस हेटेरोफाइस एवं ऑपिसथोरकिस वाइवररीनी जो मानव में मछलीजन्य संसर्ग परजीवी रोग को जन्म देते हैं, के संक्रमण में कुत्ते एवंबिल्लियों की भूमिका भी हो सकती है। इसलिए ऐसे रोगों की रोकथाम के लिए इन पशुओं में इन परजीवियों के संक्रमण की निगरानी आवश्यक है।

फीता कृमि रोग

मानव परजीवी रोगों में स्टिोड़ वर्ग के परजीवियों की महती भूमिका भी है जो फीता कृमि के रूप में जाने जाते हैं और यह आकार में 20 मीटर तक लंबे हो सकते हैं। डाइफाइलोबोथ्रिओसिस मानव का एक सिस्टोड़ परजीवी रोग है। यद्यपि आमतौर पर यह अलाक्षणिक रोग है और प्राण घातक नहीं है तथा पिरोग प्रभावित मानव दस्त, पेट दर्द, रक्ताल्पता, शारीरिक भार क्षय एवं विटामिन बी–12 की अल्पता जैसी समस्याओं का शिकार हो सकता है। अनुमानित रूप से विश्व में 20 मिलियन मानव इस रोग से प्रभावित हैं (स्कैज एवंकटजा, 2016)।

गोलकृमि रोग

मछली जन्य परजीवी रोगियों में गोल कृमियों काभी योगदान है और यह संक्रमण ताजा और सामुद्रिक जल में पाए जाने वाली मछलियों में प्रभावी रूप से पाया जाता है। मछलीजन्य मानव गोल कृमि रोगों में ऐनिसाकिस,कॉन्ट्रासिकम एवं हस्टेरोथइलेसियम संक्रमण विशेष हैं जो मानव आहार में प्रयोग की जाने वाली मछलियों में पाए जाते हैं। नेथोस्टोमिएसिस, एक मछलीजन्य मानव गोलकृमि रोग है जोनेथोस्टोमा प्रजाति के परजीवियों के कारण होता है और मानव स्वास्थ्य को एलर्जी के रूप में प्रभावित करता है जिससे प्रभावित मानव जीम चलाना, पेटदर्द, उल्टी जैसी समस्याओं से प्रभावित होता है। रोग

से प्रभावित मानव में गोलकृमि लार्वा अपनी गमन यात्रा में त्वचा शोथ को जन्म देते हैं जिससे त्वचा की सूजन आ जाती है। इस लारवा का मानव रोगी के फेफड़े, नेत्र, कान, पाचन और उत्सर्जन अंगों में परिगमन काफी घातक हो सकता है। दक्षिणी पूर्वी एशिया के देशों में यह रोग प्रभावी रूप से देखा गया है।

आदिजीवी रोग

आदिजीवी परजीवियों में क्रिप्टोस्पोरिडियम, टॉक्सोप्लाजमा एवं जियार्डिया प्रजाति के परजीवी मछलियों से उल्लेख किए गए हैं और मानव सहित अनेक मेरुदंडधारियों में रोग उत्पन्न करने वाले के लिए जाने जाते हैं। मानव मेंइनका संक्रमण दूषित पानी या भोजन के कारण होता है। क्रिप्टोस्पोरिडियम परजीवी की चार प्रजातियां मछलियों में पाई गई हैं। यद्यपि अभी तक मछलियों से इस आदि परजीवी का मानव संक्रमण उल्लेखित नहीं है तथापि संभावनाओं को नकारा नहीं जा सकता। क्रिप्टोस्पोरिडियम मानव की रोगरोधी शारीरिक क्षमता की कमी की स्थिति में घातक दस्त का कारण बन सकता है। जियार्डिया डयूडिनेल आदि परजीवी वैश्विक रूप से अति प्रचलित संक्रमण है और लगभग 280 मिलियन मानव में प्रतिदिन दस्त के लिए उत्तरदायी है। पानी और सवंमित अधपके/कच्चे मांस आदि के सेवन से यह रोग मानव में देखा जाता है। टॉक्सोप्लाजमागोंडई अपनी रोगकारी क्षमता के लिए वैश्विक रूप से जाना जाता है और जन स्वास्थ्य समस्या के लिए उत्तरदायी है। क्रिप्टोस्पोरिडियम की तरह यह परजीवी भी शारीरिक रोग प्रतिरोधी क्षमता के ह्रास की स्थिति में घातक हो जाता है और मृत्युकारी है। यद्यपि मछलियों के संसर्ग से मानव टॉक्सोप्लाजमा संक्रमण के पर्याप्त प्रमाण नहीं है तथापि संभावनाओं को नकारा नहीं जा सकता और इस दिशा में आगे अध्ययन की आवश्यकताहै।

मछलीजन्य मानव परजीवी संसर्ग रोगों की रोकथाम चुनौतीपूर्ण है और इसके लिए प्रभावी रणनीति की आवश्यकता है। मछली पालन में तालाबों की नियमित सफाई और समय–समय पर परजीवी नाशन इस रणनीति का महत्वपूर्ण हिस्सा है। ऐसा करके हम रोग कारक परजीवियों की माध्यमिक पोषकों को समाप्त या कम कर उनके जीवन चक्र को ध्वस्त कर सकते हैं जिससे मानव रोग संभावनाएं कम होगी। इसके अतिरिक्त भली–भांति पके मछली आहार कोग्रहणकरना सुनिश्चित कर मछलीजन्य मानव परजीवी रोगों को सीमित कर सकते हैं। मछली पालने, पकडने, पकाने और प्रसंस्करण में साफ–सुथरा व्यवहारकर, दस्तानों एवं आंख पर चश्मा तथा एप्रैन का प्रयोग करके भी हम मानव संक्रमण को पर्याप्त रूप से कम कर सकते हैं। यह भी आवश्यक है कि इन क्रियाओं को करने के दौरान हम कुछ खाने–पीने का उपक्रम ना करें। मछलियों या मछलियों से प्राप्त उत्पादको 62 डिग्री सेंटीग्रेड तक 15 सेकंड गर्म करना सुनिश्चित कर हम परजीवियों के संक्रामक अवस्थाओं को नष्ट करना सुनिश्चित कर सकते हैं और मानव रोगों के खतरों को कम से कम कर सकते हैं।– 35 डिग्री सेंटीग्रेड के तापमान पर खाद्य पदार्थों को 15 घंटे तक हिमीकृत करके भी इन परजीवी संक्रामक अवस्थाओं को नष्ट करने के लिए प्रभावी है।

संदर्भ

कोंगडब्ल्यू, इलेशीखा एच एम 2021 बायोलॉजी, एपिडेमियोलॉजी , क्लीनिकल फीचर्स, डायग्नोसिस एंडट्रीटमेंट ऑफ सिलेक्टेड फिश–डेरिवेद पैरासिटिक जूनोसिस। ये लजर्नल ऑफ बायोलॉजी एंड मेडिकल। 94 (2): 297 –309

हंग ऐन एम, डंग डीटी, अन्ह ऐनटी ऐल, वैनपीटी, थान्हबी ऐन, हा ऐन वी, हैंन एच वी कान्ह एल ऐक्स2015 करंट स्टेटस ऑफ फिश–डेरिवेद जूनोटिक त्रेमाटोडे इन्फेक्शन्स इनगिआवीन डिस्ट्रिक्ट, निम्ह बिन्हप्रोविंस, वियतनाम। पैरासाइट वेक्टर्स , 8(1): 21

शम्सी एस 2019 सीफूड–बोर्न पैरासिटिक डिजीजः ए ''वनहेल्थ'' एप्रोच इस नीडेड। फिशेस, 4 (1): 9

शम्सी एस, सुथरजे। 2016 ए रिवाइज्ड मेथड ऑफ एक्सामिनिंग फिश फॉर इन्फेक्शन्स ऑफ जूनोटिक निमेटोड लारवे। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ फूड माइक्रोबायोलॉजी, 227: 13–16

स्कूल्जटी, कूटचाआर 2016 फिश डेरिवेद जूनोटिक सिस्टोडेस (डिफीलोबोथ्रियम एंडरिलेटिव्स) इनकोल्डक्लीमेट्सः ए नेवर एंडिंग स्टोरी ऑफ नेग्लेक्टेड एंड (री) इमर्जेंट पैरासाइटस। फूडवाटर बोर्न परसिटोलॉजी। 4: 23 –38

सैजनथा डव्लू, सिठिथ वार्णपी, पाटेनीटी एन, अन्द्रूसआर एच 2021 फूडबोन जूनोटिक पैरासाइटस ऑफ दी फैमिली ओपिस्थोर चीडी। रिसर्च इनवेटर नरीसाइंसेज, 135: 404–411

ओबेबू ए.इ., ओकाकासी. इ, ओरिभाबोरबीजे। 2014 गैस्ट्रोइंटेस्टिनल हेल्मिन्थ पैरासाइट कम्युनिटीऑफ फिश स्पीशी जइन ए नाइजर डेल्टाक्रीक, नाइजीरिया। जर्नल ऑफ एसोसिस्टम्स, 2014246283 : 1 –10

लौरीटी, स्मिथ एस.ए. 2007 एक्वेटिक जूनोसिस एसोसिएटेड विथ फूड, बैत, ऑर्नामेंटल एंड ट्रॉपिकलफिश। जर्नल ऑफ अमेरिकन वेटेरीनरी मेडिकल एसोसिएशन, 231 (6):876–880

कृषि

वर्मी कम्पोस्टिंग के माध्यम से पशुधन अपशिष्ट प्रबंधन

प्रज्ञा भदौरिया[1], अंजनी कुमार एवं सीमा यादव[2]
भा.कृ.अनु.प.–कृषि प्रौद्योगिकी अनुप्रयोग अनुसंधान संस्थान, पटना[1]
भा.कृ.अनु.प.–कृषि प्रौद्योगिकी अनुप्रयोग अनुसंधान संस्थान, कानपुर[2]

परिचय

हाल के वर्षों में, जैविक कचरे का निपटान घरेलू, कृषि और औद्योगिक स्रोतों में बढ़ती पर्यावरणीय और आर्थिक समस्याएँ का अहम कारण बना हुआ है। जैसे–जैसे बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकताओं को पूराकरने के लिए पशुधन उत्पादन बढ़ रहा है, ठोस और तरल मवेशी अपशिष्ट का उत्पादन भी तेजी से बढ़ रहा है। एक शोध के अनुसार ग्रामीण क्षेत्र प्रतिदिन 0.3 से 0.4 मिलियन टन (MT) कचरा पैदा करते है, जिसमे केवल 56.19 प्रतिशत जैविक कचरे का ही उपयोग किया जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में उत्पन्न होने वाला कचरा प्रकृति में जैविक होता है, जिससे इसका प्रबंधन बहुत आसान हो जाता है। यह कचरा ज्यादा नुकसान नहीं पहुंचाता, क्योंकि इसे खाद और अन्य सरल कचरा प्रबंधन प्रोटोकॉल द्वारा आसानी से प्रबंधित किया जा सकता है। खाद में उनका रूपांतरण सबसे पहले पर्यावरण को साफ करने, जैविक खाद की आपूर्ति बढ़ाने और तीसरा, भूजल प्रदूषण को कम करने के उद्देश्य से किया जाता है। इस समस्या के समाधान के लिए कई अलग–अलग प्रौद्योगिकियाँ विकसित की जा रही है। गोबर की उपयोगिता के कई तरीके मौजूद हैं, एरोबिक और एनारोबिक तरीके आशाजनक प्रतीत होते हैं।यद्यपि, एरोबिक तरीकों में से जैविक ठोस अपशिष्ट प्रबंधन के लिए वर्मी कम्पोस्टिंग तकनीक के कई फायदे हैं और हाल के वर्षों में इस पर अच्छी तरह ध्यान दिया गया है।सरकार भी शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में ठोस अपशिष्ट निपटान के लिए स्वच्छ भारत अभियान के तहत विभिन्न घटक लागू कर रही है। धन सृजन के लिए टिकाऊ पशुधन अपशिष्ट प्रबंधन प्रणाली को डिजाइन करने और बढ़ावा देने के लिए वर्मी कम्पोस्टिंग सबसे अच्छे समाधानों के रूप में काम कर सकता है। वर्मी कम्पोस्टिंग पिछले दो दशकों से छिटपुट रूप स चलन में है। परन्तु अब समय आ गया है कि वर्मी कम्पोस्टिंग पशुधन अपशिष्ट प्रबंधन के साथ–साथ फसल अवशेष प्रबंधन और मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने में उपयोग में लाया जाये।

वर्मी कम्पोस्टिंगः अर्थ और परिभाषा

कम्पोस्ट जैविक कचरे के सूक्ष्म जैविक अपघटन से प्राप्त उत्पाद है। इसके विपरीत, वर्मी कम्पोस्ट या वर्मी कास्टिंग केंचुओं द्वारा जैविक कचरे के पूर्ण चूर्णीकरण द्वारा उत्सर्जित उपयोगी, दानेदार कास्टिंग को संदर्भित करता है। वर्मी कम्पोस्टिंग का उस समाज में अत्यधिक उपयोग होता है जहां कृषि और पशुधन जीवन यापन का मुख्य स्रोत है। वर्मी कम्पोस्टिंग एक खाद बनाने की तकनीक है, जो केंचुओं को नियोजित करके जैविक मलबे को ह्यूमस जैसे उत्पाद में बदल देती है। वर्मी कम्पोस्टिंग एक ऐसी एरोबिक प्रक्रिया है, जिसमें केंचुए जानवरों और पौधों के अपशिष्ट को उच्च–पोषण सामग्री से भरपूर खाद में परिवर्तित करते हैं। वर्मी कम्पोस्ट केवल केंचुओं के मलमूत्र को संदर्भित करता है, जो मिट्टी और पौधे के शरीर को आवश्यक पोषक तत्व, सांद्रता,संरचना, उर्वरता और जलधारण क्षमता प्रदान करता है। यह एक स्वच्छ और प्राकृतिक तरीका है जो जैव अपशिष्टों को बनाने और उपयोग करने का कारण बनता जा रहा है।

वर्मी कंपोस्टिंग के लाभ और उपयोग

वर्मी कम्पोस्टिंग का मुख्य उद्देश्य बागवानी और कृषि क्षेत्र में उर्वरक शील और स्वास्थ्यपूर्ण खाद (कम्पोस्ट) बनाना है, जिसे कीटाणुआ की मदद से बनाया जाता है। वर्मी कम्पोस्ट का प्रमुख लाभ यह है कि इसका उपयोग फसल के किसी भी चरण में कृषि, बागवानी, सजावटी और सब्जियों जैसी सभी फसलों के लिए किया जा सकता है। यह किसानों को प्राकृतिक रूप स उर्वरक प्रदान करने का एक सस्ता और स्थायी तरीका है। वर्मी कम्पोस्टिंग एक पर्यावरण–जैव–प्रौद्योगिकी पद्धति है जिसके निम्नलिखित क्षेत्रों में विविध लाभ और अनुप्रयोग हैं:

जैव अपशिष्टों का उपयोग

वर्मी कम्पोस्टिंग में कीटाणुओं का उपयोग जैव अपशिष्टों (जैसे कि पशु अपशिष्ट, पेड़ों के पत्ते, रेजिड्यूअल फूड वेस्ट) को बदल कर उर्वरकशील और स्वस्थ किस्म की खाद में परिणामित करता है। यह अपशिष्ट संचय को लगभग 30% तक कम कर देता है।

प्लांटफिजियोलॉजी

वर्मी कम्पोस्ट आवश्यक पोषक तत्व प्रदान करके पौधों के उत्कृष्ट विकास को बढ़ावा देता है। यह बीज के अंकुरण और पौधे की उपज में भी मदद करता है। वर्मी कम्पोस्ट पोषक तत्व और ह्यूमसयुक्त मिट्टी प्रदान करता है जो मिट्टी को कंडीशन करता है और पौधे के विकास को पोषण देता है।

मृदाफिजियोलॉजी

वर्मी कम्पोस्ट बनाने की प्रक्रिया से भूमि को सुगत और स्वस्थ बनाए रखने में मदद मिलती है। वर्मी कम्पोस्ट ह्यूमस युक्त वातावरण प्रदान करके मिट्टी की गुणवत्ता, मिट्टी की संरचना और बनावट में सुधार करता है। यह मिट्टी की जल धारण क्षमता को बढ़ाकर मिट्टी का पोषण और उर्वरता में सुधार करके फसल की उपज बढ़ाता है। वर्मी कम्पोस्ट मिट्टी को सूखे और मिट्टी के कटाव से बचाता है। रासायनिक उर्वरकों के विपरीत, यह मिट्टी के माइक्रो बायोटा को नुकसान नहीं पहुंचाता है।

गुणवत्तापूर्ण खाद का उत्पादन

वर्मी कम्पोस्ट से मिलने वाला खाद उर्वरक शील होता है और पौधों को सुगंध व स्वाद प्रदान करने में मदद करता है, जिससे फसलों का खपत बढ़ती है। यह स्वास्थ्यकर है, समाज द्वारा स्वीकार किया गया है, इसमें बहुत कम या कोई गंध नही होती है।

भोजन और फसल सुधार

वर्मी कम्पोस्ट विभिन्न एजेंटों जैसे कीट, बैक्टीरिया, मोल्ड आदि द्वारा फसल रोगों के प्रसार को कम करता है। यह रसायनों से मुक्तजैव–जैविक भोजन का उत्पादन करके स्वस्थ जीवन को बढ़ावा देता है।

प्राकृतिक उपाय

वर्मी कम्पोस्ट जैविक खेती प्रणाली को बढ़ावा देता है।वर्मी कम्पोस्टिंग एक प्राकृतिक उपाय है जो जैविक कचरे का सही तरीके से प्रबंधन करता है और कृषि प्रणालियों को चुस्त बनाए रखन में मदद करता है।

पारिस्थितिक महत्व

वर्मी कंपोस्ट जैव–अपशिष्ट को लैंडफिल में छोड़े जाने से पौधों की उपयोगी सामग्री में परिवर्तित करके भूमि प्रदूषण को कम करता है। यह लैंडफिल से उत्पादित ग्रीनहाउस गैसों (मीथेन, नाइट्रिकऑक्साइड, आदि) के उत्सर्जन को कम करता है। यह रासायनिक उर्वरकों की मांग को भी कम करताहै।

आर्थिक महत्व

वर्मी कम्पोस्ट एक माध्यम के रूप में कार्य करता है, ग्रामीण क्षेत्रों में व्यक्तियों को रोजगार के अवसर आवंटित करता है। वर्मी कंपोस्टिंग पूरक आय का समर्थन करता है क्योंकि इसमें किसानों को बाजार से उर्वरकों पर निर्भर करने की आवश्यकता नहीं होती है।

कम निवेश और उच्चरिटर्न

वर्मी कम्पोस्ट का निर्माण सस्ता और स्थायी होता है और किसानों को बढ़ते हुए लाभ का अनुभव करने में मदद करता है। इसमें कम पूंजी निवेश और सरल तकनीकों की आवश्यकता होती है। कमनिवेश और उच्च रिटर्न के कारण व्यक्तियों और उर्वरक कंपनियों द्वारा वर्मी कम्पोस्ट का व्यावसायिक उत्पादन जबरदस्त रूप से बढ़ रहा है। भारत में आमतौर पर 1 किलो वर्मी कम्पोस्ट बनाने में 4 से 5 रुपये का खर्च आता है और इसे खुले बाजार में 10–15 रुपये किलो बेचा जा सकता है।

जल संरचना

इससे फूलों और पौधों की अच्छी जल संरचना होती है, जो पौधों को उच्च प्रतिस्थापन क्षमता प्रदान करती है।

वर्मी कल्चर की प्रक्रिया

वर्मी कंपोस्टिंग युनिट

वर्मी कम्पोस्ट कम्पोस्ट पिट या कम्पोस्ट बेड बनाकर प्राप्त किया जा सकता है। मुख्य रूप से प्रचुर कृषि वाले ग्रामीण क्षेत्र और कस्बों और शहरों के उपनगर वाणिज्यिक वर्मी–कम्पोस्ट इकाइयों की स्थापना के लिए आदर्श होत हैं, जहाँ वाणिज्यिक डेयरी फार्म या पशु आबादी के कारण सस्ते कच्चे माल(गोबर) और परिवहन लागत कम होती है। इसका निर्माण पिछवाड़े या खेत में भी किया जा सकता है। खाद तैयार करने के लिए आमतौर परप्लास्टिक टैंक या कंक्रीट के टैंक, सीमेंट के गड्ढे का उपयोग किया जा सकता है। टैंक का आकार कच्चे माल की उपलब्धता पर निर्भर करता है। गड्ढे का अनुशंसित आकार 5×5×3 फीट है, जो बायोमास और कृषि अपशिष्ट की मात्रा के सापेक्ष भिन्न हो सकता है। खाई आमतौर पर फूस की घास, सूखी पत्तियों, टहनियों आदि से ढकी होती है।

कच्चा माल

वर्मी कल्चर की प्रक्रिया में कार्बनिक पदार्थों को सरल खनिजों और पोषक तत्वों में तोड़ने के लिए फीड स्टॉक या कच्चे माल जैसे पौध और जानवरों के मलमूत्र और केंचुओं की आवश्यकता होती है। कचरे और गोबर का अनुपात 1:1 होना चाहिए। कच्चा माल केंचुओं के लिए फीड स्टॉक के रूप में कार्य करता है, जिसमें निम्नलिखित आदर्श गुण होने चाहिए इसमें 75% पानी की मात्रा होनी चाहिए और घनत्व 640 lb / ft^3 से कम होना चाहिए। यह किसी भी रसायन, कीटनाशक और टैनिन अवशेषों से रहित होना चाहिए। बायोमास को इकट्ठा करें और इसे लगभग 8–12 दिनों के लिए धूप में रखें। गाय के गोबर का घोल बनाकर ढेर पर छिड़क देंता कि शीघ्र सड़न हो। अब आंशिक रूप से सड़ा हुआ गाय का गोबर, सूखेपत्ते और खेतों और रसोई से एकत्रित अन्य बायोडिग्रेडेबल कचरे को मिला कर बारीक बिस्तर तैयार करें। कृषि अपशिष्ट और गोबर को धीरे–धीरे निर्मित उथली परतों में फैलाएं। इस उद्देश्य के लिए उपयोग किए जाने वाले गड्ढों को उथला रखा जाना चाहिए ताकि किसी भी तरह की गर्मी से बचा जा सके जो केंचुए के विकास को प्रभावित कर सकती है।टैंक में 0.5–1.0 फीट की गहराई तक कटे हुए जैव–अपशिष्ट और आंशिक रूप से विघटित गाय के गोबर को परत के अनुसार डालना जारी रखें।

केंचुए की प्रजातियों का चयन

वर्मी कल्चर को 1 किग्रा /क्यू कार्बनिक पदार्थ को विघटित करने के लिए लगभग 1000–1200 कृ मियों की आवश्यकता होती है। वर्मी कल्चर तकनीक को करने के लिए दुनिया भर में उपयोग किए जाने वाले केंचुओं की सबसे आम प्रजाति ईसेनियाफीटिडा है।' आइसेनियाफोएटिडा'और 'यूड्रिलसयूजेनिया' विदेशी केंचुए हैं और'पेरी ओनीक्सएक्वावेटस' भारत में वर्मी कम्पोस्टिंग के लिए इस्तेमाल की जाने वाली एक देशी केंचुए की प्रजाति है। सभी जैव–कचरे को डालने के बाद मिश्रण के ऊपर केंचुए की प्रजाति को छोड दें और खाद के मिश्रण को सूखे पुआल या बोरों से ढक दें।सबसे पहले, केंचुए जैविक मलबे जैसे पौधों और जानवरों के कचरे को अपनी आंत में ले जाते हैं। फिर, जैविक अपशिष्ट केंचुए की आंत से गुजरते हैं और अमोनियम में और बाद में पौधे के खनिजों और पोषक तत्वों में खनिज हो जाते हैं। पेषणी की पीसने की क्रिया और पाचन तंत्र के रसायन कार्बनिक मलबे को सरल पौधों के पोषक तत्वों में परिवर्तित करने में मदद करते हैं। कृमि अपने पेषणी की पीसने की क्रिया द्वारा कृषि, पौधे और खेत के कचरे को पचाते हैं, और 45–50 दिनों के भीतर कार्बनिक पदार्थ को दानेदार कास्टया "वर्मीकास्ट" उत्सर्जित करते हैं।

वर्मी कम्पोस्ट की कटाई

खाद को ज़्यादा गरम होने से बचाने के लिए इसकी बार–बार जाँच करें। कम्पोस्ट में उचितनमी (40 %) की मात्रा और औसत तापमान (15–25 डिग्री सेल्सियस) बनाए रखने के लिए नियमित रूप से पानी का छिड़काव करें। चींटियों, छिपकलियों, चूहों, सांपों आदि के प्रवेश को रोकने के लिए टैंक को छप्पर की छत से ढक दें और खाद का बारिश के पानी और सीधी धूप से बचाएं। मिट्टी की सतह पर केंचुए के मल या ढलाई देखने के बाद वर्मी कम्पोस्ट कटाई के लिए तैयार है। इस चरण के दौरान, आपको कीड़े और ठोस कचरे को हाथ से अलग करना होगा। केंचुए और ठोस कचरे को अलग करने के लिए 2–3 दिनों तक पानी देना बंद कर देंता कि केंचुए बिस्तर के नीचे की ओर चले जाएं। फिर, खाद को हल्के उपचार के अधीन करें, जिसके बाद केंचुए कूलर बेसकी ओर पलायन करेंगे। अंतमें, छलनी या जाली का उपयोग करके कीड़े और ठोस कचरे को हटा दें।ह्यूमस युक्त, दानेदार और गहरे काले रंग के वर्मी कम्पोस्ट के उत्पादन में आमतौर पर 2–3 महीने लगते हैं।केंचुआ कास्टिंग में नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटेशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम आदि जैसे सरल पोषक तत्व होते हैं, जिनका पौधे सीधे उपयोग कर सकते हैं।

गुणवत्ता जांच और पैकेजिंग

गुणवत्ता की जाँच के समय, मिट्टी की बनावट, रंग, सांद्रता, गंध, नमी आदि मापदंडों को ध्यान में रखा जाता है। वर्मी कम्पोस्ट में दानेदार बनावट, गहरे काले रंग का, हल्का, मिट्टी जैसी गंध और 40% नमी की मात्रा होनी चाहिए।खाद से एक बासी गंध मोल्ड को इंगित करता है या कोई भी खराब गंध अपूर्ण अपघटन को इंगित करता है।पैकेजिंग करते समय, किसी भी पौधे और पशु अवशेषों को हटाने के लिए वर्मी कम्पोस्ट को छान लें।फिर, नमी के नुकसान से बचने के लिए वर्मी कम्पोस्ट को लेमिनेटेड ओवर सैक में स्थानांतरित करें और इसे ब्रांड के नाम, पोषक तथ्यों, उपयोग के लिए दिशा, बाजार मूल्य आदि के साथ लेबल करें। अंत में, यह विपणन के लिए तैयार है, जो नर्सरी, खेती, लैंडस्केपर्स, बागवानों आदि में लगे लोगों को लक्षित करता है।

वर्मी कम्पोस्टिंग के नुकसान

वर्मी कम्पोस्टिंग के कुछ नुकसान इस प्रकार हैः

- वर्मी कम्पोस्ट के संचालन और रख रखाव के लिए अधिक श्रम–शक्ति और कौशल की आवश्यकता होती है।
- वर्मी कम्पोस्टिंग विधि को वर्मी कम्पोस्ट के निर्माण, कटाई और भंडारण के लिए भी अधिक जगह की आवश्यकता होती है।
- तापमान, सीधी धूप, सूखा जैसे पर्यावरणीय कारक प्रक्रिया को प्रभावित कर सकते हैं।
- वर्मी कम्पोस्टिंग एक समय लेने वाली प्रक्रिया है जिस में कार्बनिक पदार्थों को वर्मी कम्पोस्ट में बदलने के लिए कम से कम 2–4 महीने की आवश्यकता होती है।

अपनी छोटी–छोटी बाधाओं को पार करना चाहिए, क्योकि इंसान पहाड़ से नही छोटे–छोटे पत्थरों से ठोकर खाता है।

–अरस्तू

मोटे अनाज (मिलेट्स) की उपयोगिता एवं मूल्यवर्धित उत्पाद

सुधा जुकारिया,* शशि तिवारी** एवं सी० तिवारी***
कृषि विज्ञान केन्द्र ज्योलीकोट, नैनीताल

हमारा देश कृषि प्रधान देश है जहां अधिकांश जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन तथा लोगों के खान–पान में बदलाव के चलते हमारे किसानों की आर्थिक दशा एवं स्वास्थ्य दोनों प्रभावित हो रहे हैं। ऐसे में हमें एक ऐसी तकनीक की आवश्यकता है जो इन दोनों समस्याओं का समाधान कर सके। आज कल अधिकांश लोगों की रूचि व झुकाव चावल व गेहूं की ओर ही अधिक है। जिसके फलस्वरूप किसान भी इन्हीं अनाजों की खेती करना पसन्द करते हैं, परन्तु जलवायु परिवर्तन के कारण कई बार ये फसलें पर्याप्त उत्पादन नहीं दे पाती, जिससे किसानों को आर्थिक समस्या का सामना करना पड़ता है अतः यह आवश्यक है कि उन्हे ज्वार, बाजरा, रागी, कुटकी, कंगनी, सांवा जैसे पौष्टिक अनाजों की खेती की ओर आकर्षित किया जाय।

वर्तमान समय में भारत में मोटे अनाजों के पौष्टिक गुणों के सम्बन्ध में जागरूकता तथा प्रक्षेत्र स्तर पर प्रसंस्करण प्रौद्योगिकियों की कमी एवं व्यंजन बनाने में असुविधा के कारण मोटे अनाजों की खपत कम हो रही है। इस दिशा में भारत सरकार मोटे अनाजों के प्रचार–प्रसार हेतु अभियान चला रही है और वर्ष 2023 को अन्तर्राष्ट्रीय मिलेट वर्ष के रूप में भी मनाया जा रहा है। इससे उपभोक्ताओं में मिलेट्स के प्रति जागरूकता बढेगी और उनकी मांग में वृद्धि होगी, परिणामस्वरूप किसानों की आय में बढोत्तरी होगी।

पौष्टिक धान्य (कदन्न) पौष्टिक अनाजों के अन्तर्गत आते हैं, इनमें मुख्यतः ज्वार, बाजरा, रागी, कंगनी, कोदो तथा सॉवा शामिल है। पोषक तत्वों की मात्रा ज्यादा होने की वजह से एवं प्रोटीन प्राच्य रेषे विटामिन–बी एवं खनिज लवण से भरपूर होनें के कारण कदन्नों को पौष्टिक धान्य कहा जाता है। चूंकि कदन्न ग्लूटेन मुक्त होते हैं, इनका ग्लाइसेमिक सूचकांक कम होता है तथा अन्य अनाजों की तुलना में इनमें कार्बोहाइड्रेड की मात्रा कम पायी जाती है एवं प्रोटीन, रेशे, खनिज अधिक मात्रा में पाये जाते हैं जिस कारण उत्तम स्वास्थ्य व स्वस्थ शरीर के रख–रखाव में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। एक पुरानी कहावत है कि जैसा खान "वैसा साथ" यह वर्तमान में भी सही लगती है, अर्थात सन्तुलित व पौष्टिक आहार उत्तम स्वास्थ्य का मूल मंत्र है।

पौष्टिक धान्य भारत में आहार का पारम्परिक घटक रहे हैं। इसलिये परिवार के अच्छे स्वास्थ्य हेतु मोटे अनाजों को दैनिक आहार में सम्मिलित करना चाहिए। सामान्यतः बच्चों में कुपोषण, आहार सम्बन्धी आवश्यकताओं के बारे में सही–सही जानकारी न होने के कारण होता है। कुपोषण की स्थिति से निपटने के लिये भोजन में मोटे अनाजों का उपयोग करना कारगर है। मोटे अनाज वाली फसलों जैसे– ज्वार, बाजरा, रागी, चीना, कोदो और कूट्टु को मिलेट क्रॉप कहा जाता है। मिलेट्स को सुपर फूड कहा जाता है क्योंकि इसमें पोषक तत्व अपेक्षाकृत अत्यधिक मात्रा में होते है। परंतु वास्तव में मोटे अनाजों का उपयोग अपेक्षाकृत बहुत कम है जबकि ये प्रोटीन, कैलोरी, विटामिन तथा खनिज लवणों के अच्छे स्रोत है। मोटे अनाजों के आटे का व्यजंन विशेष रूप से मधुमेह व हृदय रोगियों के लिये उपयोगी होते है। सामान्य रूप से दैनिक आहार में प्रयोग किये जाने वाले मोटे अनाजों की पोषक गुणवत्ता एवं बनाये जाने वाले व्यंजन निम्न हैं।

1. मंडुवा

मोटे अनाजों में मडुवा सबसे अधिक उगाया तथा खाया जाता है। मडुवा में कैल्शियम सभी अनाजो की तुलना में कई गुना होता है। इसके 100 ग्राम मे 325–350 मिलीग्राम कैल्शियम पाया जाता है। मंडुवे को किसी भी उत्पाद मे मिलाने से रेशा एवं खनिज की उपलब्धता बढ़ जाती है। इसके उत्पाद कैल्शियम तथा लौह तत्व अधिक होने के कारण बच्चों, गर्भवती महिलायें एवं धात्री महिलाओं के लिये बहुत उपयोंगी होते हैं। मडुवे से बिस्कुट, केक, नमकीन व लड्डू आदि स्वादिष्ट एवं पौष्टिक व्यंजन का उपयोग बच्चों के लिये अल्पाहार के रूप में कुपोषण दूर करने में किया जा है। मंडुवे का

पोषण मूल्य गेहूँ और धान की अपेक्षा **(तालिका–1)** अधिक स्वास्त्य वर्धक होती है। मंडुवे के बहु उपयोगी आटे द्वारा निम्न उत्पाद बनाये जाते हैं **(तालिका–2)**

तालिका–1: मंडुवा, धान तथा गेंहूँ मे पौष्टिक तत्वों की तुलना (प्रति 100 ग्राम)

पौष्टिक तत्व	मंडुवा	गेंहूँ	धान
प्रोटीन (ग्रा0)	7.30	11.8	6.80
वसा (ग्रा0)	1.30	1.50	0.50
रेशा (ग्रा0)	3.60	1.20	0.20
लौह (मि0ग्रा0)	3.90	5.30	0.70
कैल्शियम (मि0ग्रा0)	344	41.0	10.0

तालिका–2: बहुउपयोगी आटे से बने उत्पाद

क्रम संख्या	उत्पाद	सामग्री	विधि
1.	मीठी लपसी	बहुउपयोगी आटा– 50 ग्राम चीनी– 20 ग्राम गुनगुना पानी– 120 मिली0	बहु उपयोगी आटा (मंडुवे के माल्ट का आटा–1 कटोरी + भुनी हुई काली सोयाबीन का आटा–1.5 बड़ा चम्मच + गेहूं के माल्ट का आटा–1.5 बड़ा चम्मच) एक बर्तन में पानी गुनगुना कर लें और उसमें बहु उपयोगी आटा मिला लें और चीनी भी डाल दें।
तैयार मीठी लपसी की मात्राः 2 कटोरी **पौष्टिकताः प्रोटीनः 8 ग्राम** **ऊर्जा–256 कैलोरी**			
2.	बिस्किट	बहु उपयोगी आटा–100 ग्राम चीनी–50 ग्राम बेकिंग पाउडर–2.5 ग्राम घी–40 ग्राम दूध–40 मिली0 नमक–2.5 ग्राम	बहु उपयोगी आटा (मंडुवे के माल्ट का आटा–1 कटोरी + भुनी हुई काली सोयाबीन का आटा–1.5 बड़ा चम्मच + गेहूं के माल्ट का आटा–1.5 बड़ा चम्मच + भुनी हुई मूंगफली का आटा –1 बड़ा चम्मच) सभी सामग्री मिलाकर गूंथ लें। आटे की लोई बनाकर मोटी रोटी बेल लें और किसी गोल ढक्कन से बिस्किट के आकार में काट लीजिए। बिस्किट को पहले से गर्म हुए तन्दूर में रखें। बिस्किट तैयार होने में लगभग 15–20 मिनट का समय लगेगा।
तैयार बिस्किट की संख्याः 12 **पौष्टिकताः प्रोटीन–14 ग्राम** **ऊर्जाः 888 कैलोरी**			
3.	बर्फी	बहु उपयोगी आटा –100 ग्राम चीनी–40 ग्राम घी– 10 ग्राम चौलाई दाना या कसा हुआ नारियल–5 ग्राम पानी–110 मिली0	बहु उपयोगी आटा (मंडुवे के माल्ट का आटा–1 कटोरी + भुनी हुई काली सोयाबीन का आटा – 1.5 बड़ा चम्मच + गेहूं के माल्ट का आटा – 1.5 बड़ा चम्मच + वसा रहित दूध का पाउडर – 2 छोटे चम्मच) चाशनी में बहु उपयोगी आटा डालकर अच्छी तरह से मिला लें। एक थाली में थोड़ा सा घी लगाकर बराबर फैला लें और उसके ऊपर नारियल डाल दें। ठंडा होने पर काट लें।

तैयार बर्फीयों की संख्याः 10–12 पौष्टिकताः प्रोटीन–18 ग्राम ऊर्जा–643 कैलोरी			
4.	केक	मैदा–125 ग्राम मंडुवे का आटा 125 ग्राम मक्खन–200 ग्राम पीसी चीनी–250 ग्राम अण्डे–6 बेकिंग पाउडर–2 चम्मच कोको पाउडर–2 चम्मच दूध का पाउडर–2 चम्मच वनीला ऐसेन्स–कुछ बूंदें	मक्खन और चीनी को एक साथ फेंट लें। आटा और सूखे पदार्थ को एक साथ अच्छे से छान कर मिला लें। बाकी सारी सामग्री को भी मिला कर फेंट लें फिर गर्म किये हुए ओवन या गैस तन्दूर के पैन में केक के मिश्रण को रख लें। लगभग 15–20 मिनट में केक तैयार हो जायेगा।

तालिका–3: मंडुवे के विभिन्न प्रकार के बिस्कुट

सामग्री	मीठा–कोकोनट बिस्कुट	मीठा बिस्कुट	नमकीन बिस्कुट
मंडुवे का आटा	100 ग्राम	70 ग्राम	70 ग्राम
मैदा	100 ग्राम	30 ग्राम	30 ग्राम
घी	100 ग्राम	30.–35 ग्राम	35–40 ग्राम
चीनी पिसी हुयी	100 ग्राम	35–40 ग्राम	25–30 ग्राम
कोकोनट पाउडर	2 चम्मच	–	–
दूध पाउडर	2 चम्मच	1 ग्राम	1 ग्राम
दूध	100 मिली0	–	–
नमक	–	0.6–0.7 ग्राम	2.5–3.0 ग्राम
खाने का सोडा	–	0.2–0.3 ग्राम	0.2–0.3 ग्राम
बेकिंग पाउडर	2 चम्मच	–	–
अमोनियम बाइकार्बोनेट	–	0.6 ग्राम	0.6 ग्राम
फ्लेवर वनिला/चाकलेट	–	स्वादानुसार, कुछ बूंद	कुछ बूंद
पानी	–	25–30 मिली0	25–30 मिली0

विधिः

- मंडुवे का आटा + मैदा ठीक प्रकार से मिला लें।
- चीनी एवं घी को एक साथ मिलाकर पेस्ट बना लें।
- सभी सामग्री को मिलाकर आटा गूंथ लें।
- बेलकर विभिन्न आकार के बिस्कुट बना लें।
- तैयार बिस्कुट को ओवन मे पकाया जा सकता है।
- ट्रे से निकालकर 15–20 मिनट तक ठंडा होने के लिये रख दें।
- उसके पष्चात पैक करके रख दें।

मंडुवे के आटे का लड्डू

सामग्री

गेहूं का आटा	– 520 ग्राम
मंडुवा का आटा	– 180 ग्राम
बूरा/पिसी चीनी	– 350 ग्राम
घी	– 500–600 ग्राम
मखाना	– 100 ग्राम

बनाने की विधि

- सबसे पहले एक बर्तन में मंडुवा का आटा और गेहूं का आटा दोनों को अच्छे से छान लें।
- अब एक कड़ाही में थोड़ा सा घी डाल कर उसे गरम करके मखाने ब्राउन होने तक भून लें।
- फिर उन्हें ठंडा करके चीनी का मिक्सी से पाउडर बना लें।
- अब एक कढाई में बाकी सारा घी डालकर गरम करने के लिए गैस पर रखें। गरम घी में दोनों आटे के मिश्रण को डाल कर सुनहरा भूरा रंग का होने और खुशबू आने तक भूनें।
- जब मिश्रण का रंग हल्का ब्राउन हो जाए तो उन्हें प्लेट में निकाल लें और मखाने का पाउडर डाल कर ठंडा कर लें।
- ठंडा करके उसमें बूरा मिला लें और एक एक करके गोल गोल लड्डू बना लें।

2. कुटकी

चेना बाजरा के समान, कुटकी बाजरा में सभी समान गुण होते हैं सिवाय इसके कि यह आकार में छोटा होता है। कुटकी बाजरा का सबसे बड़ा केन्द भारत में है। यह सलाद के लिए सब्जियों के साथ मिलाया जा सकता है। कुटकी की पोषक गुणवत्ता निम्न है:

तालिका 4: कुटकी की पोषक गुणवत्ता

पोषक तत्वों की मात्रा	प्रति 100 ग्राम में
ऊर्जा	341 कैलोरी
कार्बोहाइड्रेट	67 ग्राम
प्रोटीन	9.7 ग्राम
वसा	4.7 ग्राम
फाइबर	7.6 गाम
आयरन	9.3 मिलीग्राम
कैल्शियम	17 मिलीग्राम
फॉस्फोरस	220 मिलीग्राम

थायमिन/विटामिन बी1	0.3 मिलीग्राम
नियासिन/विटामिन बी3	3.2 मिलीग्राम
राइबोफ्लेविन/विटामिन बी2	0.09 मिलीग्राम
फोलिक एसिड/विटामिन बी9	9.0 मिलीग्राम
जिंक	3.7 मिलीगाम
मैग्निशियम	133 मिलीग्राम
पौटेशियम	129 मिलीग्राम
कॉपर	1.0 मिलीग्राम

फर्मेन्टेड मिलेट

सामग्रीः

कुटकी	– 1 कप
पानी	– 10 कप

विधिः

- फर्मेन्टेड मिलेट बनाने के लिए एक कप मिलेट को धोकर 10 कप पानी के साथ भिगोकर 6–8 घण्टे के लिए रख दें।
- इस पानी और मिलेट को मिट्टी के बर्तन में डालकर पकाये। पकाते समय नमक न मिलाये।
- मिलेट जब पक जाये तो बर्तन के मुंह को कपड़े से बांधकर फरमेंट होने के लिए रख दें। इसमें 8 से 12 घण्टे लग सकते हैं। खाते समय इसमें नमक मिलाये तथा इसे किसी भी दाल सब्जी के साथ खा सकते हैं।

लिटिल मिलेट की खीर

सामग्रीः

लिटिल मिलेट	– 1 कप
पानी	– 6 कप
गुड़	– आधा कप
दूध	– 2 कप
सूखे मेवे	– स्वादानुसार

विधिः

- मिलेट को धोकर 6–8 घण्टे के लिए भिगों दें।
- 6 गुना पानी डालकर तथा स्वाद अनुसार गुड़ डालकर पकाये।
- जब यह पक जाये और गाढा हो जाये तो गैस बन्द कर दें तथा इसमें दूध मिलाये। दूध की मात्रा आप पर निर्भर करती है। बारीक कटे हुए ड्राई फ्रूट्स से सजाये।

लिटिल मिलेट का उपमा

सामग्रीः

लिटिल मिलेट	– 1 कप
हरी सब्जियाँ	– 50 ग्राम
प्याज	– 50 ग्राम
पानी	– 3 कप
नमक व मसाले	– स्वादानुसार

विधिः

- मिलेट को धोकर 6– 8 घण्टे के लिए भिंगो दें।
- मन पसन्द सब्जियों को भूनकर, स्वाद अनुसार नमक और मसाले मिलाएं
- इसके बाद इसमें मिलेट मिलाये और तीन गुना पानी के साथ पकाये।
- 10– 12 मिनट में यह तैयार हो जाता है।

लिटिल मिलेट की खिचड़ी

सामग्री

मिलेट – 1 कप

सब्जियाँ – आलू, गोभी, ब्रोकली

दाल – आधा कप

नमक – स्वादानुसार

विधि

- मिलेट को धोकर 6– 8 घण्टे के लिए भिंगो दें।
- जीरा का तड़का लगाकर आलू, गोभी या ब्रोकली, मटर, लौकी जैसी मौसमी सब्जी डालकर भूनें। इसमें हल्दी, मिर्च और कोई भी हल्का मसाला डालें। इसमें लिटिल मिलेट का चौथाई भाग दाल डालें।
- मिलेट का 10 गुना पानी और स्वाद अनुसार नमक डालकर पकायें। मिट्टी के बर्तन में यह 45 मिनट में तैयार हो जाता है।

3. कोदो

मोटे अनाज जिसके अन्तर्गत कोदो भी आता है यह सूखाग्रस्त इलाकों के लिए वरदान है। भारत में करीब 3000 सालों से कोदों की खेती हो रही है। इसे कोदों फोदरा, हरका जैसे नामों से भी जाना जाता है। कोदों की फसल देखने में बिल्कुल धान जैसी ही होती है, लेकिन इसकी खेती में बेहद कम पानी खर्च होता है। कोदो में कई तरह के औषधीय गुण भी मौजूद हैं, इसके नियमित सेवन से कई तरह की बीमारियों का खतरा कम हो सकता है। प्रोटीन और फाइबर के गुणों से भरपूर कोदो में वसा की मात्रा ना के बराबर होती है, जिसके कारण इसे पचाना बेहद आसान हो जाता है इसमें लेसीथीन की भी अच्छी खासी मात्रा होती है जो नर्वस सिस्टम को मजबूत बनाए रखती है, इसमें नियासिन बी[6] फोलिक एसिड समेत कैल्शियम आयरन, पौटेशियम, मैग्नीशियम जिंक जैसे कई खनिज लवण भी उपस्थित होते हैं। कोदो की पोषक गुणवत्ता निम्न है (तालिका–4)

तालिका 4: प्रति 100 ग्राम कोदो में पोषक तत्वों की मात्रा

प्रोटीन	**65.9**
वसा	1.4
फाइबर (ग्राम)	9
आयरन मिग्रा.	0.5
कैल्शियम मिग्रा.	27
खनिज लवण ग्राम	2.6

कोदों को पकाने से पहले कम से कम 4–6 घण्टे तक भिगोकर रखना चाहिये। अगर आप इसका आटा बनाना चाहते है तो इसे पहले भिगोकर धूप में अच्छी तरह से सुखाकर इसका आटा बनाया जा सकता है। कोदो से बनने वाले कोई भी भोजन पौश्टिक तत्वों से भरपूर होता है लेकिन खाने में अलग–अलग भोजन अलग–अलग स्वाद का होता है। कोदो से कई तरह के व्यंजन बनाये जा सकते हैं जैसे:

- कोदो का सूप
- कोदो का उपमा
- कोदो मिक्स दाल दोसा
- कोदो खीर
- कोदो खिचड़ी
- कोदो मूंग मसूर डोसा
- कोदो बर्गर।

कोदो के दाने

कोदो के व्यंजन

कोदो मिलेट खिचड़ी

सामग्रीः

कोदो बाजरा	–	1 कप
मूंग दाल	–	1/4 कप
गाजर	–	1
मटर	–	100 ग्राम
बीन्स	–	25 ग्राम
नमक	–	5 ग्राम
हल्दी	–	1/4 चम्मच

विधिः

- कोदो बाजरे की खिचड़ी बनाने के लिए 1 कप कोदो बाजरा और 1/4 कप मूंग दाल को एक घण्टे के लिए पानी भिगो दें।
- पानी निथारें और बाजरा और दाल को 2 कप पानी, एक चुटकी हल्दी और थोड़ा नमक के साथ प्रेशर कुकर में डालें।
- 2–3 सीटी आने तक या बाजरा और दाल के नरम होने तक पकाएं।
- अतिरिक्त पोषण के लिए आप कुछ सब्जियां जैसे गाजर, मटर और बीन्स भी मिला सकते हैं।

कोदो बाजरा डोसा

सामग्रीः

कोदो बाजरा	–	1 कप
उड़द दाल	–	1/4 कप
नमक	–	आवश्यकतानुसार

विधिः

- कोदो बाजरा डोसा बनाने के लिए 1 कप कोदो बाजरा और 1/4 कप उड़द दाल को 4–5 घण्टे के लिए पानी में भिगो दें।

- बाजरा और दाल को अलग– अलग पीस कर चिकना बैटर बना लें।
- दोनों बैटर को एक साथ मिलायें और थोड़ा नमक डालें।
- बैटर को 8–10 घण्टे या रात भर के लिए फरमेंट होने दें।
- खमीर उठने के बाद, बैटर को गरम तवे पर डालें और पतले गोले में फैला दें।
- डोसे को गोल्डन ब्राउन और क्रिस्पी होने तक पकाएं तथा चटनी एवं सांबर के साथ परोसें।

कोदो बाजरा पुलाव

सामग्रीः

तेल या घी	–	2 चम्मच
साबुत मसाले	–	दालचीनी, इलायची, तेजपत्ता
प्याज	–	1
कोदो	–	2 कप

विधिः

- कोदो बाजरे का पुलाव बनाने के लिए एक पैन में थोड़ा सा तेल गर्म करें।
- इसमें साबुत मसाले जैसे दालचीनी, इलायची और तेजपत्ता डालें।
- कटे हुए प्याज डालकर सुनहरा भूरा होने तक भूनें।
- 1 कप कोदो बाजरा और 2 कप पानी डालें और उबाल आने दें।
- आंच को कम करें और 10–15 मिनट तक या बाजरा के पकने तक और पानी सोखने तक उबालें।
- अतिरिक्त स्वाद के लिए आप कुछ सब्जियां और नींबू का रस भी मिला सकते हैं।

कोदो खीर

सामग्रीः

कोदो	–	1 कप
दूध	–	1 लीटर
चीनी	–	1/2 कप
घी	–	1 चम्मच
नारियल का चूर्ण	–	3 चम्मच
काजू	–	10–12
किशमिश	–	10–12
चिरौंजी	–	25 ग्राम

विधिः

- एक कड़ाही में दूध को उबालने के लिए चूल्हे पर रख दें।
- कोदो को अच्छी तरह से धोकर पानी में भिगोकर 15 मिनट के लिए अलग रख दें।
- दूध जब उबल जाए तो इसमें कोदो डालकर धीमी आंच पर पकाएं।
- जब कोदो पूरी तरह से पक जाए तो इसमें नारियल का बुरादा और बारीक कटे हुए काजू, किशमिश और चिरौंजी मिलाएं।
- अब पकी हुई खीर में चीनी डालकर अच्छी तरह मिलाएं।
- इसके बाद एक कड़ाही में घी गरम करके उसमें साबुत मेवे को हल्का सुनहरा होने तक भून लें।
- एक कटोरे में खीर को निकालें और भुने हुए मेवों से सजाएं और परोसें।

पर्वतीय क्षेत्रों में मसाला फसलों की खेती कर लाभ कमाएं

प्रतिभा जोशी[1], रेनू सनवाल[2] एवं रेनू जेठी[3]
भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली[1]
भाकृअनुप–विवेकानंद पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा, उत्तराखंड[2]
भाकृअनुप–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल, उत्तराखंड[3]

भारत मसाला उत्पादन में विश्व में प्रथम स्थान पर है। भारत को तो मसालों की भूमि के नाम से भी जाना जाता है। इन मसालों के औषधीय गुणों के कारण देश–दुनिया में इनकी मांग निरंतर बढ़ती जा रही है। दुनिया भर के व्यापारी हमारे देश में आते हैं। भारत के नक्शे को देखें तो जम्मू–कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक विभिन्न प्रकार के मसालों का उत्पादन होता है। इन सभी मसालों का अपना अलग मिजाज है, कोई बीमारी में काम आता है तो कोई रोगों से लड़ने की ताकत देता है, तो कोई स्वाद को बहुत ज्यादा बढ़ा देता है। कुछ मसाले ऐसा भी होते हैं जो हमारी पाचन क्रिया को दुरुस्त कर देते हैं। प्राचीन काल से ही भारत को 'मसालों की भूमि' कहा जाता है। मसाला फसलें जहां एक ओर कास्तकार बन्धुओं की कमाई का साधन है, वहीं दूसरी ओर स्वास्थ्य रक्षक भी हैं। भारतवर्ष में कई प्रकार के मसाले पाये जाते जो भोजन को सुगन्धित व स्वादिष्ट बनाते हैं। ये एक अच्छे क्षुधावर्धक है और विश्व में पाक कला के आवश्यक अंग है। इनका प्रयोग इनमें उपस्थित एंटी–आक्सीडेंट गुणों के कारण भी किया जाता है। भारतवर्ष मसाला फसलों का सबसे बड़ा उत्पादक होने के साथ ही विश्व में मसालों का बड़ा उपभोक्ता भी है। भारतवर्ष में 2.66 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल में मसाला फसलों की खेती होती है और 3.72 मिलियन टन उत्पादन होता है। मिर्च एक मुख्य मसाला फसल है जिसकी खेती लगभग 29 प्रतिशत क्षेत्र में की जाती है और यह देश के कुल मसाला उत्पादन में 34 प्रतिशत की भागीदारी देता है। हल्दी 6 प्रतिशत क्षेत्र से 14 प्रतिशत उत्पादन, लहसुन 5 प्रतिशत से 19 प्रतिशत उत्पादन देता है। इसके अलावा बीज वाले मसाले जैसे – धनिया, जीरा, मेथी, इत्यादि 41 प्रतिशत क्षेत्र से 17 प्रतिशत उत्पादन देते है तथा 9 प्रतिशत क्षेत्र में कालीमिर्च 2 प्रतिशत उत्पादन देती है। मुख्य बीजीय मसाले परंपरागत हैं, जैसे जीरा, धनिया, मेथी, सौंफ, अजवायन, सोवा, कलौंजी, एनाइस, सेलेरी, सरसों तथा स्याहजीरा। इन सभी की खेती देश के उन इलाकों में की जाती है, जहां इनके लायक मौसम बढ़िया होता है। दरअसल, बीजीय मसाले अर्धशुष्क और शुष्क इलाकों में ही उगाए जा सकते हैं। जहाँ बहुत ज्यादा गर्मी होगी या बहुत ज्यादा ठंड पड़ती हो, वहां मसाले नहीं उगाए जा सकते। बीजीय मसाला फसलों को धान या गेहूं अथवा मक्के की तरह पानी की जरूरत नहीं होती। इनका काम कम जल में भी चल जाता है।

यदि हम पर्वतीय क्षेत्रों की बात करे, तो यहाँ भी मसालों का अत्यधिक प्रयोग होता है। यहाँ मसाला फसलों की खेती 10,107 हेक्टेयर भूमि पर की जाती है तथा यहाँ इन फसलों का उत्पादन व उत्पादकता क्रमशः 73.101 मिट्रिक टन व 7.23 मिट्रिक टन प्रति हेक्टेयर है। पर्वतीय क्षेत्रों में भूमि छोटी व बिखरी होती है। यहाँ की जलवायु भी मसाला फसलों हेतु उपयुक्त है। अतः कृषक बन्धु इन क्षेत्रों में मसालों धनिया, मेथी, हल्दी, अदरक, तेजपत्ता, दालचीनी, बड़ी इलायची, मिर्च, कालाजीरा, जखिया आदि की व्यावसायिक खेती कर अपने आर्थिक स्तर को सुधार सकते हैं।

मिर्च

मिर्च एक प्रमुख मसाला फसल है। इस फसल का मौसम कुछ महीने का होता है। पर्वतीय क्षेत्रों में इसे अप्रैल से मई अन्त तक बोया जा सकता है। एक किग्रा उन्नत बीज लगभग 1 नाली क्षेत्र के लिए पर्याप्त होता है और इससे 1 हैक्टेयर में रोपने लायक पर्याप्त पौध मिल जाती है। नर्सरी में बीज बोने से पहले खेत की 3–4 जुताई कर गोबर की सड़ी खाद मिला ले फिर रेत या मिट्टी के साथ मिर्च के बीज मिलाकर उसे खेत में बिखेर दे। नर्सरी में पौध तैयार करने के लिए उचित मात्रा में सिंचाई आवश्यक हैं। प्रतिरोपण से 8–10 पूर्व साफ मौसम में सुबह के समय पौध सिरे तोड़ देने चाहिए। ऐसा करने से पौध मोटी व मजबूत होती है और उसमें जड़े जल्दी विकसित होती हैं। रोपण से पूर्व–संध्या को नर्सरी की सिंचाई कर ले ताकि पौधे आसानी से निकाले जा सके। प्रत्येक दिन उतनी ही पौध

निकालें जितनी रोपित करनी है। फिर पौध रोपित कर देनी चाहिएं। मिर्च जल्दी फूलने–फलने लगती है। पहली सिंचाई प्रतिरोपण के तुरन्त बाद फिर गरम मौसम में 5–7 दिनों के अन्तर में करनी पड़ती है। पौधों की वृद्धि की प्रारम्भिक अवस्थाओं में खरपतवार पर नियंत्रण पाने के लिए दो–तीन निराई आवश्यक है। पौधा रोपण के 2–3 सप्ताह बाद मिट्टी चढ़ाई जाती है। मिर्च की फसल 2–2.5 बाद तैयार हो जाती है। हरी मिर्च भी तोड़ी जा सकता है साथ ही मसाला फसल हेतु ली गई मिर्च पौधे में लाल होने के बाद तोड़ी जाती है। सिंचित क्षेत्र में मिर्च की औसतन पैदावार लगभग 60–90 कुन्तल प्रति हैक्टेयर व असिंचित या वर्षाश्रित में 5–10 कुन्तल प्रति हैक्टेयर मिलती है। प्राप्त लाल मिर्च को फर्श या छत पर धूप में सुखाया जाता है सूखने में मिर्च का भार 65–70 प्रतिशत कम हो जात है। व्यावसायिक स्तर पर मिर्च को जाली की तली वाली ट्रे में 55°C पर सुखाया जाता है जिससे यह काम 2–3 दिन में पूर्ण हो जाता है जबकि घरेलू स्तर पर इसे 10–15 दिन धूप में सुखाते है। सुखाई, पतले छिलके और तेज लाल रंग वाली मिर्च बाजार में ऊंचे दामों पर मिलती है। इस प्रकार हरी मिर्च व लाल मिर्च दोनों के द्वारा ही कृषक अच्छी आमदनी ले सकते हैं।

धनिया

धनिया एक बहुपयोगी मसाला फसल है। इसमें औषधीय गुण होने के कारण इसे दवा के रूप में भी प्रयोग करते हैं। सामान्यतः इसके पत्ते व बीज का प्रयोग किया जाता है लेकिन कुछ जगहों पर इसकी जड़ का प्रयोग भी मसाले के रूप में किया जाता है। आमतौर पर लोग घर पर स्वयं के इस्तेमाल के लिए धनिया बोते है। आज बाजार में इसकी मांग काफी बढ़ गयी है। धनिया की खेती में ज्यादा मेहनत की आवश्यकता नहीं होती। यह कम लागत में अच्छी उपज देती है परन्तु पर्वतीय क्षेत्रों में बंदरों के आतंक को देखते हुए फूल आते समय इसके बचाव की आवश्यकता है। धनिया शीतोष्ण जलवायु की फसल है। इसके अच्छे उत्पादन के लिए शुष्क व ठंडा मौसम अच्छा माना जाता है। इसके बीजों के अंकुरण के लिए 25–26°C तापमान की आवश्यकता होती है। धनिया की खेती सामान्यतः किसी भी प्रकार की भूमि में की जा सकती है, परन्तु इसके उचित जल निकास वाली रेतीली दोमट मिट्टी जिसका pH मान 6.5–7.5 हो, उपयुक्त होती है। धनिया हेतु खेत तैयार करने हेतु 4–5 जुताई कर मिट्टी में कम्पोस्ट या गोबर की सड़ी खाद मिलाकर भूमि एक सार कर लें। फिर धनिया की उन्नत प्रजातियों की बुवाई अक्टूबर से नवम्बर मध्य तक करें। बीज पंक्तियों में लगाये ताकि निराई, गुड़ाई करने में आसानी रहे। जब पाला काफी पड़ रहा हो, ऐसे में धनियां में गोबर के कंडों की राख का छिड़काव करें व उसे सूखी घास व पत्तियों से ढक दें। धनियां के पत्ते व बीज बेचकर कृषक अच्छा मुनाफा कमा सकते हैं। यदि उन्नत विधि से इसकी खेती की जाय, तो प्रति हैक्टेयर 40 से 50 टन उत्पादन मिल सकता है।

मेथी

मेथी उत्तरी राज्यों के साथ ही दक्षिणी राज्यों में भी उगाई जाती है। मेथी की पत्तियों को सब्जी व बीजों को दवाई के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। यह फेफड़े, गुर्दे व यकृत सम्बन्धी बीमारियों के साथ ही अस्थमा, डायबिटीज, कोलेस्ट्रॉल, उच्च रक्तचाप के रोगियों के लिए फायदेमन्द है। इसके बीजों को पीसकर लेप करने से झाइयां व मुंहासे ठीक होते है और बीजों का पानी बालों हेतु लाभाकारी है। इसकी खेती के लिए ठंडी जलवायु जहाँ दिन में धूप हो और तापमान 10–25°C तक हो, उचित रहती है। पाले हेतु यह फसल प्रतिरोधी है परन्तु बीज बनते समय यदि पाला पड़े, तो इसकी बीज उपज कम हो जाती है। मेथी को भी किसी भी प्रकार की मिट्टी में उगाया जा सकता है, परन्तु इसके लिए दोमट या बलुई दोमट मिट्टी अच्छी होती है। सामान्यतः 90 प्रतिशत किसान स्वयं द्वारा उत्पादित मेथी के बीजों का प्रयोग करते है। पर्वतीय क्षेत्रों में मेथी की बुवाई रबी के मौसम में की जाती है। इसकी बुवाई अक्टूबर के अंतिम सप्ताह से नवम्बर मध्य तक कर लेनी चाहिए। इसकी खेती सब्जी व बीज दोनों के लिए की जाती है अतः इसके लिए अधिक खाद व उर्वरक की आवश्यकता होती हे। बीज हेतु बुवाई के 120–150 दिन बाद जब फसल की निचली पत्ती गिरना शुरू कर दें और फली का रंग पीला या भूरा हो जाये, तो सुबह के समय इसकी कटाई करें। धूप में सुखाने के बाद डण्डे से पीटकर बीज निकाल लें। यदि सब्जी के लिए मेथी की 2–3 कटाई करते हैं तो मेथी की औसतन उपज 12–15

कुंतल प्रति हैक्टेयर मिल जाती है और यदि केवल बीज हेतु मेथी लगाते है तो उपज 18—20 कुंतल प्रति हैक्टेयर प्राप्त होती है।

हल्दी

हल्दी की खेती मुख्य रूप से भारत के उपमहाद्वीप तथा दक्षिण पूर्व एशिया में किया जाता है। हल्दी प्रमुख रूप से उष्णकटिबंधीय फसल है, जिसके उत्पादन के लिए लाल मिट्टी की जरूरत पड़ती है। इस मसाले में कई तरह के औषधीय गुण भी पाए जाते है इसलिए बाजारों में भी इसकी मांग हमेशा बनी रहती है। हल्दी के जड़ों को उबालकर और सुखाकर बाजारों में बेचा जाता है। हल्दी का कई जगह प्रयोग भोजन तथा प्राकृतिक रंगों के निर्माण के लिए भी किया जाता है। भारत में इसके उत्पादन की बात करें तो इसकी खेती तेलंगाना, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, कर्नाटक तथा गुजरात में की जाती है। बाजार में भी हल्दी की मांग हमेशा रहती है, इसलिए किसान इसकी खेती करके अच्छा पैसा कमा सकते है। हल्दी की फसल जमीन के नीचे होती है, इसलिए इसके देखभाल की ज्यादा जरूरत नहीं पड़ती। बाजार में कच्ची हल्दी की मांग कम होती है इसलिए फसलों को अच्छे से सुखाकर ही बाजार में बेचने के लिए भेजना चाहिए। हल्दी की फसल 7—10 महीने में तैयार हो जाती है। पर्वतीय क्षेत्रों में मसाला फसलों में हल्दी का मुख्य स्थान है। इसका उपयोग औषधि से लेकर अनेक कार्यो में किया जाता है। यह फसल कई गुणों से परिपूर्ण है और इसकी खेती आसानी से की जा सकती है तथा कम लागत तकनीकी को अपनाकर किसान इसकी खेती को आमदनी का अच्छा साधन बना सकते हैं। इस फसल की यह विशेषता है कि इसे बन्दर नुकसान नहीं पहुंचाते हैं। हल्दी की फसल के लिए बलुई दोमट मिट्टी अच्छी रहती है। इस भूमि में जल निकास का उचित प्रबन्ध होना चाहिए। हल्दी की बुआई 15 मई से जुलाई के प्रथम सप्ताह तक की जा सकती है। यदि सिंचाई की समुचित व्यवस्था न हो तो मानसून प्रारंभ होने पर बुआई करें। सिंचाई की पर्याप्त सुविधा उपलब्ध होने पर हल्दी की बुआई अप्रैल, मई माह में की जा सकती है। प्रति हेक्टेयर बुआई के लिए कम से कम 2500 किलोग्राम प्रकंदों की आवश्यकता होती है। किसान बुआई से पहले हल्दी के कंदों को बोरे में लपेट कर रखें जिससे अंकुरण आसानी से होता है। हल्दी की खेती के लिए कंद का चयन बीज की बुआई के लिए मात्र कंद एवं बाजू कंद दोनों प्रकार के प्रकंद का उपयोग किया जा सकता है। जिसमें मात्र कंद लगाने से अधिक पैदावार प्राप्त होती है। यह ध्यान रहे की प्रत्येक प्रकंद पर दो या तीन आंखे अवश्य होनी चाहिए। बोने से पहले कंदों को 0.25 प्रतिशत एगालाल घोल में 30 मिनट तक उपचारित कर लेना चाहिए। हल्दी की बुआई समतल चार बाई तीन मीटर आकार की क्यारियों में मेड़ों पर करना चाहिए। लाइन से लाइन की दूरी 45 से.मी. व पौधों से पौधों की दूरी 25 से.मी. रखें। रेतीली भूमि में इसकी बुआई 7 से 10 से.मी. ऊंची मेड़ों पर करनी चाहिए। खेत तैयार कर उसमें 20—25 टन प्रति हैक्टेयर की दर से सड़ी गोबर की खाद मिला दें व खेत को भुरभरा व हल्का बना दें। उसके बाद 100—120 किग्रा नत्राजन, 60—80 किग्रा फोस्फोरस व 80—100 किग्रा पोटाश प्रयोग करें। हल्दी की गुणवत्ता व उपज पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। नाइट्रोजन की 114 मात्रा बोते समय व शेष को दो भाग में बाँटकर 40—60 दिन व 80—100 दिन में देना चाहिए। हल्दी की सफल खेती के लिए अन्य फसल न लगाये क्योंकि यह भूमि से अधिक पोषक तत्वों को लेती है। जल की सुविधायुक्त कृषक अप्रैल के दूसरे पखवाड़े से जुलाई प्रथम पखवाड़े तक हल्दी लगा सकते है और अन्य कृषक मानसून की बारिश होते ही पहले से तैयार खेत में हल्दी लगा सकते हैं। नवम्बर में पत्तियों व कंदों के विकास के समय अच्छी उपज के लिए मिट्टी चढ़ाये तथा जल निकास का उचित प्रबन्ध करें अन्यथा पौधे व पत्तियां पीली पड़ने लगती हैं। अच्छी फसल के लिए 2—3 निराई अवश्य करें। साथ ही साथ समय—समय पर गुड़ाई भी करते रहें। इससे मृदा में वायु संचार सुचारू रूप से चलता है और फसल उत्पादन पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। जब कंदों का विकास हो जाता है तो पत्तियां सूखकर पीली पड़ने लगती है और सूखने लगती हैं। इसका मतलब है कि अब हल्दी तैयार है। इसे सावधानीपूर्वक खोद कर साफकर उबालते है और फिर सुखा लेते है। प्रति हेक्टेयर खेत से लगभग 50—100 कुन्तल कच्ची हल्दी प्राप्त होती है जो सूखने के बाद 20—25 प्रतिशत ही रह जाती है। उबालने से हल्दी की गुणवत्ता व रंग में अच्छा परिवर्तन आता है।

अदरक

कास्तकार पर्वतीय क्षेत्रों में मसाला फसल अदरक की खेती भी कर सकते है। इसकी गाँठों को सुखाकर सौंठ तैयार की जाती है जिसका औषधीय उपयोग है। पर्वतीय क्षेत्रों की जलवायु अदरक की खेती हेतु उपयुक्त तथा इसकी फसल को बन्दरों द्वारा भी नुकसान नहीं होता है। इसकी खेती समुद्र तल से 1500 मीटर की ऊँचाई वाले स्थानों में सफलतापूर्वक की जा सकती है इसके उत्पादन के लिए बलुई दोमट मिट्टी अच्छी रहती है जिसमें जल निकास की उचित व्यवस्था हो। खेत तैयार करने के बाद में उन्नत प्रजातियों के अदरक की गाँठों की बुवाई अप्रैल–मई में करनी चाहिए। बोने के लिए प्रकन्द 2. 5 सेमी. लम्बे, 15 ग्राम भार के जिसमें 1 या 2 आँखे हो, उपयुक्त रहते हैं। 1 हैक्टेयर क्षेत्र में 10–12 कुन्तल प्रकन्दों की आवश्यकता पड़ती है। अदरक की फसल के लिए 25–30 टन प्रति हैक्टेयर गोबर की सड़ी खाद व 100 किग्रा नत्रजन 80 किग्रा फास्फोरस व 80 किग्रा पोटाश की आवश्यकता होती है। फसल की अच्छी बढ़वार के लिए समय–समय पर निराई –गुड़ाई करें। सामान्यतः अदरक को 3–4 निराई–गुड़ाई की आवश्यकता पड़ती है। वर्षा प्रारम्भ होने से पूर्व अदरक में 2–3 सिंचाई करें। जल निकास की उचित व्यवस्था करे नही तो कन्द गलन रोग लग सकता है। अदरक की फसल 8–9 महीने में तैयार हो जाती है। व्यावसायिक दृष्टि से इसकी कच्ची फसल को परिपक्वता से पहले खोदा जाता है। पकने पर इसकी पत्तियां पीली पडकर सूखने लगती है। फसल की खुदाई ध्यान से करें। खोदते समय कंद न कटने पाये। पाला पड़ने वाले स्थानों में पाला पड़ने से पहले अदरक खोद लेनी चाहिए। उन्नत विधि से खेती करने पर इसकी उपज 150–200 कुन्तल प्रति हैक्टेयर प्राप्त होती हैं सूखने के बाद इसका 1/5 भाग सौंठ प्राप्त होता है।

तेजपत्ता और दालचीनी

तेज पत्ता 7.5 मीटर ऊंचा छोटे से मध्यमाकार का सदाहरित वृक्ष होता है। इसकी तने की छाल का रंग गहरा भूरे रंग का, थोड़ी खुरदरी, दालचीनी की अपेक्षा कम सुगन्धित तथा स्वादरहित, बाहर का भाग हल्का गुलाबी अथवा लाल भूरे रंग की सफेद धारियों से युक्त होती है। इसके पत्ते सरल, विपरीत अथवा एकांतर, 10–12.5 सेमी लम्बे, विभिन्न चौड़ाई के, अण्डाकार, चमकीले, नोंकदार, 3 शिराओं से युक्त सुगन्धित एवं स्वाद में तीखे होते हैं। इसके नये पत्ते कुछ गुलाबी रंग के होते हैं। इसके फूल हल्के पीले रंग के होते हैं। इसके फल अंडाकार, मांसल, लाल रंग के, 13 मिमी लंबे होते हैं। इसका पुष्पकाल एवं फलकाल अगस्त से फरवरी तक होता है। इसका पेड़ बहुवर्षीय होता है जो 100 वर्षों तक उपज देता हे। इसके वृक्ष से कम लागत में अधिक लाभ मिलता है। इस वृक्ष की पत्तियों से तेजपत्ता तथा छाल से दालचीनी प्राप्त होती है। यह एक प्रबल वृक्ष है जो किसी भी परिस्थिति को सहन कर सकता है। तेज पत्ता में पाए जाने वाले पोषक तत्वों की बात करें तो प्रति 100 ग्राम तेज पत्ता में पानी–5.44 ग्राम, ऊर्जा–313 कैलोरी, प्रोटीन–7.61 ग्राम, कार्बोहाइड्रेट–74.97 ग्राम, फैट–8.36 ग्राम, फाइबर–26.3 ग्राम, कैल्शियम–834 मिलीग्राम, आयरन–43.00 मिलीग्राम, विटामिन–सी 46.5 मिलीग्राम मात्रा पाई जाती है। तेज पत्ता में पाए जाने वाले पोषक तत्वों के कारण ही इसका उपयोग कई रोगों में दवा के तौर पर किया जाता है। तेज पत्ता त्वचा और बालों के लिए भी काफी फायदेमंद है। इसमें पाए जाने वाले एसेंशियल ऑयल का इस्तेमाल कॉस्मेटिक उद्योग में क्रीम, इत्र और साबुन बनाने में किया जाता है। यह त्वचा को गहराई से साफ कर सकता है, क्योंकि इसमें एस्ट्रिंजेंट गुण मौजूद होता है। एक अन्य शोध में तेज पत्ते को मुहांसों से पैदा हुई सूजन को कम करने में भी कारगर पाया गया है। तेज पत्ते का उपयोग सेहत व त्वचा के साथ–साथ बालों के लिए भी किया जा सकता है। यह बालों की जड़ों को फंगल और बैक्टीरियल संक्रमण से दूर रख सकता है, क्योंकि यह एंटी फंगल और एंटी बैक्टीरियल गुणों से समृद्ध होता है। इन्हीं गुणों के चलते तेज पत्ते से निकले एसेंशियल ऑयल का प्रयोग रूसी और सोरायसिस से बचाने वाले लोशन में किया जाता है। इसके अलावा मधुमेह, कैंसर, सूजन कम करने, दंत रोग, किडनी की समस्या आदि रोगों में इसका दवाई के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। इसके अलावा मक्खियों और तिलचट्टों को खाद्य वस्तुओं से दूर रखने में भी इसका उपयोग किया जाता है। यह कम पोषक तत्व युक्त बलुई मिट्टी में उगाये जा सकते हैं। इसके लिए समुद्र तट से 1000 मी. ऊँचे स्थान उपयुक्त होते हैं। इसके बीज को फलों से निकालकर धोकर बिना देरी किये पौलीथीन की थैली में बलुई मिट्टी में गोबर की खाद मिलाकर बोते है। छः महीने तक इसे कृत्रिम छाया देकर फिर

इसका रोपण साफ भूमि में 50 सेमी. X 50 सेमी. के गड्ढे में 3X3 मीटर की दूरी पर करते हैं। गड्ढे में कम्पोस्ट अच्छी तरह से मिला देनी चाहिए। इसके पौधों को वर्षा से पूर्व जून–जुलाई में रोपित करना चाहिए। वर्ष में दो बार पौधे की निराई कर देनी चाहिए तथा अगस्त–सितम्बर में एक बार गुड़ाई कर देनी चाहिए। प्रथम वर्ष में पौधे का 20 ग्राम नत्रजन, 18 ग्राम फॉस्फोरस और 25 ग्राम पोटाश देना संस्तुत है। उसके बाद 200 ग्राम नत्रजन, 180 ग्राम फॉस्फोरस व 200 ग्राम पोटाश प्रति वृक्ष डालना चाहिए। इन उर्वरकों को वर्ष में दो बार समान मात्रा में मई–जून व सितम्बर–अक्टूबर में डालते हैं। गर्मियों में 25 किग्रा हरी पत्तियां व 25 किग्रा गोबर की खाद भी मई–जून में डालनी चाहिए। दालचीनी का पेड़ 10–15 मीटर तक लम्बा हो सकता है। इसे बीच–बीच में काट–छाँट देना चाहिए। उत्तम छाल निकालने के लिए शाखा को एक समान भूरा व 1.5–2.0 मीटर मोटा होने पर काटना चाहिए। काटी गयी शाखाओं को उसी समय/दिन छील कर छीलन को एक दिन छाया में सुखाकर फिर धूप में सुखाना चाहिए। इसी प्रकार पत्तियों को तोड़कर छाया में सुखाना चाहिए। दालचीनी के पर्ण व छाल को सुखाकर वाष्पीकृत कर इसका तेल निकाला जाता है जो सेंट, साबुन, बालों के तेल, क्रीम, सुगन्धित पेय व दन्तमंजन में प्रयोग किया जाता है।

बड़ी इलायची

पर्वतीय क्षेत्रों में मसाला फसल 'बड़ी इलायची' की भी खेती की जा सकती है। इसका मूल्य अत्यधिक होता है। इस समय यह बाजार में 1800 से 1900 रू. प्रति किग्रा में उपलब्ध है। बड़ी इलायची औषधीय व सुगन्धीय गुणों के कारण मसाले के रूप में प्रयोग की जाती है। इसे भारत से विदेशों में भी निर्यात की जाती है। इसके बीजों की बुवाई नवम्बर में की जाती है। बड़ी इलायची की खेती के लिए लाल दोमट मिट्टी सबसे अच्छी होती है। खेती के लिए भूमि का पीएच मान 5.5 से 7.5 तक होना चाहिए। 10 से 35 डिग्री सेल्सियस तापमान में इसकी खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है। बड़ी इलायची के पौधे की जुलाई या अगस्त के महीने में रोपाई करें। पौधे की रोपाई करने से पहले 30 सेंटीमीटर लम्बा, 30 सेंटीमीटर चौड़ा और 30 सेंटीमीटर गहरा गड्ढा खोद लें। इसकी 15 सेंटीमीटर नीचे की मिटटी को अलग निकालकर रख दें। इसके बाद अलग रखी हुई मिटटी में जैविक खाद या गोबर की खाद मिलाकर गड्ढे में भर दें। इसके बाद इस गड्ढे में पौधे को लगाएं, एक पौधे से दूसरे पौधे की बीच की दूरी 1. 5 मीटर की होनी चाहिए। एक हेक्टेयर खेत में कम से कम 400 पौधे लगाने चाहिए। खेत के चारों ओर बड़े व छायादार पेड़ होने चाहिए जिससे इसके पौधों को छाया प्राप्त हो सके। छाया में इसकी अधिक वृद्धि होती है और अधिक से अधिक उपज की प्राप्ति होती है। इसे प्रकन्दों द्वारा भी लगाया जाता है। बुवाई के पश्चात नमी हेतु पलवार आवश्यक है। अकुंरण मार्च से लेकर अप्रैल–मई तक होता है। अकुंरण के पलवार हटा देनी चाहिए और छाया की अचित व्यवस्था करनी चाहिए। प्रतिदिन दो बार हल्की सिंचाई करें। रोपण हेतु किसी भी लम्बाई की 90X15–20 सेमी. चौड़ी व ऊँची क्यारियों में सड़ी गोबर की खाद मिला दे। फिर नर्सरी से पौधों को निकालकर 15 X15 सेमी. की दूरी पर रोपित करें। साल में कम से कम दो बार कम्पोस्ट या गोबर की खाद डालें। अच्छी उपज के लिए 0.4:0.6:0.8 किग्रा नत्रजन, फॉस्फोरस व पोटाश को जुलाई व नवम्बर में डालें। प्रथम व द्वितीय वर्ष फल आने पर स्पाइक में ऊपर व नीचे दोनों फलों के पकने पर फलयुक्त शाखा को जमीन से 45 सेमी. ऊपर काटना चाहिए। फलों को अलग निकालकर छाया में सुखा लेना चाहिए। फिर इन्हें धुएं के ऊपर निकालना चाहिए। इससे फलों का रंग हल्का बैगंनी, सुगन्ध तेल व तत्वों की मात्रा बनी रहती है। पहले वर्ष इससे 500–700 किग्रा प्रति हैक्टेयर उपज प्राप्त होती हे। तीसरे वर्ष से अगले सात वर्षों तक लगातार अच्छी आय बड़ी इलायची से प्राप्त होती है।

इस प्रकार पर्वतीय क्षेत्रों के कृषक मसाला फसलों की व्यावसायिक खेती कर स्वयं हेतु तो मसाला प्राप्त कर ही सकते है साथ ही आर्थिक लाभ भी कमा सकते हैं।

कृषि क्षेत्र में डिजिटल मार्केटिंग

शशि तिवारी, सुधा जुकारिया एवं सी० तिवारी
कृषि विज्ञान केन्द्र ज्योलीकोट, नैनीताल

डिजिटल मार्केटिंग का इतिहास

डिजिटल मार्केटिंग शब्द का प्रयोग 1990 के दशक में पहली बार हुआ। डिजिटल मार्केटिंग संस्थान के अनुसार डिजिटल मार्केटिंग लक्षित उपभोक्ताओं और व्यवसायों के लिए डिजिटल चैनलों का उपयोग है। डिजिटल चैनल के क्रमिक बदलाव के अन्तर्गत वर्ष 1994 में Yahoo की शुरूआत हुई, जिसके माध्यम से डिजिटल मार्केटिंग स्पेस में थोक परिवर्तन को प्रेरित किया गया। सन् 1995 में CSNL ने भारत में अपनी इन्टेरनेट सेवाओं की शुरूआत की जो भारत में डिजिटल मार्केटिंग का मूल था। परन्तु इसका प्रदर्शन बहुत अच्छा नहीं था क्योंकि 2020 तक केवल 0.5 प्रतिशत आबादी के द्वारा इन्टेरनेट का प्रयोग किया जा रहा था। सन् 1996 में हॉट बॉट, लुक स्मार्ट और एलेक्सा जैसे कुछ सर्च इंजन तथा नये टूल लॉन्च हुए। सन् 1998 में गूगल का जन्म हुआ तथा सन् 2000 में इण्टेरनेट का समावेश हुआ। सन् 2006 तक सोशल नेटवर्किंग साइट्स भी उभरने लगी, जिसके अन्तर्गत "माइस्पेस" सबसे पहली उभरने वाली सोशल नेटवर्किंग साइट थी जिसने उत्पादों और ब्रांडो के विपणन के नये अवसर प्रदान किये। कोविड–19 काल में डिजिटल मार्केटिंग का प्रयोग काफी तेजी से प्रचलन में आया तथा धीरे–धीरे आम जनता समय अभाव के कारण डिजिटल मार्केटिंग को दैनिक जीवन की खरीददारी के कार्यों के लिये प्रयोग में लाने लगी। सामान्य तौर पर आंकड़ों के अनुसार सभी उद्योगों में डिजिटल मार्केटिंग का प्रयोग पारम्परिक मार्केटिंग के सापेक्ष 88 प्रतिशत है, परन्तु कृषि क्षेत्र में यह प्रयोग अभी 78 प्रतिशत ही है।

भारत में कृषि का डिजिटलीकरण

कृषि का डिजटलीकरण कृषि उत्पादन प्रणाली में अत्याधुनिक डिजिटल तकनीक को एकीकृत करने का वर्णन करता है, जिसमें कृत्रिम बुद्धिमता (ए.आई.) रोबोटिक्स, मानवरहित विमानन प्रणाली, सेंसर और संचार नेटवर्क शामिल है। भारत में डिजिटल कृषि की पहल–डिजिटल कृषि मिशन 2021–2025 के द्वारा सितम्बर, 2021 में आर्टीफिशयल इंटेलीजेन्स, ब्लॉकचेन, रिमोट सेसिंग रोबोट और ड्रोन सहित अत्याधुनिक तकनीकों पर आधारित परियोजनाओं को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से की गयी। किसानों को कृषि सम्बन्धित आवश्यक सलाह प्रदान करने के लिए ए.आई. द्वारा समर्पित फसल उत्पादन पूर्वानुमान मॉडल बनाने के लिए नीति आयोग ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मशीनों (आई.वी.एम.) के साथ समन्वय स्थापित कर कृषि इनपुट नियंत्रण एवं प्रारम्भिक फसल रोग चेतावनी में महत्वपूर्ण भूमिका को निभायी माइक्रोसॉफ्ट और भारत सरकार ने यूनिफाइड फार्मिंग सर्विसेस इंटरफेस नामक एक पायलट कार्यक्रम चलाकर भारत के छोटे जोत वाले किसानों को कृषि उपज में वृद्धि एवं बेहतर मूल्य प्रबन्धन के माध्यम से कृषि आय को बढावा देने में सहायता की।

कृषि उद्योग में डिजिटल मार्केटिंग पीछे होने के कारण

- कृषकों को डिजिटल मार्केटिंग की कम जानकारी होना।
- डिजिटल मोर्केटिंग द्वारा समय एवं ऊर्जा की बचत होने की जानकारी न होना।
- डिजिटल मार्केटिंग को अपनाने में आम कृषकों में भय का होना।
- कृषकों के पास डिजिटल मार्केटिंग की मूलभूत आवश्यकताओं का न होना।
- कृषकों में भ्रान्ति होना की डिजिटल मार्केटिंग लघु व्यापारियों के लिये उपयुक्त नहीं है।
- नयी मार्केटिंग प्रणाली अपनाने में अपने आधारभूत आवश्यक आकड़ों की जानकारी का आम जनता को पता चलने का भय।

लाभ

- पारम्परिक मार्केटिंग की तुलना में अधिक RIO (निवेश पर वापसी) देती है।
- डिजिटल मार्केटिंग के माध्यम से कम समय में ज्यादा ग्राहकों से सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है।
- राज्य के राजस्व को बढाया जा सकता है।
- पारम्परिक मार्केटिंग ज्यादा महंगी है, परन्तु डिजिटल मार्केटिंग नहीं।

डिजिटल मार्केटिंग के शीर्ष 10 लाभ

- ग्लोबल ऑडियन्स तक पहुंचना।
- बढ़ा हुआ RIO (निवेश पर वापसी)।
- ट्रैक करने योग्य और मापने योग्य परिणाम।
- बेहतर रूपान्तरण दर।
- सामाजिक मुद्दों को बढ़ावा।
- इंटरसर्विस मार्केटिंग।
- डिमाण्ड सप्लाई परीक्षण दायरा।
- रीमार्केटिंग के अवसर।
- बेहतर ग्राहक अनुभव।
- उच्च जुड़ाव– (1) पंतजलि ऑर्गेनिक रिसर्च इंस्टीट्यूट (2) आमेजॉन (3) ESRI India Pvt. Ltd. (4) एग्रीकल्चर इंडिया प्रा.लि.।

किसान कैसे सक्षम बनें?

- किसान इस बारे में सूचित निर्णय प्राप्त करने में सक्षम होंगे कि किस फसल को उगाना है।
- फसल की कौन सी किस्म को उगाना है।
- बुवाई का सर्वोत्तम समय एवं तकनीक कौन सी है।
- कृषि आपूर्ति श्रृंखला से जुड़े रह सकते हैं।
- निर्णय ले सकते कि फसल बेचनी है या भण्डारित करनी है।
- आगे कब और कहाँ तथा किस समय पर भण्डारित कृषि उत्पाद बेचना है।
- एग्रीबाजार से जुड़े रहने से अधिकतम लाभ उठा सकते हैं।
- केन्द्रीय भण्डारण निगम वेयर हाउसिंग सेवा का सबसे महत्वपूर्ण पहल ग्राहकों को उसके स्टॉक को समय पर डिपोजिट करना तथा डिलीवरी देना है तथा वेअर हाउसिंग कारोबार की सफलता वेअरहाउस की क्षमता के भरपूर प्रयोग पर निर्भर करती है।
- राष्ट्रीय कृषक आयोग के अनुसार 80 वर्ग किमी. में एक मार्केटिंग आऊटलेट की व्यवस्था होनी चाहिए।
- दिनांक 14.04.2016 शुरूआत में केवल 8 राज्यों में 21 ई–मंडियों की शुरूआत की गयी, परन्तु वर्तमान में पूरे देश में 585 मंडियां ई– नाम प्लेटफॉर्म से जुड़ी हैं।

बाजारीकरण के मुख्य बिन्दु

- उपयुक्त उत्पादन समूहों की पहचान करना।
- एग्रीबाजार के लिये किसान पंजीकरण आयोजित करना।

- भू अभिलेखों का डिजिटलीकरण।
- किसान उत्पादन संगठनों (एफ.पी.ओ.) का संवर्धन कृषि उत्पादक संगठन छोटे धारकों को बड़े पैमाने पर नुकसान से उबारने और आधुनिक प्रौद्योगिकी तथा दूर के बाजारों तक अपनी पहुंच बढाने में मदद करने के लिए एक संस्थागत नवाचार है।
- किसान डिजिटल कार्ड डिजिटलीकरण होना चाहिए, जिससे कृषक को ऋण मिलने में समय कम लगे।
- **व्यापारिक कृषि को बढावा देनाः** यह खेती का एक आधुनिक तरीका है जो बड़े पैमाने पर किया जाता है। इस प्रकार की खेती में बड़ी भूमि और मशीनों का उपयोग किया जाता है। जो खेती की उत्पादन लागत को कम करता है तथा लाभ को बढाता है।
- **कृषि निर्यात नीति की जागरूकता बढानाः** भारत एक बड़े और विविध कृषि वाला देश है जो अनाज, दूध, चीनी, फलों सब्जियों, मसालों, अण्डे और समुद्री खाद्य उत्पादों के क्षेत्र में विश्व के अग्रणी उत्पादकों में से एक है। भारतीय कृषि हमारे समाज में लगभग 50 प्रतिशत आबादी को लगभग आजीविका प्रदान करती है। भारत विश्व की कुल जनसंख्या का 17.84 प्रतिशत कुल पशुधन आबादी का 15 प्रतिशत है, परन्तु विश्व की कुल 2.4 प्रतिशत भूमि और 4.00 प्रतिशत जल संसाधन है। अतः निरन्तर उत्पादकता कटाई के पूर्व और बाद के प्रबन्धन, प्रसंस्करण और मूलवर्धन, प्रौद्योगिकी के प्रयोग और अवसंरचना निर्माण के लिए निरन्तर नवाचार और प्रयास भारतीय कृषि के लिए अनिवार्य तत्व है।
- वेयरहाउस के माध्यम से किसान एवं व्यापारी अपनी सुविधा के अनुसार घर बैठे ही सीधे ई– नाम पोर्टल से अपना उत्पाद ऑनलाइन बेच सकते है। केन्द्रीय भण्डारण निगम द्वारा दी जाने वाली यह सुविधा किसान एवं व्यापारी के लिये वरदान सिद्ध होगी इससे हमारे देष की ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास को नया आयाम मिलेगा।

डिजिटल मार्केटिंग के प्रकार

1. संर्च इंजन ऑप्टिमाइजेशन (SEO)

इसमें विशिष्ट खोज शब्दों के लिए खोज इंजन परिणाम पृष्ठों पर उच्च रैंक करने के लिए वैबसाइट का अनुकूलन करना शामिल है। SEO का उद्देश्य वैबसाइट की दृश्यता में सुधार करना और सर्च इंजनों से आर्गेनिक, ट्रैफिक को बढाना है। इसमें कीवर्ड रिसर्च, ऑनपेस ऑप्टिमाइजेशन और कंटेट मार्केटिंग जैसी विभिन्न तकनीकें शामिल हैं।

2. पे पर क्लिक (PPC)

पे पर क्लिक विज्ञापन पर पी.पी.सी. एक डिजिटल विज्ञापन मॉडल है, जिसमें विज्ञापनदाता प्रत्येक बार उपयोगकर्ता द्वारा उनके विज्ञापनों पर क्लिक करने पर भुगतान करते है। पी.पी.सी. एक लक्षित दर्शकों तक पहुंचने और जल्दी से लीड उत्पन्न करने का एक प्रभावी तरीका है। पी.पी.सी. विज्ञापन के लिये गूगल विज्ञापन, विंग विज्ञापन और फेसबुक विज्ञापन कुछ लोकप्रिय मंच है।

3. सोशल मीडिया मार्केटिंग (SMM)

सोशल मीडिया मार्केटिंग एक ब्रांड उत्पाद या सेवा को बढावा देने के लिए फेसबुक ट्विटर, इंस्टाग्राम और लिक्इडन जैसे फेसबुक प्लेटफॉर्म को प्रयोग करने की प्रक्रिया है। एस.एम.एम. मार्केटिंग के अन्तर्गत सामग्री बनाना, ग्राहकों को साझा करना, दर्शकों से जुड़ना और सशुल्क विज्ञापन चलाना शामिल है। इस माध्यम द्वारा ब्रांड जागरूकता बनाना, वेबसाइट ट्रैफिक बढाना और नेतृत्व उत्पन्न करना आदि ग्राहकों को जागरूक बनाने के प्रभावशाली कार्य प्रणाली है।

4. कंटेट मार्केटिंग

इस प्रक्रिया में ब्लॉग पोस्ट, वीडियो इन्फोग्राफिक्स, ई–पुस्तकों के माध्यम से दर्शकों को आकर्षित किया जाता है। कंटेट मार्केटिंग के माध्यम से ग्राहकों के साथ विश्वास बनाकर ब्रांड जागरूकता में सुधार लाया जा जाता है।

5. ई–मेल मार्केटिंग

इस विपणन विधि में लक्षित ग्राहकों एवं दर्शकों को ई–मेल मार्केटिंग के माध्यम से न्यूजलेटर्स, प्रमोशनल ई– मेलस और ट्रांसेक्शनल ई– मेल्स शामिल होते हैं। यह विधि द्वारा दर्शकों के साथ संवाद करने, सम्बन्ध बनाने का और लीड उत्पन्न करने का प्रभावी तरीका है।

6. अफीबियेट मार्केटिंग

यह एक प्रद्रशन आधारित मार्केटिंग तकनीक है जिसमें सहयोगी कमीशन के बदले उत्पादों या सेवाओं को बढावा देते हैं। यह बिक्री बढाने का प्रभावी तरीका है। सम्बन्ध विपणन व्यवसायों को दर्शकों तक पहुंचने और अन्य व्यवसायों के साथ सम्बन्ध बनाने में भी मदद कर सकता हैं।

7. इन्फलुएंसर मार्केटिंग

विपणन की इस प्रक्रिया में उत्पादों, सेवाओं या ब्रांडों को बढावा देने के लिये प्रभावित करने वालों के साथ साझेदारी करना शामिल है। इन्फलूएंसर में मशहूर हस्तियां, ब्लॉगर और सोशल मीडिया हस्तियाँ भी शामिल की जाती है।

8. विडियो मार्केटिंग

इस तकनीक में उत्पादों, सेवाओं या ब्रांडों को बढावा देने के लिये विडियो बनाना और साझा करना शामिल होता है। इसमें उत्पाद प्रर्दशन, व्याख्याकर्ता विडियो एवं प्रद्रशन पत्र आदि शामिल है।

डिजिटल मार्केटिंग का बेहतर उपयोग

- **शिक्षा**– डिजिटल मार्केटिंग का प्रयोग शैक्षिक उद्देश्यों जैसे–ई–लर्निंग प्लेटफॉर्म, ऑनलाइन पाठ्यक्रम और वेबिनार के लिये किया जा सकता है। इन विधियों द्वारा लोग दुनिया के किसी भी कोने से किसी भी समय और गति से शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं।
- **स्वास्थ्य**– डिजिटल मार्केटिंग के माध्यम से आम जनता ऑनलाइन चिकित्सा परामर्श, चिकित्सक अपॉइटमेन्ट, स्वास्थ्य पूरक उत्पाद, उपकरण एवं सेवाओं का लाभ उठा सकते हैं।
- **मनोरंजन**– टी.वी. शो, संगीत, फिल्में और विडियो गेम तथा मंनोरजन उत्पादों को बढावा देने के लिये डिजिटल मार्केटिंग बहुत ही लाभकारी है। आम जनता उपरोक्त मनोरंजन माध्यमों की ऑनलाइन खरीदारी कर सकती है।
- **सामाजिक कारण**– पर्यावरण जागरूकता, सामाजिक न्याय और मानवीय सहायता जैसे सामाजिक कार्यों को बढावा देने के लिये डिजिटल मार्केटिंग का प्रयोग भली–भांति किया जा सकता है। गैर लाभकारी संस्थायें व्यापक दर्शकों तक पहुंचने और जागरूकता बढाने के लिये डिजिटल मार्केटिंग को एक विशेष सहायता के रूप में प्रयोग कर सकते हैं।
- **व्यवसाय**– डिजिटल मार्केटिंग का व्यवसायों को लक्षित दर्शकों तक पहुंचाने में तथा ब्रांड जागरूकता बढाने में विशेष योगदान है।
- **पर्सनल बांडिग**– सोशल मीडिया के माध्यम से अपने कौशल का प्रर्दशन करके लोगों के बीच अपनी पहचान बनायी जा सकती है तथा अन्य सम्बन्धित लोगों के साथ सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है।
- **संचार**– डिजिटल मार्केटिंग का उपयोग ई–मेल मार्केटिंग, मैसेजिंग ऐपस् और सोषल मीडिया जैसे संचार उद्दष्यों के लिए किया जा सकता है।

सितम्बर से नवम्बर

1.	पहाड़ी पालक	6.	मेंथी	11.	गाजर
2.	मटर	7.	मूली	12.	लाही
3.	फूलगोभी	8.	प्याज	13.	शलजम
4.	हरी मिर्च	9.	लहसुन	14.	चुकन्दर
5.	हरी धनिया	10.	बाकुला		

मोटा अनाज-खुशहाल एवं स्वस्थ्य जीवन

संजय कुमार[1], विधापति चौधरी, शिवनाथ सुमन[1] एवं रविन्द्र कुमार तिवारी
कृषि विज्ञान केन्द्र, बिरौली, समस्तीपुर
डा. राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर[1]

मोटा अनाज को अब श्रीअन्न या सुपरफूड के नाम से अलंकृत किया गया है। यह दुनिया के सबसे पुराने उगाये जाने वाले अनाजों में से है और हजारों वर्षों से पूरे अफ्रिका एवं दक्षिण–पूर्व एशिया में उगाये जाते हैं। आज से करीब 300–400 वर्ष पहले मोटा अनाज हमारे देश की प्रमुख परंपरागत फसलें थी। किन्तु, 1960 के दशक में हरित क्रांति के आने के बाद खाद्यान्न की कमी की पूर्ति, देश की बढ़ती जनसंख्या एवं अधिक से अधिक लाभ कमाने के लिए, अन्धाधुन्ध धान–गेंहूँ की फसल प्रणाली को अपनाने से,मोटे अनाज की खेती का अस्तित्व को काफी नुकसान पहुंचा है। हमारे देश की बड़ी जनसंख्या जीवनशैली से जुड़ी हुई बीमारी से ग्रस्त है। इसमें कोई शंका नहीं है कि हमारे देश ने काफी तरक्की की है, काफी बदलाव हुआ है जिसके परिणामस्वरूप हमारे रहन–सहन का स्तर भौतिक रूप से उंचा उठा है, किन्तु स्वास्थ्य के परिपक्ष्य में हम नीचे जा रहे हैं, जोकि एक चिंताजनक स्थिति है। भारत सरकार के आंकड़ों के अनुसार इसके क्षेत्रफल में लगभग 60 प्रतिशत तक की कमी हुई है। बढ़ते तापमान एवं मानसून के बदलते चक्र के कारण खाद्यान्न फसलों की सुरक्षा पर खतरा मंडराने लगा है। मोटा अनाज जलवायु परिवर्तन के प्रति अधिक सहिष्णु है। इसलिए खाद्य आपूर्ति की समस्या के निदान में यह एक अच्छा विकल्प हो सकता है।

वर्तमान समय में मोटे अनाज की फसलों की खेती मुख्यतः भारत के गुजरात, हरियाणा, राजस्थान, उत्तरप्रदेश, छतीसगढ़, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडू, तेलंगना एवं आंध्रप्रदेश आदि राज्यों में की जाती है। यह फसल पोषक तत्वों से भरपूर है जिसकी खेती पहाड़ी एवं तटीय क्षेत्रों, वर्षा एवं सूखे–चाहे जैसी परिस्थिति हो, में सफलतापूर्वक की जा सकती है। इसकी खेती के लिए मिट्टी की प्राकृतिक उर्वरता एवं नमी ही पर्याप्त होती है।

मोटे अनाज के अन्तर्गत मुख्य रूप से ज्वार, बाजरा, मडुआ, चीना, कोदो, कंगनी एवं सांवा आदि फसलें आती हैं। इन फसलों में पोषक तत्वों जैसे–विटामिन–डी, फॉस्फोरस, पोटेशियम, कैरोटीन, मैगनेशियम, कैल्शियम, आयरन आदि प्रचूर मात्रा में पाये जाते हैं जिससे यह हमारे स्वास्थ्य से संबंधित कई तरह की बीमारियों जैसे–सुगर एवं कोलेस्ट्रोल के स्तरको कम करने, शारीरिक बजन कम करने, कैंसर के प्रभाव को रोकने, त्वचा को स्वस्थ्य रखने एवं अनिद्रा की स्थिति से बचाव करने आदि में काफी उपयोगी हैं।

वर्ष 2023 को संयुक्तराष्ट्रसंघ ने मोटा अनाज का अंतर्राष्ट्रीय वर्ष घोषित किया है। भारत सरकार ने भी इसके उत्पादन को बढ़ाने के लिए विभिन्न योजनाओं को प्रारंभ किया है, साथ ही इसका निर्यात एवं अंतर्राष्ट्रीय देशों में इसकी लोकप्रियता बढ़ाने के लिए बहुत काम कर रही है।

मोटे अनाज का प्रकार

ICRISAT की एक रिर्पोट के अनुसार मोटे अनाज को दो प्रमुख श्रेणियों में बांटा गया है। पहला–मेजर या बड़े दाने वाली फसल जिसमें ज्वार, बाजरा, रागी, चना आदि तथा दूसरा–माइनर या छोटे दाने वाली फसल जैसे–सांवा, कोदो, चीना, कंगनी, कुटकी आदि फसलें आती हैं।

मोटे अनाज का हमारे जीवन में महत्व

मोटे अनाज स्वास्थ्य के लिए भी बहुत लाभदायक होते हैं। इन फसलों में प्रोटीन,फाईबर, विटामिन–डी, कैल्शियम, लोहा, मैगनीज, मैगनेशियम, फॉस्फोरस, जिंक, पोटेशियम और तांबा आदि सहित बहुत से पोषक तत्व होते हैं। यह एंटीऑक्सीडेंट, फ्लेबोनोाइड्स, एंथोसायनीन, सेपोनिन और लिग्नीन्स् आदि का एक पावर हाउस भी है जो हमारे स्वास्थ्य के लिए बहुत लाभदायक हैं। इसके अतिरिक्त यह हमारे स्वास्थ्य को निम्न प्रकार से लाभ पहुंचाते हैंः–

1. यह रक्त शर्करा को नियंत्रित करता है

मोटे अनाज ग्लुटोन रहित होते हैं तथा इन काग्लाई सेमिकइंडेक्स कम होता है। इसके साथ ही, इनमें अधिक मात्रा में डायटरी फाइबर, सभी अमीनो एसिड्स, विटामिन्स, प्रोटीन और खनिज लवण पाए जाते हैं जिसके कारण यह रक्त शर्करा को नियंत्रित रखते है तथा शरीर में इंसुलिन और शर्करा रिसेप्टर्स की क्षमता को बढ़ाता है।

2. शारीरिक वजन घटाने में मदद करता है

अपने खान–पान में नियमित रूप से मोटे अनाज के उपयोग से मोटे लोग, अपने बी.एम.आई. को कम कर सकते हैं।

3. कैंसर पैदा करने वाली कोशिकाओं के विकास को रोकने में प्रभावी होते हैं

ऐसा सिद्ध हो चुका है कि फॉक्सटेल और प्रोसोकिस्म के मोटे अनाज कैंसर कोशिकाओं के निर्माण एवं विकास को कम करने में प्रभावी है। इनमें पाए जाने वाले फाइटो केमिकल्स शरीर के सामान्य कोशिकाओं को क्षति पहुँचाए बिना कोलन, ब्रेस्ट और लीवर में कैंसर कोशिकाओं के निर्माण को कम करते हैं।

4. पाचन में सहायक होता है

मोटे अनाज में पर्याप्त मात्रा में फाइबर होने से भोजन अच्छे से पचता है तथा पेट फूलना, सूजन, कब्ज, ऐंठन आदि जैसी समस्याऐं कम होती है, साथ ही, शरीर की रोगप्रतिरोधक क्षमता में मजबूती तथा लीवर और कीडनी जैसी महत्वपूर्ण अंग सूचारू रूप से काम करते हैं।

5. रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है

मोटा अनाज प्रोटीन का एक महत्वपूर्ण स्रोत है जो कि हमारे शारीरिक प्रतिरक्षा को मजबूत करने में मदद करता है अर्थात् बीमारियों की चपेट में आने की संभावना को कम करता है।

6. हृदय संबंधी रोगो से बचाव करता है

इन अनाजों में आवश्यक वसा (Essential fat) एवं पोटेशियम बहुतायत होती है जोकि शरीर में अतिरिक्त वसा के भंडारण को रोकता है और उच्च्य कोलेस्ट्रोल, हृदयघात तथा हृद्य संबंधी अन्य खतरों से हमें प्रभावी ढ़ंग से बचाता है साथ ही,रक्तचाप को नियंत्रित कर संचार तंत्र को अनुकूल बनाता है।

7. अस्थामा जैसे रोग से बचाव में सहायक होता है

मोटे अनाज में गेंहूँ जैसे अनाजों के विपरीत, एलर्जी पैदा करने वाले तत्व नहीं होते हैं जो सांस फूलने एवं घरघराहट का कारण बनते हैं।

8. यह एक एंटीऑक्सीडेंट की तरह कार्य करता है

यह अनाज अपने एंटीऑक्सीडेंट गुणों के कारण मानव शरीर को विषमुक्त करने में सहायक होता है और क्वेरसेटिन, एलार्जिकअम्ल, करक्यूमिन एवं कैटेचिन जैसे विषाक्त पदार्थों को शरीर से बाहर निकालकर एंजाइमिक क्रियाओं का बचाव करता है।

9. शरीर में ऊर्जा के स्तरको बढ़ाता है तथा मांसपेशियों और तंत्रिका तंत्र में सुधार करता है।

10. मेटाबोलिक सिंड्रोम और पार्किन्सन्स जैसे रोग से सुरक्षा प्रदान करता है।

11. कुपोषण दूर करने में मदद करता है।

12. मोटे अनाज जैसे–बाजरे की फसल, कीटों को अपनी ओर आकर्षित नहीं करती है जिससे फसल सुरक्षा पर होने वाले खर्च का बचाव होता है।

13. इनकी खेती में उर्वरकों एवं कीटनाशकों जैसी रसायनों की जरूरत नहीं के बराबर पड़ती है जिससे ये पर्यावरण के लिए भी बेहतर है।

14. मोटे अनाज की फसल जलवायु परिवर्तन के प्रति सहिष्णु होते हैं और इसके उत्पादन में पानी की खपत, धान–गेंहूं की अपेक्षा,बहुत ही कम होती है जिससे भू–जलस्तर में सुधार होता है।

15. अधिकांश मोटे अनाज को परिपक्व होने में कम समय (औसतन् 70–90 दिन) लगता है जिससे अगली फसल को समय पर बुवाई कर अधिकाधिक उत्पादन और लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मोटा अनाज न केवल पोषक तत्वों का भंडार है बल्कि वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन के अनुकूल एवं लचीलेपन वाली फसल भी है। जिन्हें कम लागत और कम संसाधन के द्वारा भी उत्पादित किया जा सकता है। आजकल समय के बदलाव के साथ–साथ हमारे खानपान की आदतों में भी बदलाव आ गया है। साथ ही,मोटा अनाजों का क्षेत्रफल, उत्पादन एवं इससे बनने वाले, खाद्य पदार्थों की भी कम हो गयी है। परिणामस्वरूप यह हमारे रसोई से भी दूर होते चले गये। किन्तु, अब स्वास्थ्य एवं समय की माँग है कि फिर से हम इन अनाजों से अपना रिश्ता जोड़ें ताकि हमारा स्वास्थ्य, हमारी प्रकृति एवं पर्यावरण सुरक्षित रहे।

परिश्रम करने की उम्र में अगर आराम करोगे
तो आराम करने की उम्र में परिश्रम
गाँधीजी

बदलते मौसम में राजमा की वैज्ञानिक खेती

संजय कुमार[1], विधापति चौधरी, शिवनाथ सुमन[1] एवं रविन्द्र कुमार तिवारी
कृषि विज्ञान केन्द्र, बिरौली, समस्तीपुर
डा. राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर[1]

विश्व में उगायी जाने वाली दलहनी फसलों में मूंगफली एवं मूंग के बाद प्रोटीन की गुणवत्ता के आधार पर राजमा महत्वपूर्ण तीसरी दलहनी फसल है। कृषि एवं मानव पोषण विशेषज्ञों के अनुसार यदि देश में राजमा की खेती बड़े पैमाने पर किया जाए तो देश में व्याप्त प्रोटीन की कमी की पूर्ति सहज ही संभव हो जाएगा। इसके दानों में 22.5 प्रतिशत प्रोटीन, 61.7 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट तथा 1.5 प्रतिशत वसा के अलावा लोहा, कैल्सियम एवं विटामिन–बी कम्पलेक्स आदि प्रचूर मात्रा में पाये जाते हैं। इसकी हरी फलियों की सब्जी और दानों का उपयोग दाल बनाने में होता है। इसका हरा चारा पशुओं के लिए प्रोटीन का उत्तम स्रोत है तथा सूखे पौधों को सूखे–भूसे के रूप में खिलाने के क्रम में काम आता है। देश में इसकी खेती एक नगदी फसल के विकल्प के रूप में की जाती है। भारत के पर्वतीय क्षेत्रों जैसे– जम्मू–कश्मीर, हिमाचल प्रदेश एवं उत्तराखंड में इसकी खेती खरीफ मौसम में तथा मैदानी क्षेत्रों जैसे–पंजाब, हरियाणा, बिहार, उत्तरप्रदेश, मध्य प्रदेश आदि राज्यों में रबी मौसम में की जाती है।

राजमा शीतोष्ण जलवायु की फसल है। इसकी खेती 13^0 से 15^0 तापक्रम पर सफलतापूर्वक की जा सकती है। किन्तु 30^0 से अधिक तापक्रम इसकी फसल के लिए हानिकारक होता है। अन्य फसलों की अपेक्षा राजमा की फसल को पाला काफी नुकसान पहुंचाता है। साथ ही, कोहरा या बादल युक्त मौसम में इसकी फसल पर कीट–व्याधियों का प्रकोप अधिक होता है।

मिट्टी

इसकी खेती उत्तम जल निकास युक्त हल्की एवं भारी दोनों ही प्रकार की भूमि में की जा सकती है। अधिक जल–जमाव वाली मिट्टी में इसकी फसल में उकठा रोग लगने की सम्भावना होती है। इसकी खेती के लिए 6.0 – 7.5 पी.एच. मान वाली उपजाऊ मिट्टी सर्वोत्तम होता है।

खेत की तैयारी

राजमा की फसल मृदा जनित रोगों के प्रति संवदेनशील होती है। अतः इसके रोकथाम के लिए गर्मी के मौसम में खेत की गहरी जुताई मिट्टी पलटने वाली हल से करना आवश्यक होताहै। इसके बाद 2–3 बार कल्टीवेटर से जुताई कर खेत की मिट्टी को भुरभूरी बना लेनी चाहिए। प्रत्येक जुताई के बाद पाटा अवश्य देनी चाहिए जिससे नमी संरक्षित रहे।

अनुशंसित प्रभेद

उत्तरी भारत के राज्यों में राजमा के अनुशंसित प्रभेदों में अम्बर (आइ.आइ.पी.आर. 96–4), उत्कर्ष (आइ.आइ.पी.आर. 98–5), मालवी–15 (एच.यू.आर.–15), पी.डी.आर.–14 (उदय), आदि की खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है। उपरोक्त किस्में लगभग 120–130 दिनों में तैयार हो जाती है और इनकी उपज क्षमता 18–25 क्विंटल प्रति हेक्टर है।

बीजदर एवं बुवाई

राजमा की फसल में बीज दर इसके बीज के आकार पर आधारित होती है। वैसे इसकी एकल खेती के लिए 120–125 कि.ग्रा./हेक्टर बीज की आवश्यकता होती है। बीज को बुवाई से पहले कार्बेन्डाजिम दवा की 2.5 ग्राम/कि.ग्रा. अथवा मेन्कोजेव + मेटालेक्सिल के मिश्रण की 0.5 ग्राम/कि. ग्रा. बीज की दर से उपचारित कर लेना चाहिए जिससे बीज जनित रोगों से फसल का बचाव हो सके। बीज की बुवाई में पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30 से.मी. एवं बीज से बीज की दूरी 10 से.मी. रखना चाहिए। बुवाई के समय मिट्टी में पर्याप्त नमी होनी चाहिए जिससे बीजों का अंकुरण शीध्र एवं समान रूप से हो। इसके बीज की बुवाई उपरोक्त अन्तरण के अनुसार कूंड बनाकर करनी चाहिए। राजमा के साथ मक्का, गेंहूँ एवं आलू की अन्तरवर्ती खेती भी लाभदायक पायी गई है जो निम्नलिखित अनुपात में होती है: राजमा + मक्का– 4:1, राजमा + आलू– 2:2, राजमा + गेंहूँ – 4+1

बुवाई का समय

राजमा की बुवाई का समय अन्य फसलों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि देर से अथवा जल्दी बोई गई फसल की उपज में 30–40 प्रतिशत तक की कमी हो जाती है। अतः अधिक उपज प्राप्त करने के लिए इसकी बुवाई निर्धारित उपयुक्त समय पर ही करनी चाहिए। देश के उत्तर–पश्चिमी भागों जैसे–पंजाब, हरियाणा में बुवाई का उपयुक्त समय मध्य सितम्बर है। जबकि मध्य एवं पूर्वी–उत्तरी पर्वतीय क्षेत्रों में इसकी खेती खरीफ मौसम होने के कारण इसे 15 जून से 07 जुलाई तक इसकी बुआई कर देनी चाहिए।

खाद एवं उर्वरक

राजमा एक दलहनी फसल होने के बावजूद भी इसके पौधों की जड़ों में राइजोबियम बैक्टिरिया पायी जाने वाली गांठ नहीं बनती है। जिससे दवा युमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण नहीं होता है। अतः फसल के बीजों की बुवाई से पूर्व 10 टन प्रति हेक्टर की दर से पूर्ण रूप से सड़ी हुई गोबर या कम्पोस्ट की खाद पूरे खेत में बिखेर कर मिला देनी चाहिए। उत्तर भारत में इसकी फसल को 100–110 कि.ग्रा. नेत्रजन, 50–60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 25 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हेक्टर की आवश्यकता होती है। इसके अलावा मिट्टी की जांचोपरांत 20–25 कि.ग्रा. प्रति हेक्टर की दर से सल्फर का प्रयोग करना चाहिए। उपरोक्त उर्वरकों में से एक तिहाई नेत्रजन तथा फॉस्फोरस, पोटाश एवं सल्फर की पूरी मात्रा को खेत की अंतिम जुताई के समय मिट्टी में मिला देना चाहिए। इसके बाद बीज की बुवाई कर खेत में पाटा देकर इसे मिट्टी से ढंक देनी चाहिए। नेत्रजन की बची हुई शेष मात्रा को दो बराबर भागों में बांटकर एक भाग बुवाई के 30–35 दिनों पर सिंचाई के बाद तथा दूसरा भाग 50–60 दिनों पर फसल की दूसरी सिंचाई के बाद उपरिवेशन द्वारा देनी चाहिए। अन्तरवर्ती खेती में अन्तरवर्ती फसल के लिए अनुशंसित दर पर नेत्रजन का उपरिवेशन करनी चाहिए। जिन मिट्टियों में जिंक एवं बोरान की कमी होती है उसमें 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट एवं 10 कि.ग्रा. बोरेक्स प्रति हेक्टर की दर से बीज बोने से पूर्व, मिट्टी में मिला देने से राजमा की उपज में लाभकारी वृद्धि होती है।

सिंचाई प्रबंधन

राजमा की खेती केवल सिंचित क्षेत्रों में की जाती है और इसकी फसल में सिंचाई की संख्या मिट्टी की किस्म, जलवायु एवं फसल बोने के समय पर निर्भर करती है। वैसे मध्य भारत में राजमा की फसल में 4 सिंचाई, पूर्वोत्तर भारत में 3 सिंचाई एवं उत्तर भारत में केवल 2 सिंचाई (शीतकाल में वर्षा होने पर) की आवश्यकता होती है जिनमें पहली सिंचाई 25–30 दिनों पर तथा दूसरी 50–60 दिनों पर फूल आने के समय करनी चाहिए। प्रत्येक सिंचाई हल्की करनी चाहिए। जल जमाव के कारण पौधे की पत्तियाँ पीली हो जाती है, बढ़वार प्रभावित होने के कारण फलियां कम बनती है, उकठा रोग हो सकते हैं और इस प्रकार उत्पादन कम होता है।

खरपतवार नियंत्रण

देश में खरीफ एवं रबी दोनों मौसम में राजमा की खेती होने के कारण खरपतवार का प्रकोप होता है। खरीफ मौसम में मोथा, पत्थरचट्टा, दूबघास आदि जबकि रबी मौसम में बथुआ, कृष्णनील, अकरा, सें जी आदि खरपतवारों का मुख्य रूप से प्रकोप होता है जिसके कारण राजमा के उत्पादन में 30–40 प्रतिशत तक की हानि होती है। अतः इसकी फसल में बुवाई के 25–30 दिनों के बाद खुरपी या हैण्ड हो से एक निराई–गुड़ाई कर देनी चाहिए साथ ही जहाँ बीज का जमाव नहीं हुआ हो वहाँ पर गैप फिलिंग कर देनी चाहिए। श्रमिकों की कम या अनुप्लब्धता की स्थिति में खरपतवार का नियंत्रण रसायनिक विधि से करने के लिए पेन्डी मिथालीन का 3 लीटर प्रति हेक्टर की दर से 1000 लीटर पानी में घोलकर बुवाई के तुरंत बाद पाटा चलाने के बाद, खेत में समान रूप से छिड़काव करनी चाहिए अन्यथा खरपतवार नष्ट नहीं होंगे या फिर खरपतवार के साथ–साथ फसल भी नष्ट हो सकती है।

पौधा संरक्षण

प्रमुख कीट एवं नियंत्रण

क. लीफहॉपर

मैदानी क्षेत्रों में इस कीट का प्रकोप मध्य फरवरी से शुरू होता है। राजमा की फसल में यह कीट पौधों से रस चूसकर इसे क्षति पहुंचाता है, पत्तियाँ मुड़ जाती है, पौधों बौने रह जाते है जिससे फलियाँ नहीं बनती है और अन्ततः उपज काफी कम हो जाती है। इसके नियंत्रण के लिए एसिटामिप्रिड दवा की 50 ग्राम मात्रा को प्रति एकड़ की दर से 100 से 125 लीटर पानी में अच्छी तरह घोलकर छिड़काव करनी चाहिए।

ख. माहू

राजमा की फसल में मुख्यतः कालामाहू का प्रकोप होता है। यह कीट पौधों का रस चूसता है और अधिक प्रकोप की स्थिति में पौधे की वृद्धि रूक जाती है। इस कीट के प्रकोप की स्थिति में राजमा की फसल में विषाणु जनित बीमारियाँ होने की संभावना बढ़ जाती है। इसके नियंत्रण के लिए:

1. खेत की मिट्टी में कार्बोफ्यूरान 1 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व प्रति हेक्टर की दर से व्यवहार करने पर राजमा की फसल में 30–40 दिनों तक माहू तथा अन्य रस चूसने वाले कीटों का प्रकोप नहीं होता है।
2. इसके रासायनिक नियंत्रण के लिए उपरोक्त दवा (एसीटामिप्रिड) का छिड़काव करनी चाहिए।

ग. सफेद मक्खी

इसका प्रकोप पौधे के विकास के प्रारंभिक अवस्था में होता है। यह भूमि के पास तने के अंदर प्रवेश कर और तने के अंदर के कोमल तंतुओं को खाकर अपना जीवन चक्र पूरा करते हुए पूर्ण विकसित मक्खी बनकर बाहर निकलती है जिससे पौधे का विकास नहीं होता, तने का आधा भाग झुक जाता और अंततः पौधा सूख जाता है। पत्तियों पर सफेद धारी बनना इसके प्रकोप का मुख्य संकेत है।

नियंत्रण

1. राजमा की समय पर बुवाई करनी चाहिए।
2. इस कीट से प्रभावित पौधों की शाखाओं को प्रारंभिक अवस्था में नष्ट कर देना चाहिए।
3. कार्बेन्डाजिम दवा की 2.5 ग्राम मात्रा प्रति कि.ग्रा. की दर से उपचारित कर बुवाई करनी चाहिए।
4. रासायनिक नियंत्रण के लिए इमिडाक्लोरपिड दवा की 1 एमएल प्रति 3 लीटर पानी एवं साइपरमेथेरीन दवा की 0.5 एम.एल. प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करनी चाहिए।

घ. जेसिड

इस कीट का नियंत्रण भी एसिटामिप्रिड दवा के छिड़काव से हो जाता है।

प्रमुख रोग एवं उनका नियंत्रण

राजमा की फसल में मुख्यतया जड़ गलन, तना का झुलसा रोग, पर्णचित्ती एवं मोजैक आदि रोगों का प्रकोप होता है जिससे फसल को काफी नुकसान होता है और उपज भी प्रभावित होती है। अतः उपरोक्त रोगों में जड़ गलन, तना का झुलसा रोग एवं पर्णचित्ती के नियंत्रण के लिए बेविस्टिन/कार्बेन्डाजिम दवा का 2.5–3.0 ग्राम मात्रा प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से बीजोपचार या इसके 0.2 प्रतिशत घोल का छिड़काव करना चाहिए। किन्तु मोजैक रोग के नियंत्रण के लिए सबसे अच्छा उपाय केवल रोग प्रतिरोधक किस्म जैसे–अम्बर, उत्कर्ष आदि की बुवाई और एफिड जैसी कीटों का नियंत्रण ही है।

कटाई एवं मड़ाई

जब राजमा के पौधे की समस्त पत्तियाँ पीली होकर और सूख कर झड़ जाती है तो यह फसल पकने का संकेत है। तब इसकी कटाई कर लेनी चाहिए। यह अवस्था बोने के 125–130 दिनों के बाद

आती है। परिपक्व फसल की कटाई सुबह के समय में जब ओस रहती है हँसिया के द्वारा कर लेना चाहिए। इसके बाद फसल की मड़ाई 2–3 दिन धूप में सुखाने के बाद डन्डे या मड़ाई येत्र से कर लेनी चाहिए और भूसे से दानों को अलग करने के बाद इसके भंडारण पूर्व इसे धूपमें 10–12 प्रतिशत नमी तक सूखा लेना चाहिए।

उपज

उपरोक्त उन्नत वैज्ञानिक सस्य क्रियाओं के द्वारा इसकी खेती करने पर राजमा की 20–25 क्विंटल प्रति हेक्टर तक उपज प्राप्त की जा सकती हैं।

उम्मीद के साथ शुरू हुआ प्रत्येक दिन अनुभव के साथ ही खत्म होता है।

–महात्मा बुद्ध

उन्नत कृषि प्रौद्योगिकियों के प्रसार में मोबाइल ऐप्स की भूमिका

रेनू जेठी[1], प्रतिमा जोशी[2], गिरिजेश सिंह महरा[3] एवं गीतांजलि जोशी[4]
भाकृअनुप–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल[1]
भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली[2,3,4]

सूचना एवं प्रौद्योगिकी (आईसीटी) ने कृषि के विकास और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सूचना प्रौद्योगिकी सूचना एकत्र करने, संसाधित करने और प्रसारित करने हेतु इंटरनेट, मोबाईल फोन और सेंसर जैसी डिजिटल प्रौद्योगिकियों के उपयोग को संदर्भित करता है। इनमें पारंपरिक दूरसंचार, टेलीविजन, रेडियो, सेलफोन और स्मार्ट डिवाइस जैसे कंप्यूटर, इंटरनेट, सेंसर, भौगोलिक सूचना प्रणाली (जीआईएस), उपग्रह और कई आधुनिक प्रौद्योगिकियों सहित अभिसरण प्रौद्योगिकियों की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल है। इनके उपयोग से आज किसान नवीनतम कृषि आधारित नवीन सूचना एवं जानकारी प्राप्त कर बेहतर सुविचारित निर्णय लेने में सक्षम है। कृषि द्वारा अधिक आय अर्जित करने के लिए किसानों को मौसम पूर्वानुमान, इनपुट प्रबंधन, बीजों की उपलब्धता, कीट व रोग प्रबंधन एवं मार्केटिंग की विस्तृत जानकारी की आवश्यकता होती है। भारत में कृषि प्रसार कार्यकर्ता का किसानों से अनुपात 1:1162 है जबकि अनुशंसित अनुपात 1:750 है। कृषि प्रसार कार्यकर्ताओं की इस कमी को सूचना संचार तकनीकियाँ भारत के दूर दराज के किसानों को प्रभावी कृषि प्रसार सेवांए प्रदान कर कम कर रही हैं। सूचना संचार तकनीकियाँ इंटरनेट के माध्यम से आसानी से कम खर्च में एवं समयानुकूल प्रत्येक किसान तक पहुँचने में सक्षम है। भारत के शहरी व ग्रामीण इलाकों में अपनाए जाने वाले सूचना संचार तकनीकियों में सबसे अधिक उपयोग होने वाली तकनीक है मोबाईल फोन या स्मार्ट फोन।

नील्सन की इंडिया इंटरनेट रिर्पोट 2023 के अनुसार, दिसंबर 2022 तक भारत में 700 मिलियन से अधिक सक्रिय इंटरनेट उपभोक्ता थे। इनमें से 425 मिलियन ग्रामीण उपभोक्ता थे, जो शहरी क्षेत्रों के मुकाबले 44% अधिक था। गत 20 वर्षो में सूचना संचार तकनीकियों से कृषि सहित हर क्षेत्र में क्रांति आ गई है। शुरूआती दौर में कृषि सहित हर क्षेत्र में मात्र इंटरनेट के उपयोग से लेकर आज वर्तमान में स्मार्ट फोन एवं मोबाईल एप के उपयोग तक कृषि के अधिकाँश कार्यो के लिए सूचना इलेक्ट्रोनिक माध्यम से प्राप्त की जा रही है। स्मार्ट फोन एवं कंप्यूटर केद्रों की बढ़ती संख्या के कारण भारत के अधिक दूरदराज के इलाके भी इस उन्नत तकनीक के माध्यम से दी जाने वाली जानकारी से लाभान्वित हो रहे हैं। भारत में कृषि से संबधित मोबाईल ऐप्स किसानों को नवीनतम कृषि पद्वतियों, कृषि समाचार, सरकारी योजनाओं और आस–पास के कृषि मशीनरी डीलर तक त्वरित पहुँच के बारे में जानकारी पहुँचाने में मदद करते हैं। पूर्व में जानकारी के अभाव के कारण अधिकतर किसान अधिक उपज नहीं प्राप्त कर पाते थे। इन कृषि संबधित मोबाईल ऐप्स की मदद से किसान खेती के तरीकों में सुधार ला रहे हैं, उन्नत कृषि उपकरणों का उपयोग कर रहे है। इसके साथ ही मौसम का पूर्वानुमान, उर्वरक का उपयोग, एकीकृत कीट प्रबधन आदि विषयों पर जानकारी प्राप्त कर रहे हैं। स्मार्ट कृषि हेतु आज ऐसे मोबाईल एप्लिकेशन उपलब्ध हैं जो नवीनतम कृषि जानकारी जैसे–कीटों और बिमारियों की पहचान, मौसम के बारे में रीयल टाइम डेटा, तूफानों के बारे में पूर्व चेतावनी, स्थानीय बाजार, सर्वोत्तम मूल्य, बीज, उर्वरक आदि की जानकारी किसानों को उनके द्वार तक देते हैं।

कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय भारत सरकार एवं निजी संस्थानों व कम्पनियों द्वारा विकसित कई महत्वपूर्ण मोबाईल ऐप्स स्मार्ट कृषि हेतु भौगोलिक सूचना प्रणाली (जी.आई.एस.) एवं डेटा एनालिटिक्स का उपयोग कर किसानों को उनके द्वार पर सटीक जानकारी दे रहे हैं।

किसान सुविधा

किसान सुविधा ऐप किसानों को मौसम, बाजार मूल्य, डीलरों, पौधों की सुरक्षा, आईपीएम, बीज, विशेषज्ञ सलाह, मृदा स्वास्थ्य कार्ड, गोदाम और कोल्ड स्टोरेज के बारे में जानकारी प्रदान करता है। किसान सुविधा भारत में अग्रणी कृषि ऐप्स में से एक है, जिसे 2016 में माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी द्वारा लॉन्च किया गया था। इसके अलावा, ऐप किसानों को सशक्त बनाता है और उन्हें ऐसी

जानकारी प्रदान करता है जिससे उनकी खेती की उपज बढ़ सकती है।

यह ऐप किसानों के लिए केंद्र और राज्य सरकार द्वारा शुरू की गई सभी योजनाओं और सेवाओं को सूचीबद्ध करता है। उपयोगकर्ता के अनुकूल इंटरफेस के साथ, ऐप विभिन्न जानकारी प्रदान करता है जैसे अगले सप्ताह के लिए मौसम का पूर्वानुमान, आस–पास के क्षेत्रों में वस्तुओं और फसलों की बाज़ार दरें, फसल बीमा की जानकारी, उर्वरक, बीज और अन्य चीज़ों के खुदरा विक्रेताओं के बारे में जानकारी, मिट्टी की उर्वरता, जैविक खेती के लिए सुझाव आदि। यह ऐप कई भाषाओं में उपलब्ध है, जिसे पूरे भारत में किसान आसानी से इस्तेमाल कर सकते हैं।

पूसा कृषि

इस मोबाइल ऐप को किसानों के खेतों तक भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के संस्थानों द्वारा विकसित तकनीकों को ले जाने के लिए शुरू किया गया है। इसमें विकसित फसलों की नई किस्मों से संबंधित जानकारी, कृषि मशीनरी और इसके कार्यान्वयन और उत्पादन प्रौद्योगिकियों की विस्तृत जानकारी है।

मृदा स्वास्थ्य कार्ड मोबाइल ऐप

यह एप्लिकेशन किसानों के द्वारा दिये गए मृदा की जांच रिपोर्ट उन तक आसान तरीके से पहुंचाता है। स्मार्ट कृषि की ग्लोबल पोजीशनिंग तकनीकी का उपयोग कर किसान के खेत के सटीक स्थान एवं मृदा गुणवत्ता को अंकित करता है।

भुवन ओलावृष्टि ऐप

इस मोबाइल ऐप द्वारा ओलावृष्टि के कारण फार्म को हुई हानी का डाटा तस्वीरों और भौगोलिक स्थान के साथ दर्ज होता है जिससे ओलावृष्टि से नुकसान का आकलन कर किसान को बीमा देने की प्रक्रिया आसान हो जाती है। स्मार्ट कृषि के डेटा एनालिटिक्स का उपयोग इस मोबाइल द्वारा होता है।

ई–नाम (e-NAM) मोबाइल ऐप

मोबाइल ऐप का उद्देश्य व्यापारियों/मंडियों द्वारा फसल मूल्य किसानों और अन्य हितधारकों को उनके स्मार्ट फोन पर सही समय पर उपलब्ध कराना है। इसमे स्मार्ट कृषि के डेटा एनालिटिक्स का उपयोग किया गया है तथा किसानों को बिडिंग की सुविधा भी दी गई है

ऐग्री–मार्केट मोबाइल ऐप

एग्रीमार्केट मोबाइल ऐप का इस्तेमाल किसान अपने मोबाइल डिवाइस के 50 किमी के भीतर फसलों का बाजार मूल्य जानने के लिए कर सकता है। यह ऐप मोबाइल का उपयोग करने वाले व्यक्ति की लोकेशन अपने आप कैप्चर कर लेता है तथा 50 किमी के अंतर्गत बाज़ारों के जीपीएस एवं कीमत की जानकारी किसान को देता है।

राइस एक्सपर्ट

यह भा.कृ.अनु.प. –राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान, कटक द्वारा वर्ष 2017 में विकसित ऐप है। इसे चावल संबन्धित समस्त जानकारी प्रदान करने के लिए विकसित किया गया है। इस एप के माध्यम से फसल में विभिन्न पारिस्थितिकी के लिए चावल की किस्में, पोषक तत्व उपलब्धता, खरपतवार नियंत्रण, सूत्रकृमि प्रबंधन, कीट प्रकोप एवं नियंत्रण, रोग संबंधी समस्याएं व निवारण, फसल प्रबंधन, श्रम कम करने हेतु उपलब्ध कृषि माननिकरण आदि जानकारी दी गयी है। यह ऐप चावल में त्वरित समाधान के लिए प्रश्नों के उत्तर, चित्र द्वारा समस्या का आकलन और आवाज के माध्यम से नैदानिक उपकरण के रूप में कार्य करता है।

गेहूँ डॉक्टर

गेहूँ डॉक्टर (व्हीट डॉक्टर), भारतीय गेहूँ और जौ अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित एक एप्लिकेशन है। यह मुख्य रूप से गेहूँ में होने वाली बीमारियों, कीट, रोग प्रतिरोधी गेहूँ किस्मों, आईपीएम

रणनीतियों और फसल कटाई के बाद के भंडारण प्रबंधन के बारे में जानकारी प्रदान करता है। इस जानकारी का उपयोग करके किसान अपनी फसल की बेहतर देखभाल कर सकते हैं ,और उसमें होने वाले रोगों व कीटों की पहचान कर उस बीमारी व कीट को नियंत्रित करने के लिए उचित तरीका अपना सकते हैं। यह किसानों को उनकी फसल उत्पादकता बढ़ाने में मदद करता है। यह मुख्य हानिकारक कीड़ों (की उनकी तस्वीरों के साथ), उनके बारे में जानकारी प्रदान करता है ताकि किसान उन्हें आसानी से पहचान सकें।

कीटनाशक और कवकनाशी कैलकुलेटर

भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय समेकित नाशीजीव प्रबंधन अनुसंधान केंद्र, नई दिल्ली ने 12 प्रमुख फसलों अर्थात चावल, कपास, गोभी, फूलगोभी, बैंगन, अरहर, मूंगफली, टमाटर, सोयाबीन, चना, मिर्च, भिंडी के लिए वेब और मोबाइल प्लेटफॉर्म पर कीटनाशक और फफूंद नाशक ऐप विकसित किया है। कीटों और रोगों के प्रबंधन के लिए विवेकपूर्ण कीटनाशक चयन, शोधकर्ताओं, कृषि प्रसार कर्मियों और किसानों को लेबल के साथ कीटनाशकों के चयन और उपयोग के लिए सहायता करना इन एप का मुख्य उद्देश्य है।

खेती बाड़ी

चूँकि जैविक खेती लगातार बढ़ रही है, खेती बाड़ी किसानों के लिए सबसे अच्छा ऐप है जो जैविक खेती से संबंधित जानकारी को बढ़ावा देता है। इसके अलावा, यह भारत में किसानों से संबंधित सभी मुद्दों या महत्वपूर्ण जानकारी को संबोधित करता है। ऐप चार प्रमुख भाषाओं – हिंदी, मराठी, अंग्रेजी और गुजराती में उपयोग के लिए उपलब्ध है। यह ऐप उन किसानों के लिए जरूरी है जो हानिकारक रसायन–आधारित कृषि गतिविधियों को कम करते हुए प्राकृतिक और जैविक खेती का विकल्प चुनना चाहते हैं।

इसके अतिरिक्त विभिन्न सरकारी संथाओं, निजी कोंपनियों द्वारा भी कई एप विकसित किए गए है जो स्मार्ट कृषि तकनिकों का उपयोग कर सही समय पर सटीक जानकारी किसानों तक पहुंचते हैं जैसे सोलापुर अनार, केन एड्वाइजर, पशु पोषण, कृषि विडियो एडवाइज एप इत्यादि। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने मोबाइल एप की महता को समझते हुए एक खास मोबाइल एप गैलरी का निर्माण भी किया है जहां पर 355 कृषि मोबाइल एप की विस्तृत जानकारी एवं डाउनलोडिंग लिंक उपलब्ध है।

https://krishi.icar.gov.in/mobileapp/

पाँच मिनट और सोने की आदत हमें घण्टों सुला देती है,
यही आलस्य जीवन में हमें बरसों पीछे कर देता है।

–रतन टाटा

कृषि फसलों पर जंगली जानवरों का खतरा: कारण और संभावित समाधान

इंदु रावत[1], मनीषा आर्या[2] एवं रेनू जेठी
भाकृअनुप–भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण संस्थान, देहरादून[1]
भाकृअनुप–कृषि विज्ञान केंद्र, चिन्यालीसौड़, उत्तरकाशी[2]
भाकृअनुप–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल[3]

परिभाषा

फसल उत्पादन के दौरान फसल सुरक्षा अत्यधिक कठिन व महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। किसान को दिन–रात इसी बात की चिंता रहती है कि खेत में की गई उसकी मेहनत व्यर्थ न हो जाए। प्राकृतिक आपदा के अलावा हिरण, जंगली सूअर, खरगोश, छछूंदर, हाथी, बंदर नील गाय जैसे कई अन्य जानवर फसलों को गंभीर नुकसान पहुंचाते हैं। वे पौधों के हिस्सों को खाकर या खेतों को रौंदकर खड़ी फसल को नुकसान पहुंचाते हैं।

वन्यजीवों द्वारा जंगल को होने वाली क्षति व्यापक रूप से फैली हुई है और आमतौर पर कम ध्यान आकर्षित करती है। शायद, सबसे अधिक प्रभाव पेड़ों के प्रजनन पर पड़ता है, क्योंकि बड़ी संख्या में पक्षी और स्तनधारी जानवर पेड़ों के बीजों को खा जाते हैं। विभिन्न प्रकार के छोटे स्तनधारियों, विशेष रूप से चूहों, चिपमंक्स और गिलहरियों द्वारा कृत्रिम रूप से बोए गए और प्राकृतिक वन प्रजनन दोनों को गंभीर रूप से नुकसान पहुँचाया गया है।

जीवों के आक्रमण के प्रकार

- जंगली जानवर अपने पंजो से खेतो को खोदकर फसल को नुकसान पहुँचाते हैं।
- चूहे और छोटे जानवर ज़मीन में बिल बनाकर फसल को नष्ट कर देते हैं ।
- कुछ जानवर फसल के बीज खाकर या पौधो के हिस्से खाकर उन्हे नष्ट कर देते हैं।
- कुछ जानवर सिर्फ फसलों को रोंदकर ही खड़ी फसलों को खराब कर देते हैं ।

फसल क्षति में शामिल जानवर

जानवर	नुकसान
खरगोश	पौधे, पेड़ और झाड़ियाँ।
हिरण	पत्ते, टहनियाँ और छाल।
चूहे	अन्न भंडार, मक्का और खाद्य भंडारण सुविधाएं
बंदर, जंगली सूअर, हाथी आदि	सोयाबीन, गेहूं और मक्का, गन्ना, आलू आदि

जानवरों द्वारा फसलों की क्षति गंभीर चिंता का विषय है। वन्यजीवों को विभिन्न प्रकार का भोजन पसंद है, जिसमें जड़ें, अंकुर, पत्तियाँ, फल, यहाँ तक कि घास भी शामिल है। इस कारण कृषि भूमि का बड़ा हिस्सा बंजर रह गया है। कृषि अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने के कारण किसानों को कृषि गतिविधियों को छोड़ अपनी आजीविका चलाने के लिए शहरों और अन्य क्षेत्रों में पलायन करना पड़ रहा हैं। जानवर फलों की फसलों को भी काफी नुकसान पहुंचाते हैं, जिससे बागवानों को भी भारी नुकसान होता है। इसके अलावा, जानवरों के प्रवास के परिणामस्वरूप वन क्षेत्र के जंगली पौधों के बीज फैलाव में गिरावट आई है जो कुछ वन पौधों की प्रजातियों को खतरे में डाल सकती है।

बढ़ते मानव पशु संघर्ष के कारण

- शिकार की अनुपस्थिति, प्राकृतिक आवासों का विनाश और भोजन की आदतों में बदलाव।
- जंगली फलदार वृक्षों के बागानों का विनाश/वनों की कटाई/ वनों में भोजन की कमी।
- गहन कृषि/बढ़ता शहरीकरण/जलवायु परिवर्तन।
- धार्मिक कार्य के रूप में बंदरों को चने, रोटी और फल खिलाना।
- अकुशल कचरा और अपशिष्ट प्रबंधन प्रणाली ने जानवरों को बचे हुए भोजन के रूप में भोजन प्रदान किया है।

सुझावात्मक उपाय

जानवरों के आतंक की समस्या जटिल प्रकृति की है। तत्काल अल्पकालिक उपाय करने के लिए कृषि, बागवानी, पशुपालन, वन विभाग, वन्य जीवन संरक्षण विभाग द्वारा समन्वित प्रयास की आवश्यकता है। दीर्घकालिक और स्थायी समाधान के लिए एक प्रभावी रूपरेखा की भी आवश्यकता है। संतुलन बनाने के लिए पारिस्थितिक समाधान ही एकमात्र उपाय है। एकीकृत कृषि प्रणाली (आई.एफ.एस) दृष्टिकोण जिसके तहत निम्नलिखित गतिविधियों को अपनाया जाना आवश्यक है।

- ऐसी फसलों की खेती को बढ़ावा देना जो जानवरों से क्षतिग्रस्त न हों जैसे जड़ वाली फसलें अदरक, हल्दी, अरबी, रतालू (जिमीकंद), गेंदा, बेल, नींबू घास, लैवेंडर आदि।
- डेयरी फार्मिंग को बढ़ावा देना, जिसके लिए चारे की खेती के तहत क्षेत्र विस्तार/विविधीकरण, जमीनी स्तर पर चारा बैंकों (हरा/सूखा) और घास मंडियों के निर्माण की आवश्यकता है।
- उपयुक्त फसल प्रणालियों के साथ–साथ चारे की खेती को बढ़ावा देना।
- फल, चारा, ईंधन और इमारती लकड़ी के लिए आई.एफ.एस में कृषि वानिकी को शामिल करना।
- गहरे वन क्षेत्रों में प्राकृतिक जंगली फलों के पौधे जैसे अंजीर, कैंथ, जामुन, बरगद, गरना, कोकुआ, शहतूत आदि को उगाकर गहरे जंगल के भीतर बंदरों की आबादी को स्थानीयकृत किया जा सके ताकि उनके लिए पर्याप्त भोजन उपलब्ध रहे।

फसल सुरक्षा के अभाव में किसानो की लगभग 15–20 प्रतिशत फसल खराब हो जाती है। समय पर प्रभावी फसल सुरक्षा तकनीक के अभाव में किसानों को आर्थिक नुकसान का सामना करना पड़ता है। आज के आधुनिक युग में फसलों की सुरक्षा के लिये कृत्रिम तकनीकों का प्रयोग किया जाता है जो महंगी होने के साथ–साथ पर्यावरण के लिये घातक भी होती है।

जैसे रासायनिक दवाओं का प्रयोग, एल.ई.डी लाइट, पटाखे, बंदूक, बिजली के तार, कांटेदार तार द्वारा फैसिंग, ट्रैक्टर से आवाज करना, डीजल इंजन द्वारा आवाज करा कर जंगली जानवरों और पक्षियों को खड़ी फसल से भगाना आदि। इसी प्रकार फसलों में कीड़ों व रोग के लिए रासायनिक दवाओं का प्रयोग करने से भूमि की उर्वराशक्ति कम हुई है। इसके साथ ही फसल की गुणवत्ता प्रभावित हुई है और मानव स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। इन सब तरीकों से वातावरण प्रभावित हुआ है। साथ ही लाभकारी जानवर और पक्षियों पर भी प्रभाव पड़ रहा है। इन तकनीकों से प्रकृति को हानि पहुँची है, खेती की लागत भी बढ़ी है और किसान को मुनाफा कम प्राप्त होता है।

हमारे देश में फसल सुरक्षा के लिये प्राचीन समय से परंपरागत विधियों को अपना कर किसान फसलों की सुरक्षा करते रहे हैं। प्राचीन समय में इस समस्या को दूर करने के लिए किसान परंपरागत वस्तुओं का उपयोग करके जंगली जानवरों और पक्षियों से फसलों का बचाव करते थे, जो लाभकारी और शून्य लागत पर तैयार की जाती थी। जिससे किसानों की आय भी बढती है, वातावरण भी शुद्ध रहता था तथा पर्यावरण प्रभावित नहीं होता था। किसान खेती की लागत को कम करने के लिए आज भी परंपरागत तकनीकों को अपनाकर फसलों को जंगली जानवरों से बचाते हैं।

परंपरागत व पर्यावरण के अनुकूल तकनीक का प्रयोग

- बोल्टबोटल मॉडल द्वारा फसल सुरक्षा
- बिजूका या बिजकना (स्कैयर क्रो)
- खेत के चारों ओर कांटेदार वृक्ष या कैक्टस लगाकर फसल सुरक्षा करना
- खड़ी फसल पर ताजा गोबर का छिड़काव
- तकनीकी हस्तक्षेप अर्थात मैदान के चारों ओर सोलर फेंसिंग, इलेक्ट्रिक फेंसिंग (गैर घातक), मंकी रिपेलेंट्स, मंकी स्केयर गन और लेजर गाइडेड अलार्म आदि का प्रयोग।
- मेड़ के किनारे औषधीय पौधों को लगाकर जानवरों को फसलों से दूर रखा जा सकता है।

प्राकृतिक विकर्षक का उपयोग

- **धुआँ**: कुछ क्षेत्रों में किसान हाथी का गोबर या अन्य सामग्री जलाते हैं जो सुलगती है और भारी धुआं पैदा करती है ।
- **मछली या लहसुन का प्राकृतिक इमल्शन**: खेत के चारों ओर कष्टप्रद और बदबूदार पदार्थों का उपयोग खरगोशों और हिरणों को दूर भगाता है ।
- **मधुमक्खी के छत्ते की बाड़ लगाना**: मधु मक्खियों की आवाज़ से हाथी पीछे हट जाते हैं यह प्रथा लाभदायक है क्योंकि मधुमक्खी पालन आय के अतिरिक्त स्रोत के रूप में कार्य करता है ।
- **काली मिर्च**: कैप्साइसिन रसायन मिर्च को तीखा बना देता है, हाथियों, बंदरों, गिलहरियों और कुछ अन्य जंगली जानवरों के खिलाफ एक उत्कृष्ट प्रतिरोधी है, मिर्च की खेती करने वाले किसानों को भी आय के अतिरिक्त स्रोत से लाभ होगा ।
- **अंडा आधारित विकर्षक**: हिरणों के विरुद्ध घरेलू विकर्षक
- **अरंडी का तेल**: एक प्राकृतिक विकर्षक है जो छछूंदर जैसे बिल में रहने वाले जानवरों को दूर रखता है।

रासायनिक विकर्षक

जंगली जानवरों को फसलों से दूर रखने के लिए रासायनिक विकर्षक जिनमें एन्थ्राक्विनोन, ब्यूटेनथिओल और मिथाइल एन्थ्रानिलेट जैसे सक्रिय पदार्थ शामिल हैं उपयोग किया जा सकता हैं।

इलेक्ट्रॉनिक विकर्षक

फसल सुरक्षा के लिए यह प्रभावी, लंबे समय तक चलने वाला और पर्यावरण–अनुकूल तरीका है जो जानवरों को नुकसान पहुंचाए बिना उन्हें दूर भगाता है। किसान निम्नलिखित दो प्रकार के इलेक्ट्रॉनिक रिपेलेंट में से एक का उपयोग करते हैं:

- **अल्ट्रासोनिक इलेक्ट्रॉनिक विकर्षक**: मनुष्यों के लिए मौन, उच्च–आवृत्ति ध्वनि तरंगें जंगली जानवरों को दूर भगाती हैं।
- **सोनिक इलेक्ट्रॉनिक विकर्षक**: सुनाई देने वाली तेज़ आवाज़ जो जानवरों को डराती है एवं दूर रखती है।

उपरोक्त तरीकों के साथ–साथ किसानों को जितना संभव हो खेतों की लगातार निगरानी करनी चाहिए। जानवरों के खतरे को नियंत्रित करने के लिए रणनीतियों के संयोजन की आवश्यकता है। किसानों की आजीविका बढ़ाने के लिए विभिन्न विभागों जैसे कृषि, बागवानी, पशुपालन, वन्यजीव और वन को इस गंभीर समस्या के दीर्घकालीन प्रभावी और समय पर समाधान के लिए सामूहिक रूप से काम करने की आवश्यकता है।

एआई तकनीकी का कृषि में उपयोग: एक नई क्रांति

संतोष कुमार सिंह[1] एवं आराधना कुमारी[2]
डॉ. राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर, बिहार[1]
कृषि महाविद्यालय, गंज बासोदा, मध्यप्रदेश[2]

एआई (आर्टिफिशियलइंटेलिजेंस या कृत्रिम बुद्धिमत्ता) एक ऐसी तकनीक है जो मशीनों को मानवीय बुद्धिमत्ता के समान काम करने की क्षमता प्रदान करती है। इसका उद्देश्य मशीनों को ऐसे निर्णय लेने, समस्या सुलझाने, और सीखने की क्षमता देना है जो पारंपरिक कंप्यूटर प्रोग्रामिंग से परे है। एआई की अवधारणा 1950 के दशक में विकसित हुई, जब वैज्ञानिकों ने मशीनों को मानवीय तरह सोचने और कार्य करने की क्षमता देने का विचार किया। इसकी शुरुआत तब हुई जब एलनट्यूरिंग ने प्रस्तावित किया कि मशीनें सोच सकती हैं। तब से, एआई के क्षेत्र में लगातार शोध और विकास हुआ है।एआई तकनीकी ने पिछले कुछ दशकों में काफी प्रगति की है। डेटा संग्रहण और प्रोसेसिंग की क्षमता में वृद्धि, साथ ही कंप्यूटेशनल पावर में वृद्धि, ने एआई को नई ऊंचाइयों तक पहुंचाया है। आज, एआई विभिन्न क्षेत्रों जैसे स्वास्थ्य सेवा, वित्त और यहां तक कि कला में भी उपयोग किया जा रहा है।

1. एआई तकनीकी का कृषि में महत्व

कृषि क्षेत्र हमेशा से नवाचार और तकनीकी विकास का केंद्र रहा है। आज, जैसे–जैसे जनसंख्या बढ़ रही है और संसाधनों पर दबाव बढ़ रहा है, कृषि क्षेत्र में एआई (आर्टिफिशियलइंटेलिजेंस) की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण हो गई है। एआई न केवल फसल उत्पादन को बढ़ाने में सहायक है, बल्कि यह सतत और पर्यावरण के अनुकूल कृषि प्रथाओं को भी बढ़ावा देता है।

2. कीट प्रबंधन में एआई का उपयोग

एआई तकनीकी कचे कृषि में विभिन्न उपयोगों में से एक महत्वपूर्ण उपयोग है फसलों की निगरानी और रोग निदान। एआई प्रणालियाँ ड्रोन, सैटेलाइटइमेजरी, और अन्य सेंसर डिवाइसों से विस्तृत डेटा एकत्रित करती हैं। यह डेटा फसलों की स्थिति, मिट्टी की गुणवत्ता, मौसम की स्थिति, और अन्य महत्वपूर्ण जानकारियों पर आधारित होता है। एआई इस डेटा को विश्लेषित करके रोगों और कीटों की संभावित उपस्थिति का पता लगाता है। एआईएल्गोरिदम पौधों की छवियों में विशेष रोग लक्षणों और कीट संक्रमणों के पैटर्न की पहचान करते हैं। इन एल्गोरिदमों को पहले से विभिन्न प्रकार के रोगों और कीटों की छवियों के साथ प्रशिक्षित किया जाता है। यह प्रक्रिया मशीन लर्निंग के अंतर्गत आती है, जिससे एआईसिस्टम लगातार सीखते और सुधारते रहते हैं।जब एआई प्रणाली किसी रोग या कीट का पता लगाती है, तो यह किसानों को तत्काल सूचना प्रदान करती है। इससे किसान समय पर उपचार और रोकथाम के उपाय कर सकते हैं, जिससे फसल की हानि को कम किया जा सकता है।एआई किसानों को उनकी फसलों के लिए सर्वोत्तम उपचार विधियों और प्रबंधन रणनीतियों का सुझाव देता है। यह न केवल रोगों का निदान करता है, बल्कि उपचार के लिए सबसे प्रभावी रसायनों और उनकी मात्रा की भी सिफारिश करता है।एआई का उपयोग न केवल फसलों के स्वास्थ्य को सुधारने में मदद करता है, बल्कि यह पर्यावरण के प्रति भी संवेदनशील है। एआई द्वारा निद्रिष्ट उपचार विधियाँ रसायनों के अत्यधिक उपयोग को रोकती हैं, जिससे पर्यावरणीय संतुलन बना रहता है।

3. एआई के माध्यम से जल प्रबंधन में नवाचार

एआई जल प्रबंधन में भी महत्वपूर्ण योगदान देता है।कृषि में जल प्रबंधन के लिए एआई का उपयोग कृषि क्षेत्र में एक नवीन परिवर्तन ला रहा है। इस तकनीक की सहायता से, किसान मिट्टी की नमी और फसलों की जल जरूरतों का सटीक आकलन कर सकते हैं। एआई आधारित सिस्टमडेटासेंसर्स के माध्यम से मिट्टी की नमी का पता लगाते हैं और उसके आधार पर सिंचाई की योजना बनाई जाती है, जिससे जल की बर्बादी को रोका जा सकता है।इसके अलावा, स्मार्टइरिगेशनसिस्टम्स जो एआई से लैस होते हैं, वे फसलों की जल जरूरतों के अनुसार स्वचालित रूप से सिंचाई करते हैं। यह प्रक्रिया पानी के अधिकतम उपयोग और संरक्षण में मदद करती है। एआई प्रणालियां जलवायुपरिवर्तन, मौसम की भविष्यवाणी, और वर्षा पैटर्न का विश्लेषण करके किसानों को

सूचित करती हैं, जिससे वे आगामी मौसम की स्थिति के अनुसार अपनी सिंचाई योजनाओं को समायोजित कर सकते हैं।एआईसिस्टम जल वितरण प्रणाली में होने वाले लीकेज का भी पता लगाते हैं और उसे रोकने में मदद करते हैं, जिससे जल संरक्षण में और सुधार होता है। इस प्रकार, एआई का उपयोग कृषि में जल प्रबंधन को अधिक कुशल, सटीक और टिकाऊ बना रहा है, जिससे किसानों को अपनी फसलों का बेहतर प्रबंधन करने में मदद मिलती है। यह नवीन तकनीक न केवल वर्तमान की जरूरतों को पूरा करती है, बल्कि भविष्य की स्थायी कृषि के लिए भी एक मजबूत आधार तैयार करती है।

4. जलवायु परिवर्तन और मौसम की भविष्यवाणी

मौसम भविष्यवाणी और जलवायु परिवर्तन के अनुमान में एआई एक महत्वपूर्ण उपकरण है।कृषि में जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) की भूमिका काफी महत्वपूर्ण है। जलवायु परिवर्तन के कारण होने वाले अनिश्चित मौसम पैटर्न, असामान्य वर्षा, और तापमान में बदलाव से फसलों पर पड़ने वाले प्रभावों को समझने और उनसे निपटने में एआई एक अहम उपकरण साबित हो रहा है।एआई विश्लेषण और मॉडलिंग के माध्यम से, किसान और वैज्ञानिक बेहतर रूप से यह समझ सकते हैं कि विभिन्न जलवायु परिवर्तन के कारक कैसे फसल उत्पादन को प्रभावित करते हैं। एआई विश्लेषण के माध्यम से, वे यह भविष्यवाणी कर सकते हैं कि कौन सी फसलें किस क्षेत्र में बेहतर उत्पादन दे सकती हैं और किस प्रकार के फसल प्रबंधन तकनीकों की आवश्यकता होगी।एआई आधारित सिस्टम्स मौसम की स्थिति का विश्लेषण कर सकते हैं और किसानों को सूचित कर सकते हैं कि कब बोनी करनी है, कब पानी देना है और किस प्रकार की सिंचाई तकनीकें लाभकारी होंगी। इसके अलावा, एआई तकनीक फसलों के रोगों और कीटों की पहचान में भी मदद कर सकती है, जिनका प्रकोप जलवायु परिवर्तन के कारण बढ़ सकता है।

5. स्वचालित और उन्नत खेती

एआई तकनीकी खेती के प्रक्रिया को और अधिक स्वचालित बनाने में भी सहायक है। एआई–संचालित ड्रोन और रोबोट्स फसलों की निगरानी, कीट नाशकों का छिड़काव, और उन्नत सिंचाई प्रणालियों को नियंत्रित करते हैं। इससे खेती की प्रक्रिया न केवल और अधिक स्वचालित हो जाती है, बल्कि अधिक उत्पादक और लागत–कुशल भी बनती है। यह तकनीक कृषि क्षेत्र में एक बड़ी क्रांति ला रही है, जिससे किसानों की मेहनत कम होती है और उनकी आय में वृद्धि होती है।

6. फसल उत्पादन के अनुमान में एआई का उपयोग

फसल उत्पादन के अनुमान में भी एआई की बड़ी भूमिका है। डेटाएनालिटिक्स और मशीन लर्निंगमॉडल का उपयोग करके, किसान और अनुसंधानकर्ता फसल उत्पादन के अनुमान लगा सकते हैं। इससे किसानों को बोनी से लेकर कटाई तक की योजना बनाने में मदद मिलती है, साथ ही उन्हें फसलों के स्वास्थ्य और उनके प्रबंधन के बारे में समय पर सूचना प्राप्त होती है। एआई आधारित तकनीकें फसलों की स्वास्थ्य निगरानी, रोग और कीट प्रबंधन, और उपज के अनुमान के लिए उपयोगी हैं, जिससे उत्पादन प्रबंधन और बाजार रणनीतियों में सुधार होता है।यह बाजार की मांग के अनुसार फसल की योजना बनाने और कीमतों का निर्धारण करने में मदद करता है। एआई के इस्तेमाल से कृषि क्षेत्र में जो क्रांति आ रही है, वह न केवल फसल उत्पादन की दक्षता और गुणवत्ता में सुधार ला रही है, बल्कि यह पर्यावरणीय संतुलन और सतत विकास को भी सुनिश्चित कर रही है। एआई का उपयोग करके किसानों को अपनी फसलों की बेहतर देखभाल करने, जल संरक्षण में सुधार करने, और बाजार की मांग के अनुसार उत्पादन को नियंत्रित करने में मदद मिल रही है। इससे कृषि क्षेत्र में नवाचार और तकनीकी प्रगति को बढ़ावा मिल रहा है, जिससे किसानों की आय में वृद्धि और जीवन स्तर में सुधार हो रहा है। अंततः, एआई तकनीकी कृषि क्षेत्र को अधिक स्वचालित, दक्ष, और लचीला बना रही है, जो आने वाले समय में खाद्य सुरक्षा और सतत विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने में महत्वपूर्ण योगदान देगी। इस प्रकार, एआई तकनीकी कृषि में एक नई और आशाजनक क्रांति का प्रतीक है।

यह चित्र एक भविष्यवादी खेत का दृश्य दर्शाता है जहां कृषि में आर्टिफिशियलइंटेलिजेंस का उपयोग हो रहा है। इसमें खेतों के ऊपर उड़ते हुए ड्रोन दिखाए गए हैं जो फसलों के स्वास्थ्य की निगरानी कर रहे हैं। एक किसान टैबलेट का उपयोग करके ड्रोन द्वारा एकत्रित डेटा का विश्लेषण कर रहा है। खेत में विभिन्न प्रकार की फसलें हैं, और खेत के चारों ओर मिट्टी और मौसम की निगरानी के लिए सेंसर लगाए गए हैं। पृष्ठभूमि में स्पष्ट आकाश दिखाई दे रहा है जिसमें तकनीक की झलक है, जैसे कि एक उपग्रह या एक हाई–टेक मौसम स्टेशन।	यह चित्र एक खेत में एआई तकनीक द्वारा नियंत्रित स्मार्ट सिंचाई प्रणाली को दर्शाता है। इसमें एआई विश्लेषण का डिस्प्ले भी शामिल है। चित्र में हिंदी में कैप्शन दिया गया है: ''कृषि में एआई द्वारा जल प्रबंधन''।

घमंड के लिए नहीं बल्कि आत्म सम्मान के लिए
कभी-कभी जिन्दगी में कुछ लोगों का साथ
छोड़ना पड़ता है।
–आचार्य चाणक्य

हिमालयी क्षेत्रों में सेब की सघन बागवानी मार्गदर्शिका

दिव्या मनोज पाण्डे
मुख्य उद्यान अधिकारी कार्यालय, विकास भवन, भीमताल

सेब का वैज्ञानिक नाम मैलसडोमेस्टिका एल (*Malus domestica* L) है, तथा यह रोजेसी (Family-Rosaceae) परिवार के अन्तर्गत आता है। सेब का उत्पत्ति स्थल मध्य एशिया है। शीपोष्ण फलों के अन्तर्गतसेब का प्रमुख स्थान है। विश्व में सेब की खेती यूरोप, उत्तर अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया एवं न्यूजीलैण्ड में मुख्य रूप से की जा रही है। भारत में इसकी खेती मुख्य रूप से जम्मू कश्मीर, हिमांचल प्रदेश तथा उत्तराखण्ड एवं अरूणांचल प्रदेश के पर्वतीय क्षेत्रों में की जातीहै।देश में तेजी से हो रहे जनसंख्या दबाव के कारण एवं घटती जोत तथा भूमि का धीरे–धीरे कम होते जाना सेब के उत्पादन एवं उत्पादकता के अवसरों को समीत कर रहा है। इसको दृष्टिगत सेब उत्पादन के क्षेत्रफल विस्तार एवं उत्पादन उत्पादकता से सम्बन्धित विषयों का महत्व और भी बढ़ जाता है। प्रति इकाई क्षेत्र में उपज का मिलने से लाभ का अंश कम हो जाता है। इसको देखते हुये जरूरत यह है कि सेब उत्पादन हेतु अच्छी तकनीको का समावेश कर प्रति इकाई क्षेत्र अधिक से अधिक उपज लिये जाने का प्रयास किया जाना चाहिये। पेड़ों के आकार को नियंत्रित कर प्रति इकाइ ं क्षेत्र अधिक से अधिक संख्या में पेड़ लगाने को सघन बागवानी के रूप में विकसित किया जाना हितकर है।

सघन बागवानी की पद्धति 1960 में यूरोप में विकसित की गई, तथा यह धीरे–धीरे विश्व के यूरोप, उत्तरीय अमेरीका, आस्ट्रेलिया एव न्यूजीलेण्ड जैसे बडे देशों में अपनाई जाने लगी। भारत में यह प्रणाली विगत 01 दशक से प्रचलन में है। इस प्रणाली में अच्छी प्रकार से फसल का प्रबन्धन, रख–रखाव, उचित किस्मों व मूलवृन्तों का चयन करके साधारण पद्धति के मुकाबले लगभग ढाई से तीन गुना अधिक उपज ली जा सकती है। सघन बागवानी पद्धति का मुख्य उद्देश्य प्रति इकाई क्षेत्र का उर्ध्वाधर और क्षैतिज जगह का समुचित तरीके से उपयोग करना, तथा उपलब्ध संसाधनों से प्रति इकाई क्षेत्र से अधिकतम उत्पादन या लाभ लेना होता है। सामान्य तौर पर सघन बागवानी को मुख्य रूप से चार प्रकार से बांटा जा सकता है।

1. निम्न / सामान्य सघनता वाला रोपण (<250 पौधे / है0)
2. मध्य सघनता वाला रोपण (250 से 500 पौधे / है0)
3. उच्च सघन रोपण (500 से 1250 पौधे / है0)
4. अति सघन रोपण (>1250 पौधे / है0)

सघन बागवानी पद्धति से होने वाले लाभ

इस पद्धति के निम्नलिखित लाभ उल्लेखित किये जा रहे है

- इस पद्धति से प्रति इकाई क्षेत्र में अधिक पेड़ रोपित किये जा सकते है।
- सघन पद्धति में साधारण प्रणाली के अपेक्षा ढाई से तीन गुना अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।
- उपलब्ध संसाधनो का बेहतर प्रबन्धन किया जा सकता है।
- इस प्रणाली में पौधे जल्दी फल देने लगते है।
- इस प्रणाली में बूंद–बूंद सिंचाई अपनाकर पानी की समस्या का निदान पाया जा सकता है, तथा सिंचाई के साथ उर्वरकों का भी बेहतर प्रबन्धन ड्रिप सिंचाई अपनाकर किया जा सकता है।

सेब फल की महत्ता एवं उसमें पाये जाने वाले पोषक तत्व

पोषक तत्व		मात्रा
	उर्जा	**50 कैलोरी**
	कार्बोहाईड्रेट्स	13.18 ग्राम
	प्रोटीन	0.26 ग्राम
	टोटलवसा	0.17 ग्राम
	फाईबर	2.40 ग्राम
विटामिन	फोलेट्स	3 म्यूग्राम
	नियेसिन	0.091 मिग्रा0
	पैन्टोथिनिक ऐसिड	0.061 मिग्रा0
	पाईरीडॉक्सीन	0.041 मिग्रा0
	राईबोफ्लेविन	0.026 मिग्रा0
	थियामिन	0.017 मिग्रा0
	विटामिन– ए	54 आईयू
	विटामिन–सी	5.6 मिग्रा0
	विटामिन–ई	0.18 मिग्रा0
	विटामिन– के	2.2 म्यूग्राम
इलैक्ट्रोलाईट्स	सोडियम	1 मिग्रा0
	पोटेशियम	107 मिग्रा0
	मिनरल	
	कैल्सियम	6 मिग्रा0
	ऑयरन	0.12 मिग्रा0
	मैग्नीशियम	5 मिग्रा0
	फॉसफोरस	11 मिग्रा0
	जिंक	0.04 मिग्रा0
फाईटो न्यूट्रीएन्ट	कैरोटिन–बी	27 म्यूग्राम
	क्रिप्टोजैन्थिन–बी	11 म्यूग्राम

जलवायु

सेब शीतोष्ण जलवायु का पौधा है। इसकी खेती उत्तर भारत के पर्वतीय क्षेत्रों में 1600 मी0 से 2700 मी0 की उँचाई तक की जा सकती है। सेब के पौधों की अच्छी बढ़वार के लिये अधिक ठण्ड की आवश्यकता होती है। इसकी सफल बागवानी के लिये 0.5 से 28 डिग्री सेल्सियस तापमान के साथ 1000 से 1500 मि0मी0 वार्षिक वर्षा आवश्यक होती है। मार्च–अप्रैल में फूल खिलते समय अधिक वर्षा तथा तापमान में अत्यधिक उतार चढ़ाव होने के कारण उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। फलों के अच्छे विकास हेतु सामान्यतः 200 घण्टे सूर्य की धूप की आवश्यकता होती है। सेब के सफल उत्पादन हेतु 900 घण्टे से 1200 घण्टे शीतकाल तापक्रम शून्य से 07 डिग्री अच्छा माना गया है। वर्तमान में जलवायु परिर्वतन तथा तापमान में आये वृद्धि के कारण सेब की खेती में नयी प्रजातियों जो कि क्लोनल रूट स्टॉक आधारित को लगाने की संस्तुति की जा रही है। स्पर प्रजातियों को कम शीतकाल की लगभग 600 घण्टे आवश्यकता देखी गई है। फल बनने के लिये 21.1 से 26.7 डिग्री सेंटीग्रेट तापमान उपयुक्त पाया गया है।

भूमि का चयन एवं तैयारी

सेब की बागवानी के लिये अच्छे जल निकास वाली दोमट मिट्टी उपयुक्त पाई गई है। लेकिन सामान्य तौर पर सेब की खेती पर्वतीय क्षेत्रों में उँचाई वाले स्थानों पर मृदा का पी0एच0 मान 6.5 से 6.7 पर किये जाने की संस्तुति की गई है। जहां अधिक हवा का प्रकोप हो वहाँ ढलान के शिखर पर पेड़ न लागये क्योंकि यहा हवा के वेग से पेड तिरछे हो जाते है, यानिकि एक तरफ (हवा के वेग के साथ) को झुक जाते हैं, और फसल भी बहुत कम लगती है। ढलान के नीचे, पानी के तालाब या नाले के निकट भी पेड़ न लगाये क्योंकि वहां फूल पर पाले का अधिक प्रकोप होता है, जिससे फल स्थापना बहुत कम होता है। पौधे से पौधे की दूरी मूलवृन्त (Root Stock) व फल किस्म पर निर्भर करती है।

सघन बागवानी में बौने तथा अर्द्ध बौने क्लोनल मूलवृन्तों का उपयोग

सेब की सघन बागवानी के लिये नयी तकनीकें तथा नये मूलवृन्त विकसित किये गये हैं। इस हेतु बौने तथा अर्द्ध बौने क्लोनल मूल वृन्तो का चयन करना चाहिये। क्लोनल मूलवृन्त वो होते हैं जो कि एक ही मातृत्व पौधों से अलैंगिक प्रवर्धन करके तैयार किये जाते है, तथा इन मूलवृन्तो की अनुवांशिक संरचना मात्र पौधे के सामान होती है। इन मूल वृन्तों पर जब किसी किस्म की ग्राफ्टिंग या बडिंग की जाती तो यह मूल वृन्त भविष्य में उस किस्म की वृद्धि में सामानता, किस्म के आकार पर नियंत्रण, अगेती फलन एवं सजीव व निर्जीव तनाव तथा कीटों से रक्षा प्रदान करते है। क्लोनल मूल वृन्त जैसे एम–9, एमएम0–106, एमएम–111, एमएम–26, एम–04, एम–07 की संस्तुतियां की गई है।

पेड़ लगाते समय आवश्यक सावधानियां

नये पेड़ों के लिये आवश्यक है कि उन्हें अच्छी बढ़त के लिये जरूरी स्थान व आहार मिले। इसलिये सामान्य व बीमे वाली किस्मों को प्रबल मूल वृन्तों यथा बीजू व एमएम–111, एम–109 लगाने के लिये एक घन मी0 (1x1x1 मी0) का गढ्ढा बनाया जाये । गड्ढा बनाने के बाद लगभग 10–12 दिन खुला रखें और फिर निकाली गई मिट्टी में 40 से 50 किग्रा0 अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद, आधा किग्रा0 सिंगल सुपर फास्फेट व डरमेट/फालीडोल/मैलाथियॉन डस्ट (धूल) 200 ग्राम या 50 मि0ली0 क्लोरो पाइरीफॉस 10 ली. पानी में डालकर गढ्ढे में डालें। गढ्ढे में पेड़ लगाने से कम से कम एक माह पूर्व भरे जाये, जिससे वर्षा या बर्फ से उसकी मिट्टी बैठ जाये। ऐसा करने से पेड़ कालर रॉट इत्यादि बीमारियों से मुक्त रहतें है, क्योंकि उनका कालर (कलम का स्थान) नीचे नहीं जाता है।

रोपण के लिये पौध चुनाव में ध्यान देने योग्य बातें

- पौधे किसी अनुसंधान केन्द्र, विश्वविद्यालय, राजकीय पौधालयों एवं उद्यान विभाग में पंजीकृत नर्सरियों से ही खरीदें। खरीदते समय सम्बन्धित संस्था से बिल किस्मों को अंकित कराते हुये अवश्य प्राप्त करें, ताकि गलत किस्म न मिले।
- पौधशालाओं से जब पेड़ ले तो वे कम से कम पांच फुट उँचे एवं कीट बीमारियों से मुक्त हो।
- यदि बीजू पौधे लागये तो यह भी 4–5 फुट से कम न हों एवं कीट बीमारियों से मुक्त हो।
- पेंड़ो को रोपण से पूर्व ब्लाईटाक्स व दर्सबान (डरमेट) के घोल में एक घण्टा भिगोये।
- पेड़ लगाने के बाद सिंचाई अवश्य करें, क्योंकि इससे उसकी जड़ो की मिट्टी के साथ मेल हो जाते है।
- कम से कम 25 प्रतिशत परागणकर्ता किस्में (3 से 4 प्रकार की) अवश्य लगाये।
- अधिकतर नर्सरी उत्पादक पूर्ण अनुपात में परागणकर्ता किस्में नहीं पैदा करते हैं इसलिये यदि यह किस्में कम मिले तो उनके स्थान पर बीजू पौध लगा दें, जिससे आगामी वर्ष में आप सही परागण किस्मों की कलम लगा सकें।
- बीमे वाली स्पर किस्मों में इस प्रकार की स्पर परागण किस्मों का अभाव है। अतः उस दशा में परागण किस्मों के स्थान पर एम–7 रूट स्टॉक लगायें तब उस पर कोई भी परागण किस्मे लगायें वे बौनी (अर्ध बौनी) रहेंगी।

- यदि स्पर किस्में एम–7 या एमएम–106 पर लगाये जाते है तो परागण किस्म के स्थान पर एम–9 रूट स्टॉक लगायें।
- पौधों को लगाने के 15 दिन बाद 75 से0मी0 की ऊँचाई से काट दें। बौनी किस्मों को 60 से0मी0 की उँचाई से कांटे।
- बीजू या रूट स्टॉक जो परागण किस्मों के स्थान पर लगें हो उन्हें 45 से0मी0 (डेढ फुट) ऊपर से काट दें।

जलवायु परिवर्तन के सन्दर्भ में भौगोलिक परिस्थितियों के आधार पर सेब की किस्मों का चयनः

जलवायु परिवर्तन के कारण सेब के उत्कृष्ट स्वाद व स्फुर्तिदायक गुदे पर ज्यादा जोर दिया जा रहा है। इसके साथ–साथ सेब फलों की विपर्णन में बढती प्रतिस्पर्धा व बढती बीमारियों से पूर्व में प्रजलित किस्में–रॉयल डेलिसीयस, रेड डेलिसीयस व गोल्डन डेलिसीयस किस्में मुख्य रूप से उगाई जाती हैं। इसके साथ ही कोक्स–ओरेंज पिपीन, जोनाथन, रोमब्यूटी, मैक्नटोश, गाला, फ्यूजी, लेक्सटन सुपर्व, टाईडमेन अर्ली बरसेस्टर, पियरमेन इत्यादि किस्में भी सफलतापूर्वक उगाई जा रही हैं। यह किस्में अब समय के अनुसार तथा तकनीक में आये बदलाव के कारण पुरानी मानी जाने लगी है। जलवायु के इस बदलते परिवेश में फल फसलों की किस्मों में विविधिकरण, भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार अपनाने की आवश्यकता पड़ रही है। विभिन्न किस्मों का उत्पादन उनकी जलवायु सम्बन्धित आवश्यकताओं के अनुसार किया जाता है, तथा फलोत्पादन की सफलता विशेष रूप से मौसम पर बहुत निर्भर करती है। उदाहरण के तौर पर ऐसे क्षेत्र जो समुद्रतल से 1800–2700 मी0 की ऊँचाई पर स्थित हैं तथा सामान्य रूप से कम ऊँचाई वाले क्षेत्रों में पूर्वोत्तर दिशा वाले स्थान सेब के उत्पादन के लिये उत्तम हैं, परन्तु ऐसे क्षेत्र जहॉ तीव्र गति से हवाएं चलती हों, वहां का क्षेत्र सेब उत्पादन के लिये उपयुक्त नहीं होता है।

सेब पर हो रहे अनुसंधान कार्यो से नित नई–नई किस्में तैयार की जा रही हैं। इन नई किस्मों में गाला किस्मे, फ्यूजी किस्में व अर्ली रेडवन किस्में प्रमुख है। जिनकी उटाह चिल यूनिट मॉडल के आधार पर चिल यूनिट मात्र 900–1208 सी0यू0 है। सेब की किस्मों के अन्तर्गत लगभग से तिहाई किस्में डेलिसीयस वर्ग से सम्बन्धित हैं। भविष्य में नई किस्में जो पैदावर व गुणवत्ता के लिये आशाजनक हो सकती है, में वेलस्पर, सुपर चीफ, स्कारलेट स्पर, गेल गाला, स्टार क्रिमसन इत्यादि किस्में प्रमुख है। बागवानी को डेलिसीयस किस्मों के अलावा ऐसी अन्य किस्मों का भी रोपण किया जाये जो अधिक पैदावर एवं अच्छी गुणवत्ता वाली हों। समुद्र तल से ऊँचाई एवं मण्डियों में किस्मों की मांग को देखते हुये ही करना चाहिये। भौगोलिक परिस्थिति के आधार पर किस्मों की जानकारी निम्नवत् दर्शायी गई हैः

- निचले कम ऊँचाई वाले पर्वतीय क्षेत्र जहां रॉयल डेलिसीयस किस्म में बहुत कम स्पर बनते हो तथा रंग की समस्या भी आती हो, वहां कम उटाहचिल अधिक मांग वाली स्पर किस्में उपयुक्त हैं।
- मध्यम, ऊॅचे व शुष्क शीतोष्ण क्षेत्रों में जहॉ सूर्य का प्रकाश पर्याप्त होत था बगीचों में सिंचाई की अच्छी व्यवस्था हो, ऐसे क्षेत्रों में स्पर (बौने) किस्मों का उपयोग किया जा सकता है।

क्र. सं.	समुद्रतल से ऊँचाई (मीटर में)	उपयुक्त किस्में
1.	300–1051	डोरसेट गोल्डन, अन्ना, रेडफ्यूजी, स्लोमित, माइकल, पिंकी लेडी, क्रिस्प इत्यादि।
2.	1051–1651	ऑर्गन स्पर, स्कारलेट स्पर, जेरोमाईन, गेल गाला, अर्ली रेडवन इत्यादि।
3.	1651–1951	सुपर चीफ, ऑर्गन स्पर, स्कारलेट स्पर, जेरोमाईन, ब्लैकवेल डेविस, रेड चीफ, ग्रेनी स्मिथ इत्यादि।
4.	1951–2100	आर्गन–11, टॉपरेड, वांस डेलिसीयस, रिच–ए–रेड इत्यादि
5.	2100 मी0 से अधिक	रॉयल डेलिसीयस, गोल्डन डेलिसीयस, रिच–ए–रेड इत्यादि

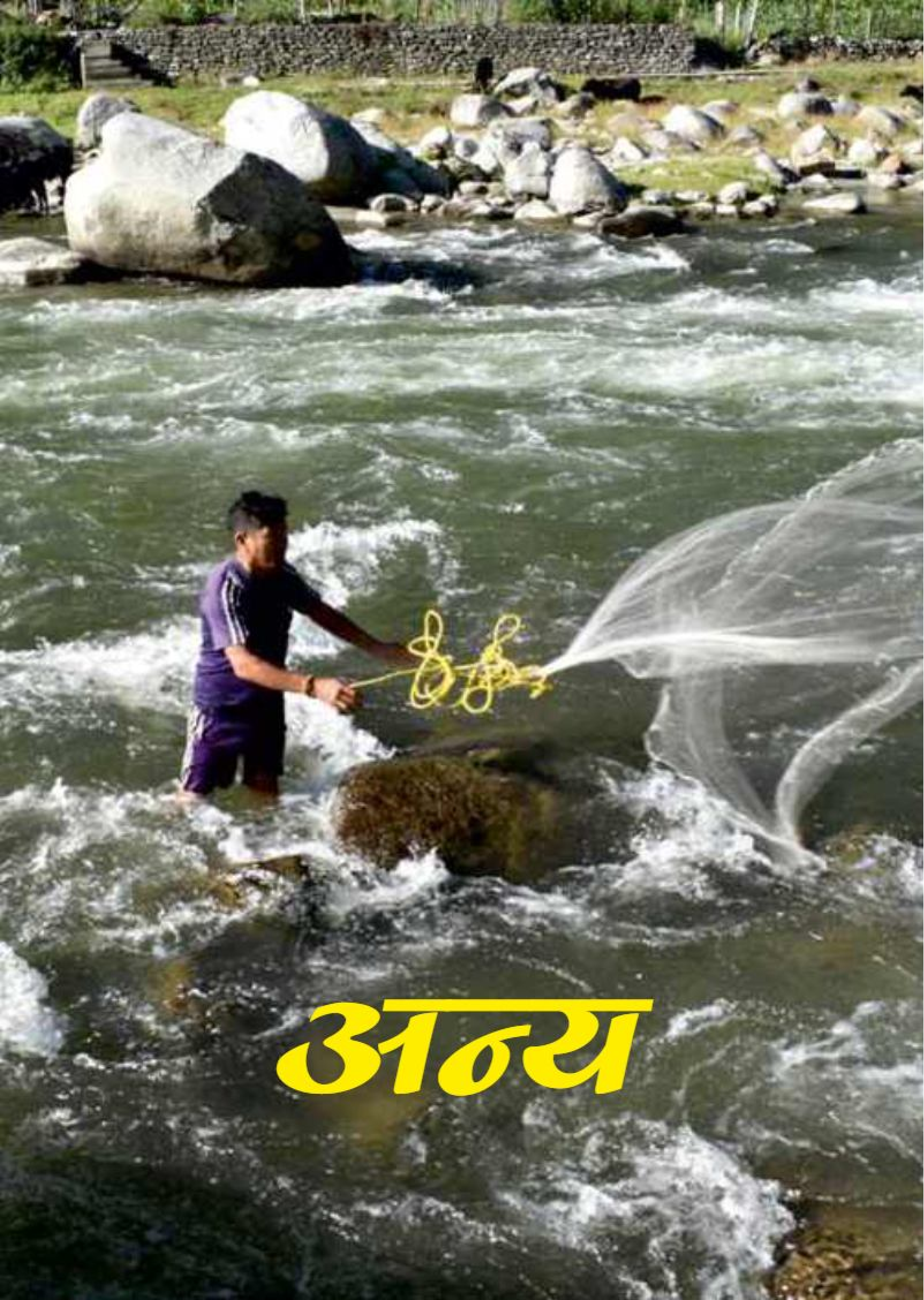

अन्य

INPUT DISTRIBUTION & TRAINING ON
RAINBOW TROUT FEED
NUTRILA
growel

पर्यावरण, मानव स्वास्थ्य और मानव अधिकार

शिवम दूबे[1], अनुज त्यागी[2], सुमित कुमार[3], एन. उदयकिरन[1] एवं ब्रम्हदेव यादव[1]
मत्स्यपालन महाविद्यालय, कर्नाटक पशु चिकित्सा, पशु एवं मत्स्यविज्ञान विश्वविद्यालय, बीदर, कर्नाटक[1]
गुरुअंगददेव पशु चिकित्सा एवं पशुविज्ञान विश्वविद्यालय, लुधियाना, पंजाब[2]
भाकृअनुप–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, अनुसंधान भवन, भीमताल, उत्तराखंड[3]

सार

पृथ्वी को "नीला ग्रह" कहा जाता है क्योंकि इसकी सतह का 71% हिस्सापानी से ढका हुआ है, जो मुख्य रूप से महासागरों मेंखारे पानी के रूप में उपस्थितहै। जल हमारे ग्रह पर सभी जीवन के विकास और समर्थन से जुड़ा हुआ है। पानी की मात्रा पेड़–पौधों में लगभग 60%, अधिकांश जानवरों में लगभग 65% पानी, मानव शरीर में लगभग 55%, जबकि मछलियों में लगभग 70–84% पानी उपस्थित होता है। पानी कई भूमिकाएँ निभाता है, जैसे यह महासागरों के माध्यम से पृथ्वी पर जलवायु को नियंत्रित करता है, यह प्रदूषकों को स्वीकार करता है और फैलाता है, यह पीने के पानी के रूप में अधिकांश जीवन रूपों के लिए महत्वपूर्ण है, और अन्य सभी अनमोल मूल्यों के अलावा, स्वच्छ पानी आर्थिक और निरंतर विकास दोनों के लिए एक शर्त है। पानी का उपयोग मुख्यतः जीवित रहने के लिए अलावा, लोग पानी का उपयोग कई तरीकों से करते हैं, जिनमें खाना बनाना, अपने शरीर को धोना, कपड़े धोना, खाना पकाने और खाने के बर्तन धोना, घरों और समुदायों को साफ रखना, तैराकी और मछली पकड़ने जैसी मनोरंजक गतिविधियाँ, बगीचों में पौधों को जीवित रखना और शामिल हैं। भोजन की मांग को पूरा करने के लिए हर दिन मीठे पानी का सेवन किया जाता है; पर्यावरण वह परिवेश है जिसमें हम रहते हैं। इसमें हमारे आस–पास की हर चीज़ शामिल है जैसे कि सूरज की रोशनी, हवा, पानी, बारिश, मिट्टी, पहाड़ इत्यादि। परिवेश उन कारकों द्वारा निरंतर परिवर्तन के अधीन है जो मानव गतिविधि द्वारा प्रमुख रूप से योगदान करते हैं। एक घटक में परिवर्तन का गंभीरता के आधार पर अन्य घटकों पर एक निश्चित प्रभाव पड़ता है।

परिचय

पृथ्वी पर सभी तरल मीठे पानी का लगभग 99% हिस्सा भूजल में है, जो समाज को सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय लाभ और अवसर प्रदान करने की क्षमता रखता है। भूजल पहले से ही वैश्विक आबादी द्वारा घरेलू उपयोग के लिए निकाले गए पानी की आधी मात्रा प्रदान करता है, जिसमें ग्रामीण आबादी के विशाल बहुमत के लिए पीने का पानी भी शामिल है, जिन्हें सार्वजनिक या निजी आपूर्ति प्रणालियों के माध्यम से पानी नहीं मिलता है, हालाँकि, इस प्राकृतिक संसाधन को प्राथमिकता कम ही दिया जा रहा है, और परिणामस्वरूप इसका कम मूल्यांकन किया जाता है, कुप्रबंधन किया जाता है और यहाँ तक कि इसका दुरुपयोग भी किया जाता है। *(UNESCO 2022)* .42% घरेलू अपशिष्ट जल का उचित उपचार नहीं किया जाता है, जो पारिस्थितिकी तंत्र और मानव स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचाता है। *(UNEP, 2023). 2022)* घरेलू और औद्योगिक अपशिष्ट जल के अनुमानित कुल उत्पादन का केवल 11% ही वर्तमान में पुनः उपयोग किया जा रहा है। वैश्विक ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में अपशिष्ट जल का हिस्सा लगभग 1.57% है, जो वैश्विक जलयात्रा द्वारा जलवायु को होने वाले नुकसान से थोड़ा कम है। (UNEP, 2023). 89 देशों में मूल्यांकन किए गए 60% जल निकायों में व्यापक जल की गुणवत्ता अच्छी है, अधिकांश देशों में जल गुणवत्ता डेटा नियमित रूप से एकत्र नहीं किया जाता है। जिसका अर्थ है कि 3 अरब से अधिक लोग जोखिम में हैं क्योंकि उनके मीठे पानी के पारिस्थितिकी तंत्र का स्वास्थ्य अज्ञात है। जल गुणवत्ता डेटा वाले 89 देशों में से केवल 52 देशों के पास भूजल के बारे में जानकारी है, जो समस्याग्रस्त है क्योंकि भूजल अक्सर किसी देश में मीठे पानी का सबसे बड़ा हिस्सा दर्शाता है। (UN-¡ter, 2021).

https://livingroomconversations.org/topics/environment

https://www.hatkosoundbarrier.com/what-are-the-types-of-environmental

जनसंख्या

वर्ष 2018 और 2022 के दौरान पहचाने गए प्रदूषित नदी खंडों की क्रमबद्ध राज्य संख्या।

क्र.सं.	राज्य/संघ राज्य क्षेत्र	2022 के दौरान प्रदूषित नदी खंडों की संख्या।	2018 के दौरान प्रदूषित नदी खंडों की संख्या।
1.	आंध्र प्रदेश	3	5
2.	असम	10	44
3.	बिहार	18	6
4.	छत्तीसगढ़	6	5
5.	दमन और दीव, दादरा और नगर हवेली	1	1
6.	दिल्ली	1	1
7.	गोवा	6	11
8.	गुजरात	13	20
9.	हरियाणा	3	2
10.	हिमाचल प्रदेश	9	7
11.	जम्मू एवं कश्मीर	8	9
12.	झारखंड	9	7
13.	कर्नाटक	17	17
14.	केरल	18	21
15.	मध्य प्रदेश	19	22
16.	महाराष्ट्र	55	53
17.	मणिपुर	13	9
18.	मेघालय	7	7
19.	मिजोरम	3	9
20.	नागालैंड	4	6
21.	ओडिशा	7	19
22.	पुडुचेरी	3	2

23.	पंजाब	5	4
24.	राजस्थान	14	2
25.	सिक्किम –	-	4
26.	तमिलनाडु	10	6
27.	तेलंगाना	9	8
28.	त्रिपुरा	1	6
29.	उत्तर प्रदेश	17	12
30.	उत्तराखंड	9	9
31.	पश्चिम बंगाल	13	17
	कुल योग	**311**	**351**

स्रोतः सीपीसीबी रिर्पोट 2022 86 में से पृष्ठ 33

वर्तमान मूल्यांकन में, विश्लेषण के आधार पर 279 नदियों पर 311 प्रदूषित नदी खंडों की पहचान की गई है। महाराष्ट्र में अभी भी देश में सबसे अधिक यानी 55 प्रदूषित नदी खंड हैं, यह वर्ष 2022 में पहचान की गई। वर्ष 2018 में 53 प्रदूषित नदी खंडों की पहचान की गई। असम राज्य में चिन्हित प्रदूषित नदी खंडों की संख्या में उल्लेखनीय कमी देखी गई है, जो वर्ष 2018 में 44 से घटकर 2022 में 10 हो गई है। यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि वर्ष 2018 के दौरान पहचानी गई कई नदियों को आर्द्रभूमि और स्थिर जल के रूप में घोषित किया गया था। असम सरकार द्वारा निकाय, जिन पर इस अभ्यास में विचार नहीं किया गया है। 13 राज्यों में अर्थात. आंध्र प्रदेश, असम, गोवा, गुजरात, जम्मू और कश्मीर, केरल, मध्य प्रदेश, मिजोरम, नागालैंड, ओडिशा, सिक्किम, त्रिपुरा और पश्चिम बंगाल में चिन्हित प्रदूषित नदी खंडों की संख्या कम हो गई है। 13 राज्यों/केंद्रशासित प्रदेशों में प्रदूषित नदी खंडों की संख्या में वृद्धि हुई है। बिहार, छत्तीसगढ़, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, झारखंड, महाराष्ट्र, मणिपुर, पुडुचेरी, पंजाब, राजस्थान, तमिलनाडु, तेलंगाना और उत्तर प्रदेश। 5 राज्यों/केंद्र शासित प्रदेशों में चिन्हित प्रदूषित नदी खंडों की संख्या में कोई बदलाव नहीं देखा गया है।जिनमे दमन और दीव, दादरा और नगर हवेली, दिल्ली, कर्नाटक, मेघालय और उत्तराखंडआदि शामिल है ।

पर्यावरण एवं मानव स्वास्थ्य

जीवित इकाइयां, ऊर्जा आवश्यकताओं के लिए अपने पर्यावरण पर निर्भर रहती हैं। ये कारक मानव इतिहास की दीर्घायु को बढ़ाने के लिए जानी जाती हैं। यह भी एक ज्ञात तथ्य है कि स्वच्छता, कृषि, उपचारित जल और व्यक्तिगत एवं सामुदायिक स्वच्छता का मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है। इस तथ्य को कोई नजरअंदाज नहीं कर सकता कि मानव जीवन का समर्थन और पोषण करने के अलावा, यह बीमारियों का कारण भी बन सकता है। मृत्यु दर का सबसे आम कारण आवश्यकताओं की कमी है। पर्यावरणीय जोखिमों से ह्रदय रोग, कैंसर और विभिन्न अन्य बीमारियाँ होने की संभावना बढ़ सकती है। अनुपचारित पीने का पानी, खराब स्वच्छता और अनुचित स्वच्छता हैजा, दस्त, डेंगू आदि जैसी संक्रामक बीमारियों का कारण बनती है।

मानव स्वास्थ्य पर पर्यावरण का प्रभाव

पर्यावरण का मानव स्वास्थ्य पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। हम प्रतिदिन पर्यावरण केबीच परस्पर सम्बन्ध रखते हैं। अपने जीवन को विभिन्न पर्यावरणीय खतरों से बचाने के लिए अपने पर्यावरण को स्वस्थ रखना बहुत आवश्यक है। पर्यावरण में प्रदूषक तत्व या जलवायु संबंधी घटनाएं हमारे स्वास्थ्य पर व्यापक प्रभाव डाल सकती हैं। वायु और ध्वनि प्रदूषण, और पारा जैसी भारी धातुएँ प्रत्यक्ष रूप से अस्थमा, बहरापन, निर्जलन और ह्रदय रोगों जैसी स्वास्थ्य समस्याएं पैदा करतीहैं। लू और बाढ़ पूरी आबादी को प्रभावित करते हैं, लेकिन शिशुओं, बुजुर्गों, खराब स्वास्थ्य वाले लोगों या बाढ़ के मैदानों पर रहने वाले समुदायों जैसे कमजोर समूहों पर सबसे अधिक बोझ डालते हैं। वायु प्रदूषण लाखों यूरोपीय

लोगों को प्रभावित करने वाले पर्यावरणीय स्वास्थ्य खतरों का सबसे महत्वपूर्ण कारण है। वायु प्रदूषण फेफड़ों और हृदय रोगों और समय से पहले मौत का कारण बन सकता है। शहरों में रहने वाले 90% से अधिक यूरोपीय सूक्ष्म कणों के हानिकारक स्तर के संपर्क में हैं, जो यूरोप में प्रति वर्ष 200,000 से अधिक असामयिक मौतों का कारण बनता है। (https://www.eea.europa.eu/en/topics/in-depth/ environmental-health-impacts)

पर्यावरणीय जोखिम

"पर्यावरणीय जोखिम "शब्द को उन चरम घटनाओं और पदार्थों के रूप में परिभाषित किया गया है जो पृथ्वी और इसके पारिस्थितिक तंत्र में हैं, जो कई परिणाम पैदा करते हैं। यह खतरा कुछ कारकों का सामना करता है जैसे–भौतिक, रासायनिक और कुछ जैविक जोभी प्राकृतिक और मानव निर्मित हो सकते हैं। इसके अलावा, परिवहन, कृषि, उद्योग और अन्य स्रोतों से वायु, विषाक्त अपशिष्ट, जैसे पर्यावरणीय प्रदूषण खतरों के उदाहरण हैं। अन्य प्रकार का खतरा जैसे "रासायनिक, जैविक या भौतिक एजेंटों से या तो चल रही या पिछली मानव गतिविधि से उत्पन्न खतरा पर्यावरणीय प्रदूषण के उदाहरण हैं। प्राकृतिक खतरों में भूकंप, ज्वालामुखी विस्फोट और बाढ़ जैसी कुछ कठिनाइयाँ भी शामिल हैं। पर्यावरणीय खतरे कार्य क्षेत्र और कर्मचारियों पर भी विविध प्रभाव डालते हैं। पर्यावरणीय खतरों की कई श्रेणियां हैं जैसे कि– खतरों की कई श्रेणियां हैं जैसे कि–

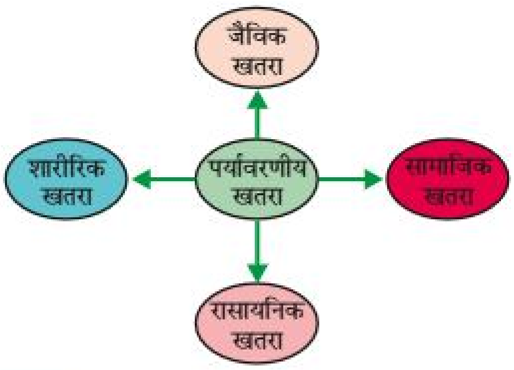

पर्यावरणीय खतरों के उदाहरण

पर्यावरणीय खतरे और क्षरण जैसे भूमि और मिट्टी का क्षरण, पानी का क्षरण, वायुमंडलीय क्षरण और कई प्रकार के प्रदूषण शामिल हैं जो मनुष्यों के कार्य व्यवहार में भी कई कठिनाइयों का कारण बन सकते हैं। ऐसे कई कारण हैं जो पर्यावरणीय खतरों को दर्शाते हैं जैसे–आंतरिक अशांति, प्रदूषण, लैंडफिल की अधिक जनसंख्या, वनों की कटाई और अधिक जनसंख्या। पर्यावरणीय खतरों का मानव जीवन पर विविध प्रभाव पड़ता है जो प्राकृतिक भी हो सकता है और मानव निर्मित भी। सभी उदाहरण कई क्षेत्रों में बढ़े हुए हैं जो सबसे बड़े और विविध प्रभाव पैदा करते हैं। अन्य उदाहरण जैसे– वायु प्रदूषक, विषाक्त अपशिष्ट एवं रसायन जो सभी उपभोक्ता उत्पादों में होते हैं।

पर्यावरण एवं मानव स्वास्थ्य

जीवित संस्थाएँ ऊर्जा आवश्यकताओं के लिए अपने पर्यावरण पर निर्भर करती हैं। इनमें से कुछ आवश्यकताएँ जैसे शुद्ध पानी, स्वच्छ हवा, मिलावट रहित और पौष्टिक भोजन, रहने के लिए रोग–मुक्त समुदाय आदि। ये कारक मानव इतिहास की दीर्घायु को बढ़ाने के लिए जाने जाते हैं। यह भी एक ज्ञात तथ्य है कि स्वच्छता, कृषि, उपचारित जल और व्यक्तिगत एवं सामुदायिक स्वच्छता का मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है। इस तथ्य को कोई अनदेखा करना नहीं कर सकता कि मानव जीवन का समर्थन और पोषण करने के अलावा, यह बीमारियों का कारण भी बन सकता है। पर्यावरणीय जोखिमों से हृदय रोग, कैंसर और विभिन्न अन्य बीमारियाँ होने की संभावना बढ़ सकती है। अनुपचारित पीने का पानी, खराब स्वच्छता और अनुचित स्वच्छता है जो, दस्त, डेंगू आदि जैसी संक्रामक बीमारियों का कारण बनती है।

स्वास्थ्य का महत्व

स्वास्थ्य एक ऐसी अवस्था है जिसमें मानसिक, शारीरिक और सामाजिक कल्याण पर विचार किया जाता है। स्वस्थ रहने के लिए शारीरिक दृष्टिकोण के साथ–साथ स्वस्थ दिमाग का होना भी आवश्यक है। मनुष्य को स्वस्थ आहार अपनाने और सक्रिय जीवन शैली अपनाने की आवश्यकता है। मनुष्य अन्य पर्यावरणीय घटकों की भलाई में महत्वपूर्ण योगदान देता है। स्वस्थ व्यक्ति आमतौर पर लगभग सभी स्वास्थ्य विकारों से मुक्त होते हैं। वे बीमारियों के प्रति सबसे कम संवेदनशील होते हैं, इसलिए उनका जीवनकाल बढ़ जाता है, जिससे दद्र, असुविधा और बेचैनी से पीड़ित होने की संभावना बहुत कम हो जाती है। काम में सामान्य स्थिति और उत्कृष्टता ऐसे गुण हैं जो समाज में एक अनुकूल और मूल्यवान संपत्ति बनाते हैं। शारीरिक फिटनेस किसी के आत्मविश्वास को बढ़ा सकती है क्योंकि यह उसे अपने बारे में बेहतर महसूस कराती है। यह आपको बिना किसी हलचल या असुविधा के दैनिक गतिविधियों को करने के लिए तैयार रख सकता है।

प्राकृतिक पर्यावरण का स्वास्थ्य सुनिश्चित करना

संभावित रणनीतियाँ

संरक्षण वादियों के बीच एक प्रचलित विषय यह रहा है कि प्रकृति के संरक्षण और प्राकृतिक क्षेत्रों की रक्षा के लिए उन्हें प्राचीन और मनुष्यों और मानव प्रणालियों के छापों से पूरी तरह मुक्त रखने की आवश्यकता है। यह दृष्टिकोण कई मायनों में अब व्यवहारिक नहीं है क्योंकि आज अधिकांश पारिस्थितिक तंत्र किसी न किसी तरह से मानव व्यवहार से प्रभावित होते है। विश्व की लगभग हर धारा वायुमंडलीय जमाव से प्रभावित होती है। हमारे कुछ राष्ट्रीय उद्यानों में हवा की गुणवत्ता हमारे कुछ शहरों से बेहतर नहीं पाई गई है। मूलतः ऐसी कोई जगह नहीं है जहाँ हम किसी मापने योग्य तरीके से, मनुष्यों के पदचिन्ह को महसूस न कर सकें। पर्यावरणीय स्वास्थ्य समस्याओं के सभी समाधान इस वास्तविकता पर आधारित होने चाहिए।

पहला कदम, हमारे स्थानीय पर्यावरण के स्वास्थ्य की सक्रिय रूप से और लगातार निगरानी करना ळें पर्यावरण के स्वास्थ्य केलिए उदाहरण के लिए, बायोमास उत्पादन और श्वसन की दर, सूक्ष्म जीव गतिविधि, क्षरण की दर, विषाक्त पदार्थों के स्तर एक स्वस्थ पर्यावरण की प्रोफ़ाइल तैयार करेगा और भविष्य में होने वाले परिवर्तनों की तुलना करने के लिए महत्वपूर्ण बेंचमार्क के रूप में काम करेगा। दूसरा कदम, पानी की गुणवत्ता जैसे पर्यावरणीय स्वास्थ्य मुद्दों के बारे में व्यक्तियों को शिक्षित करने के लिए कार्यक्रम बनाना है। एस्चेरिचियाकोली और मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकारक अन्य बैक्टीरिया की रीडिंग हाल ही में बहुत अधिक पाई गई है। रिवरकीपर और राष्ट्रीय उद्यान सेवा के प्रतिनिधि पानी के नमूने ले रहे हैं और नदी की स्थिति का प्रचार कर रहे हैं ताकि जनता को पता चल सके कि यह क्षेत्र मनोरंजन के लिए सुरक्षित है या नहीं। तीसरा कदम, प्रदूषण से संबंधित मुद्दों का समाधान जारी रखना है। अपशिष्ट उप–उत्पादों को कम करने और प्रदूषण के स्वास्थ्य प्रभावों को कम करने के लिए उद्योगों और सरकार और उद्योग के बीच व्यापक नेटवर्क और साझेदारी बनाई जानी चाहिए। चौथा कदम, पर्यावरणीय सूचकांक तैयार करने सहित पर्यावरणीय स्वास्थ्य के दृष्टिकोण में, प्रत्येक इलाके की विशेष परिस्थितियों को ध्यान मेंरखना होगा, नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ एनवायर्नमेंटल हेल्थ साइंसेज के सैमुअल विल्सन ने सुझाव दिया। विल्सन ने कहा, जो रणनीतियाँ सबसे अधिक प्रभावी हैं वे अन्य क्षेत्रों की तुलना में दक्षिणपूर्व में भिन्न हो सकती हैं।

मानव अधिकार

मानवाधिकार सभी मनुष्यों में निहित अधिकार हैं, चाहे उनकी जाति, लिंग, राष्ट्रीयता, जातीयता, भाषा, धर्म या कोई अन्य स्थिति कुछ भी हो। मानवाधिकारों में जीवन और स्वतंत्रता का अधिकार, गुलामी और यातना से मुक्ति, राय और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, काम और शिक्षा का अधिकार और बहुत कुछ शामिल हैं। बिना किसी भेदभाव के हर कोई इन अधिकारों का हकदार है। इस प्रकार, मानवाधिकार गैर–भेदभावपूर्ण हैं, जिसका अर्थ है कि सभी मनुष्य उनके हकदार हैं और उन्हें उनसे बाहर नहीं किया जा सकता है, जबकि सभी मनुष्य मानवाधिकारों के हकदार हैं, लेकिन सभी मनुष्य

उन्हें दुनिया भर में समान रूप से अनुभव नहीं करते हैं। कई सरकारें और व्यक्ति मानवाधिकारों की अनदेखी करते हैं और अन्य मनुष्यों का घोर शोषण करते हैं।

मानव अधिकार के प्रकार

क्र.सं.	अधिकार	उदाहरण
1.	नागरिक अधिकार	जीवन, स्वतंत्रता और सुरक्षा के अधिकार
2.	राजनीतिक अधिकार	कानून की सुरक्षा और कानून के समक्ष समानता का अधिकार
3.	आर्थिक अधिकार	काम करने, संपत्ति रखने और समान वेतन प्राप्त करने के अधिकार सहित
4.	सामाजिक अधिकार	शिक्षा और सहमति से विवाह का अधिकार
5.	सांस्कृतिक अधिकार	सांस्कृतिक समुदाय में स्वतंत्र रूप से भाग लेने का अधिकार सहित
6.	सामूहिक अधिकार	आत्मनिर्णय का अधिकार

मानव अधिकार का नियंत्रण

यूएनएचसीआर शरणार्थियों, विस्थापितों और राज्यविहीन लोगों के अधिकारों की वकालत करके उनकी रक्षा करने के लिए काम करता है। हम कानूनों और राष्ट्रीय प्रणालियों पर सलाह देने और उन्हें मजबूत करने तथा सेवाएं प्रदान करने में मदद करने के लिए सरकारों और भागीदारों के साथ काम करते हैं। 'मानवाधिकार' वाक्यांश को गढ़ने का श्रेय टर्टुलियन को उनके पत्र टू स्कैपुला में दिया जा सकता है जिसमें उन्होंने रोमन साम्राज्य में धार्मिक स्वतंत्रता के बारे में लिखा था। उन्होंने इस पत्र में "मौलिक मानवाधिकार"को "प्रकृति के विशेषाधिकार"के बराबर बताया।

इमल्शन आधारित पोल्ट्री मांस उत्पादों का प्रसंस्करण

सुमन तालुकदार, सागर चंद, देवेंद्र कुमार, तनबीर अहमद, आशिम कुमार बिस्वास, अरूप रतन सेन, गीता चौहान एवं आई.पी. देवदासन
भाकृअनुप–पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, इज्जतनगर, बरेली

मीट इमल्शन की चित्र

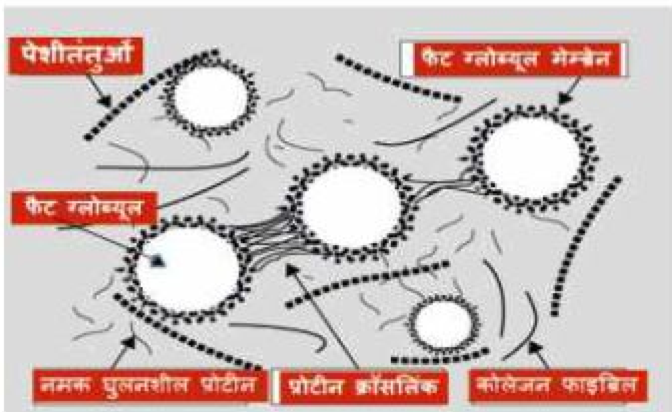

कुक्कुट मांस अपने पोषण और आर्थिक मूल्य के कारण भारत में सबसे पसंदीदा मांस है। आसान उपलब्धता और किसी भी धार्मिक आधार ने इस मांस को सबसे पसंदीदा मांस वस्तु नहीं बनाया है। पाक वरीयताओं के कारण भारतीय कभी–कभी कई प्रकार के प्रसंस्कृत चिकन मांस उत्पादों का सेवन करते थे। सूक्ष्म रूप से काटे गए चिकन मांस उत्पाद प्रसंस्कृत मांस उत्पादों के प्रमुख समूह हैं जिनका विपणन और भारत में पसंद किया जाता है। सुविधाजनक प्रोसेस्ड चिकन मीट की मांग दिन प्रतिदन बढ़ती जा रही है। सबसे लोकप्रिय चिकन मांस उत्पाद जैसे बर्गर पैटीज, बॉल्स (कोफ्ता), कबाब, लोबान प्रकार के सॉसेज और नगेट्स बारीक कटे हुए मांस पायस से उत्पादित किए जाते हैं। इमल्शन प्रकार के पके हुए मांस उत्पाद पानी, मांसपेशियों के प्रोटीन, वसा कणों, नमक और गैर–मांस सामग्री की थोड़ी मात्रा से बने होते हैं, जहां मांस प्रोटीन प्राकृतिक पायसीकारी के रूप में काम करता है। प्रसंस्कृत मांस उत्पादों के इस समूह में, वसा और प्रोटीन सांद्रता और उनके रासायनिक संपर्क, विशेष रूप से जो पायसीकरण प्रक्रिया के दौरान होते हैं, अंतिम उत्पाद की गुणवत्ता पर एक उल्लेखनीय प्रभाव डालते हैं। मीट इमल्शन को पानी में तेल इमल्शन के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। एक स्थिर मांस पायस बनाने के लिए, मांस प्रोटीन को पकाने से पहले बारीक कटा हुआ वसा कणों को घेरना चाहिए। चूंकि वर्तमान समय में इमल्शन आधारित पोल्ट्री मांस उत्पादों की मांग धीरे–धीरे बढ़ रही है, इसलिए इसका व्यवसाय युवाओं के लिए अच्छा मुनाफा कमा सकता है।

चिकन इमल्शन के अवयव

- निरंतर चरण में मुख्य रूप से
  - पानी,
  - पानी में घुलनशील प्रोटीन
  - और नमक में घुलनशील प्रोटीन होते हैं।
- छितरी हुई अवस्था या असंतत चरण में
  - वसा की बूंदें होती हैं।

चिकन इमल्शन में मौजूद प्रोटीन

- पानी में घुलनशील प्रोटीन सरकोप्लाज्मिक प्रोटीन होते हैं जैसे,
  - मायोग्लोबिन और अन्य वर्णकय
- नमक में घुलनशील प्रोटीन मायोफिब्रिलर प्रोटीन होते हैं जैसे,
  - मायोसिन,
  - एक्टिन और
  - एक्टिनिन

चिकन इमल्शन तैयार करने के लिए प्रयुक्त सामग्री

- बिना हड्डी का चिकन मांस (लीन मीट)
- **क्युरिंग सामग्री:** नमक (सोडियम क्लोराइड), फॉस्फेट (इमल्शन को स्टेबल रखते है), शर्करा, नाइट्रेट, नाइट्राइट, एस्कॉर्बेट, एरिथ्रोबेट
- वसा या तेल

चिकन इमल्शन आधारित उत्पादों के विकास के दौरान इमल्शन में मिलाये जाने वाले अन्य सामग्री

- बाइंडर्स
  सोया प्रोटीन, दूध प्रोटीन
- फिलर्स
  कंद, स्टार्च, परिष्कृत गेहूं का आटा, चावल का आटा, फलियां का आटा, आलू स्टार्च आदि
- एमुल्सिफिएर
  सोडियम एल्गिनेट
- मसाले/स्वाद पदार्थ
  धनिया, जीरा, लाल मिर्च आदि
- **अन्य योजक** जैसे एंटीऑक्सिडेंट

चिकन इमल्शन तैयार करने के लिए आवश्यक मशीनरी

1. **मिनसर**
   - मांस को पीसने और मिलाने के लिए उपयोग किया जाता है।

2. **बाउल चॉपर**
   - बाउल चॉपर का उपयोग मांस को बहुत महीन टुकड़ों में काटने के लिए किया जाता है।

चिकन इमल्शन तैयार करने के चरण

1. चॉपर में लीन मीट डालें, उसके बाद नमक (1.5–2%) डालें, नमक के साथ लीन मीट 1.5 से 2 मिनट के लिए काट लें।
2. कटा हुआ मांस में सोडियम नाइट्राइट, एस्कॉर्बेट या एरिथोरबेट शामिल ठंडा पानी मिलाये ध्बर्फ काभी उपयोग कर सकते हैं, बर्फ डालने के बाद इमल्शन का तापमान कई डिग्री गिर जाता है, उसके बाद लगभग 1 मिनट तक काटें, फिर वसा या तेल डालें और 1.5 मिनट के लिए और काट लें।
3. उसके बाद सभी एक्सटेंडर, सीजनिंग और स्वीटनर डालें, और अच्छी तरह से काट लें, अंतिम तापमान 12 से 15 डिग्री सेल्सियस होना चाहिए।

चिकन इमल्शन को प्रभावित करने वाले कारक

- **मांस के प्रकारः** लीन मांस, कम वसा वाला मांस, कम कोलेजन वाला मांस, अच्छा इमल्श विकसित करता है।
- **नमक में घुलनशील प्रोटीन की मात्राः** मांस में नमक में घुलनशील प्रोटीन की अधिक मात्रा अच्छा इमल्शन बनाती है।
- **मांस की गुणवत्ताः** मांस का pH इष्टतम होना चाहिए। बहुत अधिक या निम्न पीएच मांस की खराब गुणवत्ता का संकेत देता है। 5.6–5.9 के बीच पीएच रेंज इमल्शन तैयार करने के लिए सर्वोत्तम है।
- **कोलेजन का प्रभावः** मांस में कोलेजन की अधिक मात्रा इमल्शन को खराब कर सकती है।
- **तापमान का प्रभावः** इमल्शन की तैयारी के दौरान मांस का तापमान कम होना चाहिए। नहीं तो इमल्शन टूट जाएगा। अंतिम तापमान 12 से 15 डिग्री सेल्सियस होना चाहिए।

इमल्शन आधारित चिकन मांस उत्पाद

हम चिकन मीट इमल्शन से कई उत्पाद तैयार कर सकते हैं। चिकन इमल्शन आधारित मांस उत्पाद हैं, उदाहरण के लिए,

- मीट पेटिस,
- मीट बॉलस,
- मीट नगेट्स,
- मीट सॉसेजस

इमल्शन–टाइप चिकन नगेट्स उत्पादन

अच्छी गुणवत्ता वाला चिकन मांस लें और इसे डिबोन करें

↓

मीट माइनर में 8 मिलीमीटर पोर साइज प्लेट का उपयोग करके हड्डी रहित चिकन मांस को कीमा करें

↓

कीमा बनाया हुआ चिकन मांस बाउल चॉपर में डालें

↓

ठंडे पानी या बर्फ के टुकड़ों में नमक, फॉस्फेट और नाइट्राइट मिलाएं और इसे कीमा बनाया हुआ चिकन में मिलाएं

↓

बाउल चॉपर को मध्यम गति से 2 मिनट तक चलाएं

↓

बाउल चॉपर में मौजूद मांस में तेल या वसा मिलाएं

↓

फिर से बाउल चॉपर को मध्यम गति में 1.5 मिनट के लिए चलाएं

↓

फिर बची हुई सभी सामग्री को बाउल चॉपर में मौजूद मीट में मिलाएं और बाउल चॉपर को फिर से मध्यम गति में 2 मिनट के लिए चलाएं। अब इमल्शन तैयार है और इमल्शन को बाउल चॉपर से निकाल लें

↓

10 सेंटीमीटर X 6 सेंटीमीटर आकार के स्टेनलेस स्टील के बक्सों को तेल या चर्बी से चिकना करें और बक्सों में चिकन इमल्शन का हिस्सा डालें। सूती धागों से बक्सों को कसकर बांधें

↓

स्टीमिंग पॉइंट तक स्टेनलेस स्टील कुकिंग वैट में पानी को पहले से गरम करें

↓

स्टीमिंग वॉटर के ठीक ऊपर एक स्टेनलेस स्टील का रैक रखें और रैक के ऊपर इमल्शन युक्त बॉक्स रखें, कुकिंग वैट का ढक्कन बंद करें

↓

45 मिनट तक पकाएं और उसके बाद बक्सों को वैट से बाहर निकाल लें, ठंडा होने के बाद डब्बों को खोलें और पके हुए मांस के टुकड़ों को नगेट्स के आकार में काट लें

↓

नगेट्स को पॉलीथीन के पैकेट में पैक कर डीप फ्रीजर में रख दें और मांग के अनुसार बाजार में पहुंचा दें

मत्स्य पालन के द्वारा आय का अर्जन एवं महिलाओं की सहभागिता

नीतू शाही, सुमंत कुमार मल्लिक एवं अमित कुमार जोशी
भाकृअनुपरि–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल

भूमिका

बहुत वर्ष पहले 1976 में कृषि आयोग ने भारत में उपलब्ध जल स्रोतों के महत्त्व को पहचानते हुए यह सुझाव दिया था कि पर्वतीय क्षेत्रों में स्थित नदियां, जलाशय, तालाबों आदि में उपलब्ध मत्स्य संपदा, उसके विकास तथा मत्स्य पालन के कार्यक्रमों की रूप रेखा तय कर अनुसंधान किया जाए जिससे इस क्षेत्र में मत्स्य सम्पदा को सुरक्षित रख विकास सम्भव हो और मत्स्य पालन की नयी तकनीक विधियां विकसित कर मत्स्य उत्पादन बढ़ाया जा सके। इसी उददेश्य को प्राप्त करने हेतु केन्द्रीय मत्स्य अनुसंधान संस्थान बैरकपुर में शीतजल मात्स्यिकी प्रकोष्ठ का गठन हुआ और अंततः इस केन्द्रीय शीतजल मत्स्य अनुसंधान निदेशालय का दर्जा देकर भीमताल में स्थापित किया गया। मत्स्य अनुसंधान क्षेत्र में काफी कार्य हुआ और नई तकनीक भी विकसित हुयी परन्तु नयी तकनीक पर्वतीय क्षेत्रों के अनुकूल नही बन सकी।

पर्वतीय क्षेत्रों में विषम भौगोलिक परिस्थितियां, साधनों की कमी तथा विभिन्न जलवायु व लोगों का रहन सहन में विविधिकरण होने के कारण मत्स्य उत्पादन तकनीक का विकास करना वास्तव में एक चुनौती थी जिसे केन्द्रीय मत्स्य अनुसंधान निदेशालय भीमताल के वैज्ञानिकों ने स्वीकारा और लगभग 8 वर्षों के अथक प्रयास व अनुसंधान के बाद पर्वतीय क्षेत्रों में मत्स्य पालन की नयी तकनीक प्रस्तुत की। इस तकनीक को अपनाते हुए न केवल उत्तराखण्ड बल्कि हिमाचल, सिक्किम, अरूणाचल, मणीपुर, मेघालय आदि के मत्स्य पालक मत्स्य उत्पादन बढ़ाकर अपना जीविकोपार्जन कर रहे हैं और कुपोषण को खत्म करने के साथ अपनी आमदनी में भी बढ़ोत्तरी कर रहे हैं।

मत्स्य पालन के सिद्धान्त

मैदानी क्षेत्रों अथवा समुद्र में उपलब्ध जल की परिस्थितिकी पर्वतीय क्षेत्रों में उपलब्ध जल स्रोत से भिन्न होती है। पर्वतीय क्षेत्रों में पानी का तापक्रम तथा स्थिति उस जल स्रोत के स्थान, उंचाई पर स्थिति, जल प्राप्त करने के स्रोत आदि पर निर्भर करती है। अतः मैदानी क्षेत्रों में पाली जाने वाली मछलियां यहां रहकर बढ़ नही सकती क्योंकि मछली के शरीर का तापक्रम अस्थिर होता है। वह जिस जल क्षेत्र में रहती है उसी के अनुसार मछली के शरीर का तापमान होता है। मछली की वृद्धि जल के तापमान और जल क्षेत्र में उपलब्ध खाद्य पर निर्भर रहती है।

दूसरे, हर प्रजाति की वृद्धि, पालन योग्य क्षमता इस बात पर भी निर्भर करती है कि मछली का जनेटिक प्रकार, जाति कैसी है तथा रहने अथवा वृद्धि करने हेतु तापक्रम सीमा क्या है।

तीसरे, जल क्षेत्र में उपलब्ध खाद्य अथवा बाहर से दिया जाने वाला भोजन कैसा है और मछली उसे कैसे ग्राह्य करती है यह भी पर्वतीय क्षेत्रों के लिए महत्वपूर्ण है।

चौथा, मत्स्य पालन योग्य प्रजाति की प्रजनन क्षमता, प्रजनन करने का तरीका, उत्प्रेरित प्रजनन द्वारा मत्स्य बीज का उत्पादन आदि ऐसे ही पहलू हैं जिनका ज्ञान न केवल आवश्यक हैं बल्कि इच्छानुसार मत्स्य बीज की उपलब्धता अतिआवश्यक है।

पांचवी बात यह है कि पालने योग्य प्रजाति अन्य प्रजातियों के साथ तालाब में रहने, खाने व वृद्धि के लिए मुकाबला न करती हो तथा रोग न होने या रोग से लड़ने की क्षमता भी ठीक हो।

छठी बात यह है कि मत्स्य पालक को मछली प्रजाति, भोजन, जल पारिस्थितिकी आदि का उचित ज्ञान हो जिससे वह ठीक समय पर फैसले ले सके और सभी पहलुओं में समन्वय बैठा कर मत्स्य उत्पादन बढ़ाकर अपनी सम्पन्नता में वृद्धि कर सके।

पर्वतीय क्षेत्रों में शीतजल

पर्वतीय क्षेत्रों में वे जल स्रोत जहाँ पानी का तापक्रम 20 डिग्री से.ग्रे. से उपर न जाता हो, शीतजल कहलाते हैं। दूसरे हम यह भी कह सकते हैं कि जिन जल क्षेत्रों में साल्मोनिडी परिवार की मछलियां रह सकती हैं ऐसे ही जल स्रोतों को शीतजल कहा जा सकता है।

भारत के जम्मू कश्मीर, हिमाचल, उत्तराखण्ड, सिक्किम, मेघालय, अरूणाचल, मनीपुर तथा पश्चिमी बंगाल का उत्तरी क्षेत्र, तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक के कुछ पठारी क्षेत्रों में शीतजल स्रोत उपलब्ध हैं। इनकी संख्या अथवा क्षेत्रफल का सही आंकलन तो नही है परन्तु यह कहा जा सकता है कि शीतजल मात्स्यिकी के विकास की अपार संभावनाऐं हैं। उपर अंकित किऐ गऐ राज्यों में मत्स्य पालन के हिसाब से प्रत्येक राज्य को तीन श्रेणी में बांट सकते हैः

1. ट्राउट क्षेत्र (ब्राउन, स्नो तथा रेन्बो ट्राउट) 20–30 प्रतिशत समुद्र तल से 1800 मी. से उपर
2. चाइनीज कार्प क्षेत्र (ग्रास, कामन, सिल्वर कार्प महासीर) 40–60 प्रतिशत समुद्र तल से 800–1800 मी. से उपर
3. भारतीय मेजर कार्प क्षेत्र (रोहू, कतला, मृगल, कामन कार्प) 15–20 प्रतिशत समुद्र तल से 700 मी.

मत्स्य सम्पदा

पर्वतीय क्षेत्रों के जल स्रोतों में लगभग 258 प्रजाति की ही मछलियाँ पायी जाती हैं। परन्तु मत्स्य वृद्धि/पालन योग्य प्रजाति कुछ ही है और उनके खाने, प्रजनन आदि की समस्याऐं होने के कारण उनका मत्स्य पालन में उपयोग न हो सका। अतः कुछ प्रजाति जैसे रेन्बो ट्राउट, चाइनीज कार्प आदि को शीतजल क्षेत्रों में लाया गया और सफलतापूर्वक पाला जा रहा है।

शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय की भूमिका

अब तक हुए कार्यो की समीक्षा करते हुए वर्ष 1994 में निदेशालय के वैज्ञानिकों ने पर्वतीय क्षेत्रों में मत्स्य पालन की नयी तकनीकियां विकसित करने हेतु एक कार्यक्रम तय किया जिसका उददेश्य था कि पर्वतीय क्षेत्रों में अधिक क्षेत्र में उपयोगी, कम लागत वाली, आसान प्रबन्धन वाली तकनीक विकसित की जाय जो मत्स्य पालकों को सस्ता, अधिक कीमत तथा नगण्य लागत दे सके। अतः कार्प प्रजाति, ट्राउट, रेन्बो ट्राउट, महासीर, स्नो ट्राउट आदि अन्य प्रजाति का विशेष अध्ययन किया गया। इसके पहलू थेः–

1. प्रजाति का जैनेटिक प्रकार व क्षमता
2. वृद्धि के लिए तापक्रम, प्राणवायु, तथा अन्य कारकों की आवश्यक सीमा
3. प्रजाति की वृद्धि, रोगों से लड़ने की क्षमता/बचाव
4. प्रजाति का दूसरी प्रजातियों के साथ रहने, खाने में सहभागिता
5. पालन योग्य प्रजातियों का प्रजनन व बीज उत्पादन /उपलब्धता
6. प्रजातियों के रख रखाव /पालन के साधन, ज्ञान, व्यय तथा आमदनी का व्यौरा

इन सभी पहलुओ पर अध्ययन किया गया। विस्तृत अध्ययन चम्पावत मत्स्य प्रक्षेत्र में वर्ष 1994–98 के मध्य पूरा किया गया। अध्ययन के बाद परिणाम बड़े ही उत्साहजनक रहे। अध्ययन के बाद यह निष्कर्ष निकला कि रेन्बो ट्राउट अत्यधिक लागत होने के कारण तथा सुदूर बाजार आदि के कारण कुछ ही क्षेत्रों में प्रोत्साहित किया जाए। ब्राउन ट्राउट तथा स्नो ट्राउट की प्रजनन तकनीक विकसित कर बीज उत्पादन बढ़ाकर जल स्रोतों में संचयित किया जाए।

सभी प्रजातियों में चाइनीज कार्प बड़ी ही सटीक प्रजाति पायी गई और अधिक कार्य क्षेत्र, कम लागत तथा आसान प्रबन्धन आदि को ध्यान में रखकर समन्वित मत्स्य पालन तकनीक विकसित की गयी। चाइनीज कार्प की विशेषता हैः

1. सभी जगह उपलब्ध तथा खाने योग्य मछलियों ज्यादा मांग
2. प्रजनन तथा बीज उत्पादन आसान

3. रहने तथा बृद्धि के लिए पानी के तापक्रम की बड़ी सीमा (4–32 डिग्री)
4. तेज वृद्धि 500 –800 ग्राम/7–8 माह में (19–26 डिग्री)
5. प्राण वायु की आवश्यकता कम अतः अधिक घनत्व में संचय (2–4 मछली/मीटर)
6. तालाब, भोजन, रसोई का बचा भोज्य पदार्थों के उपयोग करने की क्षमता
7. अत्यधिक मांग व आसान प्रबन्धन
8. मत्स्य पालन के लिए अति उत्तम (800–2000 मीटर के बीच)

अतः इसी आधार पर चाइनीज कार्प और महासीर मछली को उपयोग करते हुए समन्वित मत्स्य पालन तकनीक का विकास किया गया यह तकनीक संक्षेप में इस प्रकार है:

समन्वित मत्स्य पालन तकनीक

1. समुद्र तल से 800–2000 मी. के बीच जल क्षेत्रों के लिए उपयुक्त
2. खाने योग्य उत्पादन केवल 8 माह में मध्य मार्च से नवम्बर के बीच
3. छोटे से बड़े तालाब तक सम्भव 100–400 मी. जल क्षेत्र
4. कम पानी की आवश्यकता 1.6–2.0 मीटर गहराई
5. मत्स्य घनत्व 2.8–3.2 मछली/मी.
6. प्रजातिः ग्रास कार्प 40–50, सिल्वर कार्प 20–25, कामन कार्प 30–40 महासीर 6–10 जिनका आकार 60–8 मिमी. हो
7. 300–450 किग्रा. चूना/प्रत्येक ळे0/वर्ष, प्रत्येक बारहवें दिन
8. केवल गोबर की खाद
9. साधारण प्रबन्धन
10. उत्पादन लागत करीब 30–40 रू./किग्रा
11. बिक्री मूल्य करीब 100–120 रू./किग्रा

विकसित तकनीक का प्रसार एवं ग्राहयता

वर्ष 1998 से 2004 के बीच इस तकनीक को और उपयुक्त, समग्र बनाया गया और सर्वप्रथम गांव तौली, पाटी क्षेत्र जिला चम्पावत में आरम्भ कर उत्तराखण्ड के अन्य जिले–नैनीताल ,पिथौरागढ़ अल्मोड़ा, बागेश्वर,देहरादून चम्पावत में भी मत्स्य पालकों ने इस तकनीक को बड़े उत्साह से अपनाया।इससे पहले जहां मत्स्य पालन का कृषि आमदनी में कोई योगदान नही था अपना एक उचित स्थान प्राप्त कर लिया। प्राप्त आंकड़ों के अनुसार कृषि से आमदनी 51 प्रतिशत, पशुपालन से 14 प्रतिशत, बाग नर्सरी से 5, तथा मत्स्य पालन से 30 प्रतिशत आमदनी अंकित की गयी जो अपने में एक उपलब्धि थी।

आगे प्राप्त आंकड़ों के आधार पर इस तकनीक में अनेक बदलाव कर दो नए प्रारूप तैयार किऐ गऐ। इन्हे न केवल उत्तराखण्ड बल्कि अरूणाचल, मनीपुर, मेघालय, सिक्किम, उत्तर पश्चिमी बंगाल के चुने हुए क्षेत्रों में 2005–2010 के बीच प्रदर्शन किया गया। लगभग 390 मत्स्य पालकों ने इस तकनीक को अपनाया। किसी भी मत्स्य पालक ने इस तकनीक द्वारा मत्स्य उत्पादन के कार्यक्रम का त्याग नही किया है। यही इसकी सफलता की कहानी है।

तकनीक का विविधीकरण

पर्वतीय क्षेत्रों में प्राप्त सफलता से उत्साहित होकर केन्द्रीय मत्स्य अनुसंधान निदेशालय भीमताल के वैज्ञानिकों ने इस मत्स्य पालन तकनीक को आधार बनाकर निम्न तकनीक विकसित की हैं। ये सभी तकनीक मत्स्य पालकों द्वारा अपनायी जा चुकी हैं:

1. धान–मत्स्य पालन एक साथ अरूणाचल के जीरो माडल को विकसित कर इसे अरूणाचल, मणीपुर, और मेघालय में लागू किया
2. पशुपालन–मत्स्य पालन एक साथ
3. बहते पानी में सघन मत्स्य पालन सिक्किम, उत्तर पश्चिमी बंगाल, उत्तराखण्ड में इसे अपनाया गया।

पर्वतीय क्षेत्रों में मत्स्य पालन में महिलाओं की सहभागिता

भारत विश्व में मीठे पानी की मछलियों के सबसे बडे उत्पादक देशों में से एक है। एशिया का दूसरा सबसे बडा मीठे पानी का स्त्रोत यहाँ स्थित है। लेकिन अधिकांश मीठे पानी के स्त्रोंतो का उपयोग मत्स्य उत्पादन के लिए नही हो पाया है। इस प्रकार ग्रामीण महिलाएं इन जलाशयों में मत्स्य उत्पादन द्वारा अतिरिक्त आय और अधिक प्रोटीनयुक्त खाद्य का उत्पादन कर सकती है। वे निम्न तकनीकियों को अपनाकर मत्स्य पालन से आय अर्जित कर सकती है:

सजावटी मछलियों का उत्पादन तथा प्रजनन

सजावटी मछलियों का उत्पादन और प्रजनन अत्यधिक लाभप्रद उपक्रम है जो कम पूंजी तथा कम स्थान लेता है इसमें अधिक प्रारम्भिक निवेश की आवश्यकता नही होती तथा बहुत छोटे स्थान में कम टैंको में किया जा सकता हैं गप्पिज, मौंलिज, फाइटर फिश अन्य मूल प्रजातियों का प्रजनन भारत के दक्षिण भाग की शहरी और ग्रामीण महिलाओं में अतिरिक्त आया स्त्रोत के रूप में सामान्य व्यवसाय है। यह सामान्यतः घरों के पीछे के आंगनो में छोटे सीमेन्ट या प्लास्टिक टैंको में किया जाता है।

खाद्य मछलियों का संर्वधन

असम, पश्चिमी बंगाल, उडीसा और अन्य उत्तर पूर्वी राज्यों के गांवा में घर के पीछे के आंगन में तालाब सामान्यतः पायें जाते है। इन तालाबों में मेजर और माइनर कार्पो के साथ कैटफिश भी पायी जाती है। रसोई घरों से निकला अपशिष्ट इन मछलियों के भोजन के रूप में प्रयोग किया जाता है तथा तालाब को मुर्गियों के मल तथा गाय के गोबर द्वारा उर्वरित किया जाता है। इस प्रकार उत्पन्न अधिकांश कार्बनिक अपशिष्ट को प्रोटीनयुक्त मछली में परिवर्तित किया जाता है, जो कि परिवार को प्रोटीनयुक्त भोजन देने के साथ घर की आय को बढाता है। इस तंत्र में मछलियों के उत्पादन में लागत मछलियों के व्यवसयिक उत्पादन की तुलना में बहुत कम होती है। एक 200मी0 2 क्षेत्रफल के तालाब से लगभग 100 किग्रा0 मछली प्रति वर्ष मिलना संभव है। तालाब बंध का उपयोग अतिरिक्त आय के स्त्रोत के लिए सब्जी उत्पादन तथा मुर्गी पालन के लिए उपयुक्त स्थान के रूप में किया जा सकता है, इन तालाबों का प्रयोग मछली के बीजों के पालन पोषण के लिए भी किया जा सकता है।

मछली पकडने के सामान का निर्माण

मछलियों के परिवहन के लिए मछली पकडने का जाल, मछलियों के फंदे तथा टोकरियों के निर्माण को महिलाएं कुटीर उद्योग के रूप में अपना सकती है। राधेश्याम तथा सहयोगियों (1988) द्वारा उडीसा में किया गया अध्ययन यह दर्शाता है कि एक बार प्रशिक्षित करने पर महिलाऐं जाल निर्माण करके खेतिहर मजदूरी की अपेक्षा अधिक अर्जित कर सकती है। महिलाऐं बर्फ के साथ ताजी मछली को पैक करने के लिए बडी टोकरियाँ बनाकर भी निश्चित रूप से लाभन्वित होंगी, जैसे कि सभी महत्वपूर्ण मत्स्य उत्पादन केन्द्रों में इनकी बहुत मांग है।

मछलियों का विपणन

भारत मे मीठे पानी की मछलियाँ अधिकतर पुरूषों द्वारा विपणित की जाती रही है। जबकि परम्परागत रूप से समुद्री मछलियों का खुदरा विपणन महिलाओं द्वारा किया जाता रहा है। अधिक औद्योगिकरण के साथ मछली और मछली के उत्पादों के लिए शीतग्रहण तथा रेफ्रिजेरेटड बिक्री केन्द्र

अधिक संख्या में स्थापित किये जाने के लिए बाध्य कर रहे हैं। जैसे की महिलाएं मछलियों के खुदरा बाजार के लिए अधिक उपयुक्त हैं, उन्हें ऐसे बिक्री केन्द्रो का संचालन करने के लिये उपयुक्त प्रोत्साहन जैसे– कम ब्याज दरों पर लोन देकर निवेश तथा कार्यशील पूंजी के लिए प्रोत्साहन करना चाहिए।

मछली के उत्पाद तथा सह उत्पादों की तैयारी

मत्स्य पालन के माध्यम से मछली उत्पादन में वृद्धि के साथ प्राथमिक उत्पादकों के हितों की रक्षा के लिए और साथ ही बाहरी उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए शायद जल्द ही प्रयोग करने के लिए तैयार उत्पादों का निर्माण आवश्यक हो जाएगा। शहरीकरण की तेज रफतार आगे आने वाले वर्षों में जमे हुए फीसेटस की मांग विशेषकर उच्च और मध्यम वर्ग के बीच बढा सकती है। इसी प्रकार ऐसे हल्के तले और जमे हुए मछली के उत्पाद का भी शहरी क्षेत्रों में बाजार ढूंढना चाहिए। ग्रामीण महिलाओं को इस तरह के उत्पादों की तैयारी में उचित प्रकार से प्रशिक्षण और रोजगार दिया जा सकता है। कुछ प्रजातियाँ जैसे कि सिल्वर कार्प और ग्रास कार्प को जब शुद्ध रूप में बेचा जाता है तो एक अच्छा मूल्य प्राप्त नही होता, तो इन मछलियों के पालन का शुद्ध रिटर्न बढाने के लिए इन्हें उचित ढंग से संसाधित करके बाजार में अन्य रूपों में बेचा जा सकता है।

बैद्धिक सम्पदा अधिकार

एस. अली एवं एन.एन. पाण्डे
भाकृअनुप–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल

हम जानते हैं कि मस्तिष्क का विकास सभी व्यक्तियों में ऐक समान नहीं होता, न ही यह किसी खास उम्र, स्थान आदि पर निर्भर करता है। किसी छोटी जगह से रहने वाला, छोटी उम्र का व्यक्ति भी विकसित मस्तिष्क का मालिक हो सकता है। मस्तिष्क का विकास लिंग विशेष पर निर्भर नहीं करता। लाखो में कोई एक ऐसा व्यक्ति होता है जिसका मस्तिष्क इस स्तर तक विकसित होता है कि वह कोई आविष्कार कर सके।

एक विकसित मस्तिष्क के व्यक्ति के दिमाग में हमेशा कुछ नया करने की चाहत रहती है। वह किसी समस्या को, आम लोगों से अलग ढंग से सोचता है और उसका समाधान निकालने की कोशिश करता है। इस तरह के व्यक्ति के मन में नित्य नये–नये विचार आते रहते हैं और यदि उसको अपने इस नये विचारो पर काम करने का मौका और सुविधा मिलता है तो एक नया या विकसित आविष्कार होता है।

मस्तिष्क की ऐसी अभिव्यक्ति जो किसी आविष्कार अथवा कोई साहित्यिक या कलात्मक कार्य में बदली जा सके जैसे–कोई पहचान चिन्ह, प्रतीक, नाम, प्रतिमाएं जो वाणिज्य में इस्तेमाल किया जाता है, बौद्धिक सम्पदा (Intellectual Property) कहलाता है। दूसरे शब्दो में, वह कोई भी वस्तु, जो किसी व्यक्ति के मस्तिष्क की ऊपज हो, जैसे कोई शब्द, वाक्यांश, प्रतीक, डिजाइन, संगीत, काव्य, कलात्मक कार्य खोज (Discovery) एवं आविष्कार (Invention) जिसका कोई आर्थिक या सामाजिक विकास में महत्व हो वह व्यक्ति की बौद्धिक सम्पदा कहलाती है। शब्द बौद्धिक सम्पदा का उपयोग उन्नीसवीं शताब्दी में प्रारम्भ हुआ तथा 20वीं शताब्दी में यह शब्द संयुक्त राज्य अमेरिका में आत रूप से उपयोग में आने लगा।

यह बौद्धिक सम्पदा, जिसके विकास में किसी व्यक्ति अथवा कंम्पनी ने अपनी जीवन गुजार दी, अगर सुरक्षित नहीं किया जाये तो क्या होगा? आपकी अपनी सम्पदा किसी और के हाथ जा सकती है जो इसका गलत इस्तेमाल करके मुनाफा कमा लेगा। साथ ही, वह बौद्धिक सम्पदा, जो किसी देश के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती थी, किसी व्यक्ति अथवा स्थान तक ही सीमित रह जायेगी, उसका प्रचार प्रसार नहीं हो पायेगा। इसलिये किसी भी बौद्धिक सम्पदा की सांबैधानिक सुरक्षा जरूरी ळें

सामन्यता विश्व के सभी देशो ने इन बौद्धिक सम्पदाओं के संरक्षण का कानून बना रखा है, जिसे उस देश का बौद्धिक सम्पदा संरक्षण कानून कहते हैं। इस कानून के तहत सम्पत्ति के मालिक को यह अधिकार है कि वह एक निश्चित समय तक अपनी बौद्धिक सम्पदा का बाजारीकरण कर, पूरा आर्थिक लाभ उठा सके। साथ ही, नियम यह भी सुरक्षित करता है कि यह सम्पदा आम आदमी की जरूरत के अनुसार उस तक पहुँच सके।

निम्नलिखित दो कारणो से बौद्धिक सम्पदाओं को बचाने के लिये कानून बना है:

अ) रचनाकार को एक सांबैधानिक, नैतिक और आर्थिक अधिकार प्रदान करने के लिये ताकि वो अपनी रचना को ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुँचाते हुए ज्यादा से ज्यादा पारितोषिक पा सके।

ब) रचनात्मकता को बढ़ाबा, विस्तार और फेयर ट्रेड (fair trade) को बढाबा देने के लिये, जो की देश के सामाजिक एवं आर्थिक विकाश में सहायक सिद्ध हो। बौद्धिक सम्पदा को मुख्यरूप से निम्नलिखित भागों में विभक्त किया जा सकता है:

1) कॉपीराइट (Copyrights),
2) ट्रेडमार्क (Trademarks),
3) पैटेंट (Patents),
4) इंडस्ट्रियल डिजाइन (Industrial Designs)
5) ट्रेड सेक्रेट्स (Trade Secrets) और
6) भौगोलिक संकेत (Geographical Indications)

कॉपीराइट

यह एक प्रकार अधिकार है जिसके तहत किसी लेखक या रचनाकार को उसके कार्य के कॉपी, वितरण एवं उपयोग का पूर्ण अधिकार प्राप्त है। कॉपीराइट नियम के तहत सुरक्षित रचना का उपयोग कोई दूसरा व्यक्ति तब तक नहीं कर सकता जब तक वह रचनाकार से अनुमति नहीं ले लेता।

आमतौर पर, रचना को कॉपीराइट सुरक्षित करने के लिये किसी प्रकार के रजिस्ट्रेशन की जरूरत नहीं है। केवल, © रचनाकार का नाम एवं रचनावर्ष (उदाहरणः © झा, 2011 लिख देने से रचना अपने आप में सुरक्षित हो जाती है। वैसे भारतीय संबिधान के कॉपीराइट एक्ट 1957, जो जनवरी 1958 से कार्य रूप में आया, जिसका पाँच बार संशोधन हो चुका है (Amendment, 1983, 1984, 1992, 1994 and 1999), के तहत, किसी रचना के रजिस्ट्रेशन का आवेदन, फार्म– IV (Form-IV) को भरकर, निर्धारित शुल्क के सपमि, शिक्षा विभाग, नई दिल्ली के कॉपीराइट कार्यालय में जमा किया जा सकता है। प्रक्रिया पूर्ण होने पर रजिस्ट्रेशन भी प्राप्त किया जा सकता है। यह रजिस्ट्रेशन रचनाकार के जीवन प्रयंत तथा तत्पश्चात 50 वर्षो तक मान्य रहता है।

ट्रेडमार्क

किसी व्यक्ति, व्यापारिक संगठन अथवा कानूनी इकाई के द्वारा, उसके उत्पाद अथवा सेवा को अन्य किसी उत्पाद या सेवा से पृथक करने के लिये उपयोग में लाये जा रहे किसी विशिष्ट संकेत या सूचक को उसका ट्रेडमार्क कहते हैं। इस सूचक या संकेत के द्वारा, ग्राहकों को, कम्पनी यह दर्शाती है कि यह उत्पाद एवं इसकी गुणवत्ता, अन्य से भिन्न है।

ट्रेडमार्क को दर्शाने के लिये निम्पलिखित संकेत उपयोग में लाया जाता हैः–

™ बिना रजिस्टर्ड ट्रेडमार्क के लिये,

℠ बिना रजिस्टर्ड सर्विस मार्क के लिये,

® रजिस्टर्ड ट्रेडमार्क के लिये।

एक पारम्परिक ट्रेडमार्क, किसी नाम, शब्द, मुहावरा, लोगो (Logo), प्रतीक (Symbol), डिजाइन या इन सब के मिश्रण से बनता है। जबकि, किसी खास रंग, गंध या ध्वनि पर आधारित ट्रेडमार्क गैरपारम्परिक कहलाता है।

किसी उत्पाद या सेवा (Goods of Services) कपामे बाजार में लाने के लिये, यह जरूरी नहीं कि उसका रजिस्ट्रेशन कराया जाये। लेकिन, इस उत्पाद या सेवा के गैरकानूनी उपयोग को रोकने के लिये यह जरूरी है कि उसका रजिस्ट्रेशन कराया जाये।

भारत में, ट्रेडमार्क एक्ट, 1999 (Trade Marks Act. 1997), जो कि 15 सितम्बर, 2003 से कार्य रूप में आया, के तहत कोई भी व्यक्ति अपने उत्पाद या सेवा का रजिस्ट्रेशन, ट्रेडमार्क रजिस्ट्रेशन ऑफिस (Trademark Registration Office), जो कि मुंबई, दिल्ली, कोलकाता, चेन्नई एवं अहमदाबाद में स्थित है, से करवा सकता है। जिसके लिये, आवेदन फार्म, TM-1, भरकर, 2500/रू. शुल्क के साथ ऊपरलिखित किसी भी ऑफिस में जमा करना पड़ता है। एक रजिस्टर्ड ट्रेडमार्क 10 पष्चात, प्रत्येक 10 बर्ष पर, नवीनीकरण कराना पड़ता है।

पैटेंट

पैटेंट, एक प्रकार का अन्नय एकाधिकार (Exclusive Monopolistic Rights) हैं, जो किसी आविष्कारक या उसके उत्तराधिकारी, या थ्यरप, उसके द्वारा कानूनन सत्यापित व्यक्ति को, उसके आविष्कार के लिये, सम्बन्धित सरकार के द्वारा, निश्चित समयावधि तक, प्रदान किया जाता है। इस समयावधि में, आविष्कारक अथवा उसके प्रतिनिधि को यह अधिकार होता है कि वह अपने आविष्कार का व्यापारिकरण कर सके और उससे आार्थिक लाभ उठा सके।

चूकि, एक व्यक्ति अपने जीवन का अमूल्य समय और धन किसी आविष्कार के पीछे लगाता है, तक जा कर कहीं वह कामयाब हो पाता है। अतः, पैटेंट, उस वयक्ति (आविष्कारक) को, सरकार द्वारा

निर्धारित एक रिवार्ड है जिसका लाभ उसे 20 बर्षो तक मिलता है (Patents are granted for 20 years in India and also in other WTO member countries)। इन 20 बर्षो के बाद, यह पैटेंटेड आविष्कार, पूरे समाज/देश की सम्पत्ति कहलाती है। कोई आविष्कार, वास्तव में तभी पैटेंट कराया जा सकता है जब वह नया हो, कहीं भी उसका विवरण उपलब्ध न हो (Non-obvious) साथ ही सपमि वह उपयोगी भी हो, जिसकी औद्योगिक उपयोगिता (Industrial Application) हो। पैटेंट अधिकार के तहत किसी आविष्कार को सुरक्षित करने के लिये यह जरूरी है कि अपने आविष्कार की प्रक्रिया, उपयोगिता आदि का उल्लेख उस देश, जहाँ पैटेंट सुरक्षा चाहते हैं, के पैटेंट कार्यालय में उपलब्ध, निर्धारित फॉर्म में करें, तथा निर्धारित शुल्क के सपमि जमा करें।

भारतीय पैटेंट एक्ट, 1970 (Indian Patent Act 1970-Amendment, 2005), संशोधन–2005, के तहत किसी आविष्कार को सुरक्षित करने के लिये निम्नलिखित फॉर्मो को भरना पड़ता है, और उसे पैटेंट ऑफिस, कोलकाता, न्यू दिल्ली, चेन्नई या मुम्बई में जमा करना पड़ता है:–

फॉर्म–1 पैटेंट अनुदान का आवेदन (Application for the Grant of Patent)

फॉर्म–2 कार्य का अपूर्ण/पूर्ण विवरण (Provisional or Complete Specification)

फॉर्म–3 आवेदक का उपक्रम एवं व्याख्या (Statement and Undertaking by Application)

फॉर्म–5 आविष्कारक के तौर पर घोषणा (Declaration as to Inventor ship)

फॉर्म–26 किसी अन्य व्यक्ति या पैटेंट एजेंट की प्राधिकृति (Authorization of Patent Agent or any other Person)

औद्योगिक डिजाइन

किसी वास्तविक वस्तु का सौंदर्य मूल्य युक्त, ऐसा कोई भी आकार या ढाँचा, जो द्वीआयामी (Two Dimensional) या त्रिआयमी (Three Dimensional) हो, और जो किसी रंग, लाइन अथवा अन्य किसी सामान के मिश्रण से बना हो, साथ ही जिससे किसी तैयार वस्तु का पूर्णतः पूर्वानुमान लगता हो, इंडस्ट्रियल डिजाइन (Industrial Design) कहलाता है।

TRIPS (Trade Related Aspects of intellectual Property Rights Agreement, 1994) समझौता (इस समझौते का नियम, WTO (World Trade Organization) के सदस्य, सभी देशों पर लागू होता है) के अनुच्छेद 25 एवं 26 को ध्यान में रखते हुए, भारत ने भी, औद्योगिक डिजाइन सुरक्षा अधिनियम, जो डिजाइन एक्ट–2000 (Design Act, 2000) के नाम से जाना जाता है, बनाया। इस नियम के तहत, किसी भी औद्योगिक डिजाइन को रजिस्टर्ड करवाया जा सकता है, जो कि 10 वर्षो तक मान्य रहता है। तत्पश्चात, पुनः 5 वर्षो के लिये नवीनीकरण करवाया जा सकता है।

ट्रेड सीक्रेट

TRIPS समझौते के अनुच्छेद 39, धारा 7, भाग II , के अनुसार, कोई तकनीकी डाटा, अंदरूनी तरीका, प्रक्रिया, सर्वेक्षण का तरीका, कोई नया आविष्कार (जिसके लिये पैटेंट आवेदन नहीं दिया हो), ग्राहको की सूची, उत्पाद को बनाने का तरीका, तकनीक, सूत्र या चित्र, आदि ट्रेड सीक्रेट के अंतगर्त आता है। कोई कम्पनी, ज्यादा से ज्यादा, आर्थिक लाभ प्राप्त करने के लिये इन जानकारियों को जान–बुझ कर छुपाती है, जिससे, कम्पनियों के बीच प्रतियोगिता को बढाबा भी मिलता है।

ट्रेड सीक्रेट की सुरक्षा कें लिये कोई अलग ढंग से नियम नहीं बनाया गया है। ट्रेड सीक्रेट बनाए रखने के लिये भारत, TRIPS समझौता के सामान्य नियमों का पालन करता है।

भौगोलिक संकेत

किसी–किसी वस्तु की गुणवत्ता, उस वस्तु के उत्पादन के जगह पर निर्भर करती है, और उत्पादन की जगह बदलने से उसकी गुणवत्ता भी बदल जाती है। अतः इस तरह के किसी खास उत्पाद की गुणवत्ता को व्यक्त करने के लिये यह जरूरी है कि ग्राहकों को उसके उत्पादन की, जगह के बारे में भी बताया जाये। इस तरह के उत्पाद को, उस, जगह, जहाँ इसका उत्पादन हुआ है, के नाम

के साथ दर्शाया जाता है, जैसे– Burgundy (एक विशेष प्रकार के Wine का नाम है जो वास्तव में फ्रांस के एक प्रांत का नाम है, और यहीं इसे बनाया जाता है।) Champagne (एक विशेष प्रकार के Wine का नाम है जो वास्तव में फ्रांस के एक प्रांत का नाम है, और इसे यहीं बनाया जाता है।), कश्मीरी शॉल (इसकी गुणवत्ता अन्य शॉल से भिन्न होती है)।

अतः भौगोलिक संकेत, किसी उत्पाद का नाम या उस पर अंकित एक प्रकार का चिन्ह है जो उसके उत्पादन की जगह के बारे में बताता है।

किसी वस्तु के भौगोलिक संकेत (Geographical Indications of Goods (Registration and Protection) Act, 1999) के रजिस्ट्रेशन एवं सुरक्षा का कानून, भारत में, 1999 में बना जो 15 सितम्बर, 2003 से लागू हुआ। यह नियम, किसी उत्पाद के भौगोलिक संकेत का रजिस्ट्रेशन एवं सुरक्षा प्रदान करता है। किसी उत्पाद के भौगोलिक संकेत का रजिस्ट्रेशन भी, पैटेंट, डिजाइन और ट्रेडमार्क के कंट्रोलर जनरल से प्राप्त किया जा सकता है। वैसे, भौगोलिक संकेत रजिस्ट्री ऑफिस, चेन्नई में है।

निष्कर्ष

बौद्धिक सम्पदा चार दिवारी में कैद करने की चीज नहीं, बल्कि, यह निखारने और समाज तक पहुँचाने की चीज है। यह किसी सरकार की नहीं, बल्कि, आपकी भी जिम्मेदारी है कि अपने विकषित मस्तिस्क का और अधिक विकास करें, और देश में उपलब्ध, पैटेंट, ट्रेडमार्क, कॉपीराइट सुरक्षा, आदि नियमों का फायदा उठाएँ। जहाँ, पैटेंट नियम के तहत, आप अपने आविष्कार को सुरक्षित कर, 20 वर्षो तक पारितोषिक पा सकते हैं, वहीं कॉपीराइट नियम के तहत, आप अपनी रचनाओं पर, जीवनप्रयन्त तथा तत्पश्चात आपके बंशज 50 वर्षो तक लाभ कमा सकते हैं। यदि आपने कोई, उत्पाद विकसित किया है, तो ट्रेडमार्क नियम के तहत, आप अपने उत्पाद का बाजारीकरण, अपने ही किसी इच्छित ट्रेडमार्क से कर सकते है, जो नियमित नवीनीकरण करने पर, अनिश्चित काल तक वैध रहता है। बौद्धिक सम्पदाओं के संरक्षण से किसी व्यक्ति विशेष का ही नहीं, अपतु, सम्पूर्ण देश का आार्थिक एवं सामाजिक विकास होता है।

आज के इस वैश्रिकरण के दौड़ में, जो देश और जिस देश का नागरिक, अपने बौद्धिक सम्पदा के प्रबन्धन एवं सुरक्षा के प्रति जागरूक नहीं हैं, वह देश एवं उस देश का नागरिक कभी विकसित नहीं हो सकता। यह अध्याय, बौद्धिक सम्पदा अधिकार को आम लोगों तक पहुँचाने का, एक तुच्छ प्रयास मात्र है।

किसी का बदला लेने में समय व्यर्थ न करें,
क्योंकि जो आपको चोट पहुँचाते हैं वे अपने कर्म
का स्वयं सामना करेगें।

–आचार्य चाणक्य

'नारी एक आधुनिक दृष्टि'

शारदा मालरा
मुख्य उद्यान अधिकारी कार्यालय, विकास भवन, भीमताल

नारी............. भारतीय नारी!

इस शब्द के साथ ही ऑखों के सामने कुछ साफ–चमक तस्वीरें आ जाती हैं।

अभिशप्त शकुन्तला, राम के साथ पग–पग पर सहयोग करती सीता...... भरी सभा में चीर हरण का शिकार द्रोपदी............. अपने पुत्र को पीठ में बॉधे अग्रेंजो का रूबरू सामना करती घोड़े पर सवार लक्ष्मी बाई........... जहर का प्याला पीती कृष्ण दीवानी मीरा............ और आजाद भारत में देश की अखण्डता के लिए गोलियों से छलनी होती हुई इंदिरा गॉधी।

किन्तु....... इसके साथ कुछ बेनाम तस्वीरें भी हैं.............. जमींदार की वासना का शिकार कल्लू की बीबी जो सिर्फ औरत है.............. राजधानियों में बहु मंजिला इमारतों के लिए ईट–गारा ढोती नन्हे की मॉ .... जो सिर्फ औरत है, महानगर में दहेज हत्या की शिकार दीना की बहन.......... जो सिर्फ औरत है।

सीता.... द्रोपदी....... लक्ष्मीबाई........ मीरा और इन्दिरा ये नारी थी....... भारतीय नारी इनका एक नाम है...... एक इतिहास है।

हम उनके नाम पर गर्व कर सकते है, हम उनके इतिहास को कैप्सूल में आने वाले कल के लिए सुरक्षित रख सकते है। हमारे साहित्यकार इन पर महाकाव्य लिख सकते है।

गॉवों, कस्बो में वासना के भूखे मानव पशुओं की ऑखों में जलती हुई, बहुमंजिली इमारतों के ठीक पीछे सुअर के दबडेनुमा झोपडी में तिल–तिल जीती हुई, आयात–निर्यात में मुनाफे का सौदा बनती हुई, भारत की नागरिक नारी नहीं है, औरत है, केवल औरत है।

इनका कोई नाम नहीं है, कोई इतिहास नहीं केवल औरत ही इनका नाम है और औरत होना ही इनकी पहचान है।

अखबारों में रोज निकलने वाले लॉटरी परिणाम की तरह इन्हें भी बलात्कार, उत्पीड़न, दहेज हत्या, सामूहिक नरसंहार, अपहरण आदि की सुर्खियों में'खबर' के रूप में देखा जा सकता है।

अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष को हम भूल ही चुके है। और अब हम 21वी शताब्दी में धूम–धाम से प्रवेश कर रहे है। किन्तु....? प्रेमचन्द्र की 'धनिया' लगभग आधी सदी बाद भी फटे हाल है, उसका आदमी साहूकार के कर्ज के नीचे दबा दम तोड़ रहा है, उसका लड़का ठाकुरों के अत्याचार से बचने के लिए शहर भाग गया है और वहा उसका हर दिन, नये ढंग से रोटी की तलाश में शुरू होता है।

निराला की 'वह' आज भी राजमार्गो के लिए पत्थर तोड़ रही है। नारी स्वातंत्र्य पर गोष्ठियॉ संवाद बद्दस्तूर जारी है।गांव, कस्बा, नगर, महानगर, सर्वत्र औरत का एक चेहरा देखा जा सकता है। मलिन बुझता हुआ किन्तु अदभ्य जिजी विषा के लिए लड़ता हुआ।

हम पढ़ते है.............. 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो'

अमृता प्रीतम का एक कथन याद आता है–'इस देश में औरत को कभी औरत के रूप में देखने की कोशिश नहीं की गयी, उसे या तो 'देवी' के रूप में देखा गया अथवा 'वेश्या' के रूप में'।

देवताओं से इन्सान तक की नजर औरत की तरफ जब भी उठी है, उसने उसमें केवल 'औरत' ही देखी है।

राजा इन्द्र से लेकर गॉव के ठाकुर जमीदारों तक औरत को देखने की नजर में कोई फर्क आया है?

हम पढ़ते है......... "यत्र नारी पूज्यते तत्र रम्यन्ते देवताः"

प्रेम–श्रद्धा–करूण–दया की मार खाते–खाते और पुरुष से इतनी अलग हो गयी है कि हर

ऊँचाईयों पर पहुँचने के बाद भी पुरूष द्वारा उसे 'औरत' के रूप देखा जाना ही उनकी नियति बन गयी है।

पुरूष का अंहकार उसे 'देवी' बनाता है तो 'वेश्या' भी।

औरत आदमी के बीच सहयोग की कड़ी सदियों से गायब है, साथ–साथ चलने के रास्ते तो खुले है, किन्तु वहॉ औरत को चलना अकेले ही है।

हम पढ़ते है–"अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी"

हम यह भी पढ़ते है....... "बछेन्द्रीपाल एवरेस्ट पर चढ़ने वाली पहली भारतीय महिला है।"

किन्तु तो भी.............. आदमी–औरत के बीच सहयोग की कडी गायब है.... अपने रास्तों पर 'औरत' अकेले चलने के लिए आज भी अभिशप्त है।

उत्तराखण्ड भू-कानून

कविता पटवाल
भाकृअनुप–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल

भारत देश में भौगोलिक विविधताओं के साथ–साथ सांस्कृतिक विविधताएं भी मौजूद है,भारत देश विविधताओं में एकता का संदेश देने वाला, कला और सांस्कृति को सहेजने वाला देश रहा है। भारत भौगोलिक विभिन्नताओं से संपन्न देश है, यहाँ मैदान, पठार, पहाड़ी क्षेत्र, दलदली क्षेत्र आदि भौगोलिक विशेषताएं पाई जाती है, भारत के प्रत्येक राज्य में अलग–अलग परंपराएं, रीति–रिवाज, कला और संस्कृति मौजूद है, जैसे कि रहन–सहन, पोशाक, खान–पान, स्थानीय संगीत, नृत्य आदि। जब भी देश में किसी भी क्षेत्र की संस्कृति को हानि या खतरे का संकेत मिलता है, तो स्थानीय लोगों ने उसके खिलाफ हमेशा से ही अपने पूरे सामर्थ्य के साथ आवाज उठाई है। ऐसी ही एक गूँज उत्तराखण्ड राज्य के नागरिकों द्वारा, उत्तराखण्ड की संस्कृति को सहेजने के लिए उठाई जा रही है। उत्तराखण्ड रीति–रिवाज, परंपराओं, कला और संस्कृति आदि से समृद्व राज्य है, यहां की सांस्कृतिक विशेषताओं का गवाह पूरा देश ही नहीं बल्कि विश्व भी किसी न किसी रूप में रहा है, उदाहरण के लिए चमोली जिले का रम्माण उत्सव, जिसे वर्ष 2009 में विश्व की सांस्कृतिक धरोहर की सूची में जोड़ा गया था, जो वहाँ की अपनी सांस्कृतिक विरासत को दर्शाता है, व 2016 में गणतंत्रा दिवस परेड़ की झांकी में भी दर्शाया गया था, चाहे उत्तराखण्ड का संगीत, नृत्य, भाषाएं, बोलियों की ही बात हो या आयुर्वेद औषधियों से समृद्व पहाड़ी क्षेत्र हो, या अनेक पावन पवित्र नदियों का उद्‌गम क्षेत्र, ऋषि मुनियों की समृद्व ज्ञान परम्परा ही क्यों न हो आदि, ऐसी ही अनेक और भी विशेषताएं उत्तराखण्ड की भूमि पर मौजूद है।

क्या है भू–कानून?

भू–कानून का तात्पर्य भूमि से है अर्थात् भूमि की संरक्षण के लिए बनाए गए नियम कानून से संबधित और खास तौर पर भू–कानून पहाड़ी राज्यों में ज्यादा लागू होते है,क्योंकि सबसे ज्यादा जरूरत भू–कानून की पहाड़ी राज्यों को ही होती है। भू–कानून यह सुनिश्चित करता है कि भूमि संसाधनों का उपयोग सामर्थ्यपूर्ण, संतुलित और सामाजिक न्यायधीन हो, भू–कानून के तहत समुदायों को भूमि से जुड़े अधिकार और विकास के लिए उपयोग करने की अनुमति दी जाती है। भू–कानून अक्सर भूमि के विकास योजनाओं,जलवायु परिवर्तनो, और पर्यावरण संरक्षण के लिए निर्देश और संरचना प्रदान करता है, इसके माध्यम से भूमि के सही और उचित उपयोग का निर्धारण किया जाता है, ताकि समुदाय का हित और पर्यावरण की सुरक्षा सुनिश्चित हो।

उत्तराखण्ड भू–कानून / इतिहास

वर्ष 2000 में जब उत्तराखण्ड़ को उत्तर–प्रदेश से अलग कर, अलग कर, अलग संस्कृति, बोली –भाषा होने के बल पर एक संपूर्ण राज्य का दर्जा दिया गया था, उस समय कई आंदोलनकारियों समेत प्रदेश के बुद्विजीवियों को डर था कि प्रदेश की जमीन और संस्कृति भू–माफियाओं के हाथ में न चली जाए, इसलिए सरकार से एक भू–कानून की माँग की गई। उत्तराखण्ड़ राज्य बनने के बाद 2002 तक उत्तराखण्ड़ में अन्य राज्यों के लोग,केवल 500 वर्ग मीटर जमीन खरीद सकते थे। 2007 में यह सीमा 250 वर्ग मीटर कर दी गयी थी, 6 अक्टूबर, 2018 मे सरकार अध्यादेश लायी और उत्तर प्रदेश जमीदारी विनाश एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 में संशोधन का विधेयक पारित करके, उसमें 143(क) धारा 154(2) जोड़ कर पहाड़ो में भूमि खरीद की अधिकतम सीमा समाप्त कर दी। 143(क) में यह प्रावधान है कि पहाड़ में उद्योग लगाने के लिए भूमि मालिक स्वयं भूमि बेचे या उससे कोई भूमि खरीदे तो भूमि को आकृति कराने के लिए अलग से कोई प्रक्रिया नहीं अपनायी होगी। औद्योगिक प्रयोजन से भूमि खरीदने पर भूमि का स्वतः भू उपयोग बदल जाएगा। उत्तराखण्ड राज्य में भू–कानून की माँग कई कारणों से हो रही है जैसे–

1. **भूमि संरक्षण**

उत्तराखण्ड राज्य में प्राकृतिक सौंदर्य, जैव–विविधता और वन्य जीवों की अधिकता है। भू–कानून

का उद्देश्य इन संसाधनों को संरक्षित रखना और विकास को संचारित बनाना है,जिससे उत्तराखण्ड की सुंदरता बनी रहे।

2. **वन्य जीव संरक्षण**

उत्तराखण्ड में अपार मात्रा में वन्य जीव संसाधन है,जिन्हें उत्तराखण्ड की सौदर्यता के लिए भी जाना जाता है, उत्तराखण्ड में सुंदर–सुंदर पशु पक्षियों और अन्य जीव पाए जाते है,भू–कानून उनका संरक्षण प्रदान करने और उपयोग को सुरक्षित करने के उद्देश्य से मॉग उठ रही है।

3. **अवैध कब्जों पर रोक**

भू–कानून के द्वारा अवैध कब्जों पर नियंत्रण का प्रयास किया जाता है। इसके माध्यम से अवैध कब्जों को हटाने और निर्माण कार्यों को उचित समय पर प्रारंभ करने की प्रक्रिया को सुनिश्चित करना है। जिस कारण बाहरी लोगों का उत्तराखण्ड में कब्जा नहीं हो पाएगा,इसलिए अभी भी उत्तराखण्ड वासी सरकार से भू–कानून की मॉग लगातार कर रहे है।

भू–कानून से उत्तराखण्ड के नागरिको को क्या लाभ होगा?

उत्तराखण्ड राज्य में अधिकतर उद्योग दूसरे राज्य के लोग चलाते है, चाहे होटल हो, रेस्टोरेंट हो, कारखानें हो या निजी स्कूल, कालेज, ज्यादातर संस्थाओ के मालिक उत्तराखंड के बाहर के लोग है, इस राज्य के लोगों का इससे कोई तालुक नहीं है। बस कुछ राज्य के लोग ही इन संस्थानों में नौकरी करते है, जिन्हें उक्त वेतन भी नहीं दिया जाता। अगर उत्तराखण्ड में भू–कानून बन जाता है,तो बाहर के लोग इस राज्य में जमीन नहीं खरीद सकते। जिससे यहां का सारा उद्योग क्षेत्र राज्य के लोगों के हाथों में आ जाएगा,जाहिर है अगर किसी संस्थान का मालिक राज्य का होगा वो वह कामगार भी इसी राज्य को रखेगा, जिससे राज्य में रोजगार के अवसर भी बढ़ेगे, व लोगों का पलायन भी काफी हद तक कम हो जाएगा।

निष्कर्ष

खिलखिलाते पहाड़,हरे–भरे घास से लदलद मैंदान, कल–कल, छल–छल बहते झरने, नदियाँ और पहाड़ की आबोहवा किस को पसंद नहीं होगी, फिर भी हम पहाड़ों को छोड़कर हर जगह पलायन का दद्र झेलते आए है। देवभूमि उत्तराखंड़ की दैवीय और शांत वादियो की रक्षा और पलायन के दद्र का जवाब देने, हमारे भावी पीढ़ियों के भविष्य के लिए और हमारी कृषि योग्य सुदृढ़ भूमि की रक्षा के लिए आज एक सुदृढ और सशक्त कानून की आवश्यकता है। राज्य में ऐसा ना हो कि भविष्य में पहाड़ की सारी जमीने बिक जाए और यहां को लोग बेघर हो जाए, यह कानून ना होने के कारण यहां दूरदराज के पहाड़ और गॉवों में भूमि पर राज्य के बाहर के लोगों का आधिपत्य होने लगा है। यहां के कुछ लोग क्षणिक धन के लालच में अपनी पैतृक जमीनों को अन्य राज्य के लोगो को बेच रहे है। जिससे उत्तराखंड की संस्कृति, भाषा, रहन–सहन, उत्तराखंड़ी समाज के विलुप्ति का कारण बन सकता है। धीरे–धीरे यह पहाड़ी जीवन शैली, पहाड़वाद को विलुप्ति की ओर धकेल रहा है। इसलिए उत्तराखंड के लिए नए और सशक्त भू–कानून की आवश्यकता है।

हमने स्कूल में जो सीखा है वह सब भूलने के बाद
जो याद रहता है, ज्ञान का निवेश सर्वोतम
भुगतान करता है

–बेंजामिन फ्रैंकलिन

आश्वासन

शारदा मालरा
मुख्य उद्यान अधिकारी कार्यालय, विकास भवन, भीमताल

'इंसान' की जिन्दगी में सबसे कठिन आसन है आश्वासन, सबसे लम्बा श्वास है विश्वास, सबसे कठिन योग है वियोग और सबसे अच्छा योग है सहयोग, अगर आप किसी को कोई 'आश्वासन' देते हैं तो उसे पूरा जरूर करें।

'अगर' नहीं खायी ढोकरें सफर मे तो मंजिल की अहमियम कैसे जानोगे, अगर नहीं टकराये गलत से तो सही को कैसे पहचानोगें? व्यक्ति को अपनी बुरी आदतों को जल्द से जल्द सुधार लेना चाहिये क्योंकि आदतें फिर धीरे–धीरे चरित्र बन जाती हैं।

'मनुष्य' का सबसे सच्चा साथी उसका स्वास्थ है। जिस दिन स्वास्थ्य ने साथ छोड़ा तो मनुष्य हर रिश्ते पर बोझ बन जाता है। इन्सान को हमेशा ही खुश रहना चाहिये। इसलिए नहीं कि आपके पास खुश रहने के कारण ही हों बल्कि इसलिए कि दुनिया वालों को आपकी परेशानियों से रत्ती भर भी फर्क नहीं पड़ता है।

'हर इंसान' में खूबी और खामी दोनों ही होती है, जो तराशता है, उसे खूबी नजर आती है और जो तलाशता है उसे खामी नजर आती है। जानने और समझने में बहुत अन्तर होता है, हमको जानने वाले तो बहुत होते है परन्तु समझने वाले बहुत कम होते हैं।

'मैंने' एक बात हमेशा ही महसूस की है कि अगर आप दूसरों के लिए प्रार्थना करने की आदत डालते हैं तो आपको स्वयं के लिए प्रार्थना करने की कभी आवश्यकता ही नहीं पड़ती है। एक 'उम्मीद' है जो कभी किसी से संतुष्ट नहीं होती है और एक 'सन्तुष्टि' है जो कभी किसी से उम्मीद ही नहीं करती है।

कविता / कहानी

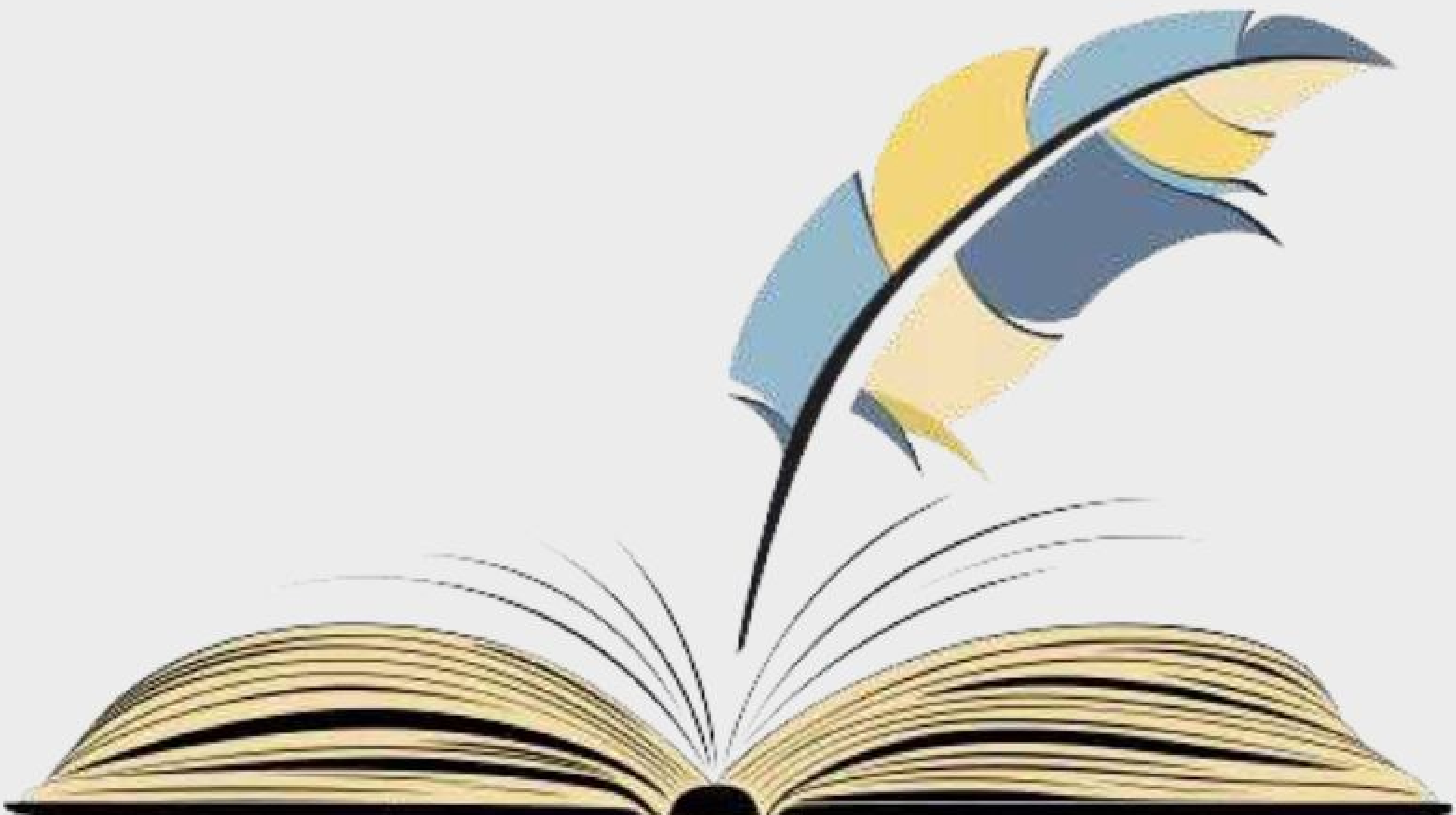

अन्तर

संदीप जोशी
मुख्य उद्यान अधिकारी कार्यालय, विकास भवन, भीमताल

मन–हृदय में, अन्तर इतना
मन मान लेता है, हृदय जान लेता है,
मन चंचल है, जो मचलता है,
कैसे भी कुछ पाने को,
हृदय निश्छल है, जो बेताब है,
अनजान को अपनाने को।
कभी खुशी की आस, कभी गम का आभास,
मन मे ही होता इनका विकास,
प्रेम, करूणा, ममता का होता हृदय मे वास।
मन चाहता हर सम्भव
अपनी मनाने को,
हृदय चाहता प्रेम से,
थोडा ही पाने को।
मन दौड़े उस घोडे सा,
जो जाने ना कहा जाना है,
हृदय थम जाता है कि,
अब यहां अपना ठिकाना है।
कोई रावण से, कोई कंस से,
कोई कौरव से, मन के मारे मिल जाते हैं,
कोई मीरा से, कोई राधा से,
कोई राम से, हृदय मे बस जाते हैं।
इस मन–हृदय का अन्तर को,
जो जान जाता है,
वो ही युगपुरूष कहलाता है।।

देश के सबसे बड़े भू–भाग में बोली जाने वाली
हिन्दी राष्ट्र भाषा पद की अधिकारिणी है।
सुभाष चन्द्र बोस

औरत की वेदना

भूमिका रावत
गज़ियाबाद, उत्तर प्रदेश

औरत की है यही कहानी,
अपनी जिन्दगी कही ना जानी।
डर कर, सहम कर, बाहर निकलती,
बाहर भी चैन से जी नही पाती।
सबकी बुरी नजर उस पर है रहती,
हर मोड़ से डरकर के गुजरती।
कैसे रखे अपना खयाल?
करे शिकायत तो बेशर्म कहलाती,
कब तक चुप सहेगी औरत,
कभी ना कभी चुप्पी तोड़गी औरत।
वाद–विवाद करे तो औरत,
सबको खटके है औरत
रहे शांत चुप–चाप तो औरत,
कितना सही मानता समाज को औरत
अपनी मर्जी चलाती औरत,
तो बदतमीज है कहलाती औरत
करे तो करे क्या औरत,
वो जो है जीना चाहती औरत।।

करे प्रेम निज देश से, भाषा अपनी होय,
हिन्दी मन से बोलिए, समझ सके हर कोय।

मान्नीय केन्द्रीय कृषि मंत्री डा. राधा मोहन के कर-कमलों से हिन्दी पत्रिका हिमज्योति के लिए गणेश शंकर विद्यार्थी पुरूस्कार प्राप्त करते हुए

निदेशालय परिवार के सदस्य

निदेशालय में सम्पन्न हुई गतिविधियों की एक झलक